आत्मा का विश्वरूप गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

: पुण्य-स्मरण :

सागवाड़ा (सज्जनवाडा) में ग्रीष्मकालीन प्रवास
श्रुतपंचमी के उपलक्ष्य में

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमती प्रेमलता भरत कुमार जी शाह (माण्डव वाले) सेक्टर-11 उदयपुर
2. श्रीमती नैना देवी मुकेश कुमार जी सारगिया, सागवाड़ा
3. श्री महीपालजी पुत्र श्री अमृतलालजी शाह ग.पु.कॉ, सागवाड़ा
4. श्रीमती स्वीटी विवेकजी कोठारी, सागवाड़ा
5. श्री विजय भाई रायचन्दजी चन्दावत, चितरी

ग्रंथांङ्क-298 प्रतियाँ-500
संस्करण-प्रथम 2018 मूल्य- 101/- रु.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

मैं निजशुद्धात्मादर्शन से मोक्षप्राप्त करूँ

(निजशुद्धात्मा श्रद्धा(आत्मविश्वास) बिना धर्म ही प्रारम्भ नहीं होता)

- आचार्य कनकनन्दी

(चालः- मन रे ! तू काहे ...., सायोनारा ....)

कनक(आत्मन्) निजशुद्धात्मा दर्शन कर ऽऽऽ
इससे होता सम्यग्ज्ञान ऽऽऽ इससे ही सम्यक् आचरण ऽऽऽ
अनन्तदर्शन स्वरूपोहम् ऽऽऽ (ध्यान सू) (ध्रुव)

णियतच्चुबलद्धि विणा सम्मत्तबलध्दि णत्थि णियमेण।
सम्मत्तबुलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि जिणुदिट्ठं।। (90) (र.सा.)
अन्तरंगरत्नत्रय स्वरूपोहम् ऽऽऽ (ध्यान सू.)

निजतत्त्व उपलब्धि बिना न सम्यक्त्व ऽऽऽ यह जिनेन्द्र देव कथित ऽऽऽ
सम्यक्त्व उपलब्धि बिना न चारित्र ऽऽऽ निश्चय से कहा है जिनदेव ऽऽऽ
सम्यक्त्व बिना न धर्म प्रारंभ ऽऽऽ
निज जीव तत्त्व स्वरूपोऽहम ऽऽऽ(ध्यान सू.)(1)

इस हेतु करो देव-शास्त्र-गुरु-श्रद्धान ऽऽऽ तथाहि तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन ऽऽऽ
इससे होते ज्ञान चारित्र सम्यक् ऽऽऽ तीनों के सम्यक् मिलन से मोक्षमार्ग ऽऽऽ
तीनों की पूर्णता से होता मोक्ष ऽऽऽ तीनों युक्त तू ही तेरा मोक्षमार्ग/(परिनिर्वाण)
निर्दोष परमात्म स्वरूपोऽहम् ऽऽऽ (ध्यान सू.)(2)

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मइत्तु अण्ण दवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइया होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।।(40) (द्र.स.)
अनन्त गुण स्वरूपोऽहम् ऽऽऽ (ध्यान.सू.)

राग-द्वेष-मोह परित्याग करो ऽऽऽ जिससे होंगे उक्त गुण प्रगट ऽऽऽ
इस हेतु ध्यान-अध्ययन करो ऽऽऽ निस्पृह-शान्ति समता धरो ऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध व आनन्द वरो ऽऽऽ

अनन्तानन्त स्वरूपोऽहम् ऽऽऽ (ध्यान.सू.) (3)

रयणत्तय संजुत्तं जिउ उत्तिमु तित्थु पवित्तु।
मोक्खहं कारण जोइया अण्ण ण तंतु ण मंतु।। (योगेन्द्र देव)
परमोत्तम स्वरूपोऽहम् ऽऽऽ (ध्यान सू.)

निजशुद्ध आत्मा श्रद्धान बिना ऽऽऽ तप, त्याग, मंत्र, यंत्र दुःखद ऽऽऽ
आत्मा बिना यथा शरीर है शव ऽऽऽ आत्मश्रद्धान बिना धर्म व्यर्थ ऽऽऽ
तू ही तेरे द्रव्य-तत्त्व-मोक्ष ऽऽऽ
चैतन्य रत्नाकर स्वरूपोऽहम् ऽऽऽ (ध्यान सू.) (4)

अप्पाणं पि ण पिच्छइ ण मुणइ णवि सद्दहइण भावेई।
बहुदुक्खभारमूलं लिंग घित्तूण किं करई ऽऽऽ(88)(र.सा.)
स्वात्मोपलब्धि स्वरूपोऽहम् ऽऽऽ(ध्यान सू.) (5)

शक्ति अनुसार बाह्य तप कर ऽऽऽ किन्तु करो आत्म शोध-बोध ऽऽऽ
ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व त्याग ऽऽऽ स्व आत्मा को करो परिशुद्ध ऽऽऽ
'कनक' तू बनो सच्चिदानन्द कन्द ऽऽऽ
ध्याओ तू ''अहमेक्को खलु शुद्ध'' ऽऽऽ (6)

सागवाडा 06/04/2018 रात्रि 08:30

संदर्भ -

छह दव्व पयत्था, पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं, सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो।। 11 (अष्टपा.)

छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्व कहे गये हैं। जो उनके स्वरूप का श्रद्धान करता है उसे सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।।19।।

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं जिणवरेहि पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो, अप्पाणं हवइ सम्मत्तं।।20।।

जिनेंद्र भगवान्ने सात तत्त्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है और शुद्ध आत्मा के श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त्व बतलाया है ।।20।।

एवं जिणपण्णत्तं, दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय, सोवाणं पढम मोक्खस्स।। 21।।

इस प्रकार जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ सम्यग्दर्शन रत्नत्रय में साररूप है ओर मोक्ष की पहली सीढ़ी है, इसलिए हे भव्य जीवों! उसे अच्छे अभिप्रायसे धारण करो।। 21।।

जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहि भणियं, सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।22।।

जितना चारित्र धारण किया जा सकत है उतना धारण करना चाहिए और जितना धारण नहीं किया जा सकता उसका श्रद्धान करना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञानी जिनेंद्र देव ने श्रद्धान करने वालों के सम्यग्दर्शन बतलाया है।।22।।

णाणं णरस्स सारो, सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं, चरणाओ होइ णिव्वाणं ।।31।।

सर्वप्रथम मनुष्य के लिए ज्ञान सार है और ज्ञान से भी अधिक सार सम्यग्दर्शन है, क्योंकि सम्यग्दर्शन से सम्यक्चारित्र होता है और सम्यक्चारित्र से निर्वाण होता है।।31।।

णाणम्मि दंसणम्मि य, तवेण चरियेण सम्मसहियेण।
चोण्हं हि समाजोगे, सिद्धा जीवा ण संदेहो ।। 32।।

ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्वसहित तप और चारित्र इन चारों के समागम होने पर ही जीव सिद्ध हुए हैं इसमें संदेह नहीं है।।32।।

कल्लाणपरंपरया, कहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं।
सम्मद्दंसणरयणं, अग्घेदि सुरासुरे लोए।।33।।

जीव कल्याण की परंपरा के साथ निर्मल सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शनरूपी रत्न लोक में देव-दानवों के द्वारा पूजा जाता है।।33।।

मुमुक्षु का कर्तव्य

अविद्याभिदुरं ज्योति; परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षभिः।। (49)

That excellent and supreme light of the self is the destrayer of ignorance, the seekers after saluation should always angage themselves in questioning other about it, in ectionately dekking it and in realizing if by actual expriconce !

समीक्षा - संसारी जीव अनादि अनन्त काल से स्व-आत्म स्वरूप को भूलकर उससे दूर होकर, उससे च्युत होकर पर द्रव्य में ही रचा है, पचा है, अनुभव किया है और अपनाया है। अतएव ऐसे चिर-विरमरणीय उपेक्षित स्व-आत्मद्रव्य और आत्म-स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान, आचरण और उसकी उपलब्धि बहुत ही दुरूह है, क्लिष्टसाध्य है। कुन्दकुन्द देव ने कहा भी है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स ।।4।।

सुदा अनन्त बार सुनी गई है (परिचिदा) अनन्त बार परिचय में आई है (अणु भूदा) अनन्त बार अनुभव में भी आई है। (सव्वस्स वि) सब ही संसारी जीवो के (काम भोग बंध) कहा काम शब्द से स्पर्शन और रसना, इन्द्रिय के विषय और भोग शब्द से घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय लिये गये हैं उनके बंध या संबंध की कथा अथवा बंध शब्द के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध एवं उसका फल नरनारकादि रूप लिया जा सकता है, इस प्रकार काम, भोग और बंध की कथा जो पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत-परिचित और अनुभूत है इसलिए दुलर्भ नहीं किन्तु सुलभ है। (एयत्तस्स) परन्तु एकत्व का अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिए हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि उसके बल से अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है उस एकत्व का अवलंभो उपलम्भ संप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना (णवरि) वह केवल (ण सुलभो) सुलभ नहीं है (विहतस्स) कैसे एकत्व का ? रागादि से रहित एकत्व का। क्योंकि वह न तो कभी सुना गया न कभी परिचय में आया और न अनुभव में ही लाया गया।

उपर्युक्त कारण से आचार्य श्री ने कहा कि - हे मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य! तुम सतत मोक्षस्वरूप स्व-आत्मतत्त्व का चिंतन, मनन, श्रवण, निनिध्यासन, ध्यान करो। ग्रन्थकार ने समाधितंत्र में व्यक्त करते हुये कहा है :-

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तपरो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं ब्रजेत्।।

योगी को चाहिए कि वह उस समय तक आत्मज्योति का स्वरूप कहे, उसी के सम्बन्ध में पूछे, उसी की इच्छा करे और उसी में लीन होवे। जब तक अविद्या(अज्ञान) जन्य स्वभाव दूर होकर विद्यामय न हो जावे।

अष्टावक्र गीता में भी प्रकारान्तर से इस विषय का प्रतिपादन मुनि अष्टावक्र ने निम्न प्रकार से किया है-

एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञानगहन वीतशोकः सुखीभव ।।9।।

फिर शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृतपान किस प्रकार करूँ ? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति-विजाति का भेद नहीं और स्वगत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्वप्रकाश रूप हूँ, निश्चय रूपी अग्नि से अज्ञानरूपी वन को भस्म करके शोक, मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इन के नाश होने पर शोक रहित होकर परमानन्द को प्राप्त हो।

यत्र विश्वमितदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।
आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखंचर।।10।।

यहाँ शिष्य शंका करता है कि, आत्मज्ञान से अज्ञानरूपी वन के भस्म होने पर भी सत्यरूप संसारी की निवृत्ति न होने के कारण शोक रहित किस प्रकार होऊँगा ? तब गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य! जिस प्रकार रज्जु के विषे सर्प की प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होने से निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मा के विषे जगत् की प्रतीति अज्ञान कल्पित है, ज्ञान होने से नष्ट हो जाती है। तू ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इस कारण सुखपूर्वक विचर। जिस स्वप्न में किसी पुरुष को सिंह मारता है तो वह बड़ा दुःखी होता है परन्तु निद्रा के दूर होने पर उस कल्पित दुःख का जिस प्रकार नाश हो जाता है उसी प्रकार तू ज्ञान से अज्ञान का नाश करके सुखी हो। फिर

शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरो! दुःख रूप जगत् अज्ञान से प्रतीत होता है और ज्ञान से उसका नाश हो जाता है परन्तु सुख किस प्रकार प्राप्त होता है ? तब गुरु समाधान करते है कि हे शिष्य! दुःखरूपी संसार के नाश होने पर आत्मा स्वभाव से ही आनंद स्वरूप हो जाता है, मनुष्य लोक से तथा देवलोक से आत्मा का आनंद परम उत्कृष्ट और अत्यंत अधिक है।

आध्यात्मिक का सार

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किंचित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।। (50)

The Self is different from matter, matter is different from the self this is the quintessence of all the compilations of wisdom; all the rest of knowledge is but an complification of this!

''देहादि से आत्म तत्त्व भिन्न है और आत्म तत्त्व से देहादि भिन्न है।'' इतने में ही भूतार्थ रूप से आत्मतत्त्व का समस्त सार गर्भित है, निर्णीत है। जे इस तत्त्व संग्रह से अधिक भेद-प्रभेद का वर्णन है वह सब विस्तार रूचि वाले शिष्यों की रूचि को ध्यान में लेकर किया गया है। उसको भी हम अभिनन्दित करते है, स्वीकार करते हैं।

आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवर का वैश्विक गुरुकुल

- विद्यार्थी - श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चालः- दीवाना तेरा आया....,(कव्वाली).....

गुरुकुल कनक में आया...विद्यार्थी/(शिक्षार्थी, शोधार्थी, जिज्ञासु) बन के ऽऽऽ
विश्व विद्यालय आला...सारे जहान में...गुरुकुल...
मैं आनन्द...मैं आनन्द...(मैं) आनन्द पा गया...मैं आनन्द आनन्द ज्ञानानन्द
पा गया...गुरुकुल...(ध्रुव)

इस गुरुकुल में मिलता...आत्मज्ञान न्यारा...
अपूर्व है अनुभव...आनन्ददायी शिक्षा...
ऐसा ज्ञान नहीं मिलता...2...देश-विदेशों में...गुरुकुल...(1)...

साहित्य आपके हैं...विश्व विद्यालय मान्य...

ज्ञानी-विज्ञानी शिष्य...हैं शोध निर्देशक...
आधुनिक विज्ञान परे 2 भारतीय सत्य तथ्य ...गुरुकुल...(2)

अब तक हुए सृजित...प्रायः त्रयशत(300) ग्रन्थ...
गद्य व पद्य मय...शोध-बोध पूर्ण ग्रन्थ...
गीताञ्जली/(कविताओं) की धारा 2 देती युग प्रबोधन...गुरुकुल...(3)

ज्ञानोपयोगी गुरुवर...कनकनन्दी प्यारे...
विश्वधरा में अनुपम...विलक्षण ज्ञानी न्यारे...
'सुविज्ञ' जन आओ 2 ज्ञानानन्द पाओ प्यारे...गुरुकुल...(4)

सागवाड़ा, दि. 27/3/2018, मध्याह्न 1.50

वैश्विक गुरु आचार्य कनकनन्दी

- ब्रा.ब्र. उमंग जैन

कनक गुरुवर को देखा तो ऐसा लगा
जैसे विद्या के सागर
जैसे करुणा के सागर
जैसे दया के भण्डार
जैसे गर्मी में छाँव
जैसे अंधेरे में हो एक जलता दिया हो...
कनक गुरुवर को देखा तो ऐसा लगा
जैसे प्यारी सी मूरत
जैसे ज्ञान की सुरत
जैसे अरिहन्त रूप
जैसे सौम्य मूरत
जैसे आत्म(मैं) बोध कराने वाले गुरु हो ...
कनक गुरुवर को ना देखूँ तो ऐसा लगे

जैसे सूखा गुलाब
जैसे बिछुड़ा नवजात
जैसे सूखा रेगिस्तान
जैसे घना अन्धेरा
जैसे बिना फूलों का हो इक उपवन हो...

दि. 27.3.2018 समय 8:00 सायं, स्थान-सागवाड़ा

जिया करो स्वयं से प्रेम

- श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

जिया करो स्वयं से प्रेम...अमृत बरसेगा...
हिया करो निज को पावन...आनन्द बरसेगा...(ध्रुव)

स्वयं से पावन प्रेम करो...दुर्व्यवहार कभी न करो...
दीन-हीन-अहंकार छोड़ो...ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा छोड़ो...
जिया समता-शान्ति वर...आनन्द बरसेगा...जिया...(1)...

स्व-प्रेम बिन पर-प्रेम न सम्भव...स्व-प्रकाशी बिन पर-प्रकाश न सम्भव
आत्महित सह परहित सम्भव...तरण-तारण होना सम्भव...
जिया स्व-आत्म प्रेमी बन...आनन्द बरसेगा...जिया...(2)

आत्म-स्वरूप अमृत का प्याला...पीता है उच्च भावों वाला...
आत्म-अमृत पान करने पर...सत्य शिव सुन्दर बन जाता...
जिया करले आतम ध्यान...आनन्द बरसेगा...जिया...(3)

सागवाड़ा, दि. 3.4.2018, मध्याह्न 1.40
(आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव की कविता ''स्वयं से पावन प्रेम करूँ'' पर आधारित यह कविता)

भगवान् आदिनाथ स्तुति

- बा.ब्र. पल्लवी

(चाल:- कन्नड राग-प्रेम चन्द्रमा कैगे....)

आदि जिनेशा नमित सुरेशा सुरवृन्द वंदिता...2
कर्म अरि विजेता, मोक्षपुरी अधीशा
स्व-स्वरूप अवस्थिता।।

अनन्त वैभवधारी प्रभु, चिन्तामणि आप हो।
अनन्त गुणधारी विभु, कामधेनु स्वरूप हो।
कषाय शत्रु से विमुक्त हो समता रस में लीन हो।
राग द्वेष से दूर हो दश धर्म से युक्त हो।
सच्चिदानन्दमय रूप तुम्हारा, सहजानन्द स्वरूप तुम्हारा।। स्व...(1)

जीवन मुक्त परमात्मा, नित्य निरंजन निर्विकार हो।
अठारह दोष से रहित हो, शुद्ध-बुद्ध-आनन्द हो।
अष्टकर्मों को नष्ट करके, अष्ट गुणों को वरण किया।
बाह्य विभूति को त्यागकर अन्तरंग विभूति को प्रकट किया।
जन्म-जरा-मृत्यु नाश करके, संसार से मुक्त हुए।। स्व...(2)

संसार-शरीर-भोग को तृणवत् त्याग किया।
निज वैभव का स्मरण कर पर वैभव को भूला दिया।
संसार विचित्रता देखकर संसार से निर्मुक्त हुए।
पर पदार्थ से ममकार त्यागकर स्व पदार्थ में स्थित हुए।
कर्म शत्रु को जीतकर, कर्मातीत अवस्था को प्राप्त किया।। स्व...(3)

जो भी तेरे दर पे आते, तेरे जैसे वैभव को पाते।
श्रद्धा भक्ति भाव से तेरे सम सुख शान्ति पाते।

बाह्य विकल्पों से मुक्त होकर अन्तरंग में मस्त हो।
मैं भी तेरी भक्ति करके, तेरे गुणों को प्राप्त करूँ।
तव सम अवस्था मैं भी पाऊँ, अंतिम भावना ये ही भाऊँ।। स्व...(4)
सागवाड़ा- 28.03.2018 मध्याह्न- 1.17

आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव के चरणों में नमन

- ब्रा.ब्र. उमंग जैन

तेरे नाम हमने किया है जीवन अपना सारा गुरु
प्यार बहुत आपने दिया है भगवान् हमारे 'कनक गुरु'
गुलशन भी अब तो वीराना लगता है, हर अपना मुझको बैगाना लगता है
हम तो भक्ति में खोये रहते हैं, लोग हमें पागल दिवाना कहते हैं
तेरे बिना, तेरे बिना, तेरे बिना
नामुमकीन है मेरा मोक्ष का स्वप्न गुरु हो ऽऽऽ...

नैनों से बहते भक्ति के आँसू ने, मैंने तुमको देखा मुनि मुद्रा में
फिर आँखें बिन देखे हर पल रोती हैं अब हर धडकन तेरी माला जपती है
मेरे लिये, मेरे लिये, मेरे लिये
मौन आपने छोड़ा है यह है मेरा सौभाग्य गुरु हो ऽऽऽ...

मर के बिना आपकी शरण हम न छोडेंगे
आपके चरणों की छाया न छोड़ेंगे
अपना तो गुरु शिष्य का रिश्ता है
गुरु से शिष्य को कौन जुदा कर सकता है।
तेरे सिवा, तेरे सिवा, तेरे सिवा
इस तुच्छ मानव का कोई और न गुरु हो गुरु हो ऽऽऽ...

दि. 1.4.2018 समय 8:30 सायं सागवाड़ा

कनक गुरु द्वारा भाव विशुद्धि

- रचयित्री श्रीमती विजयलक्ष्मी गोदावत

(चालः- ओढ़नी ओडु ओडु नी उडी जाय.....)

मन मारू दौड़ी दौड़ी नी जाय।
गुरु मारा खींची खींची नी लाय।।

कनक गुरु नी वाणी झलके।
भव्य जीव नो विवेक जागे।।

स्वाध्याय थी आत्मा नो ज्ञान थाय।
मन मारू दौड़ी नी जाय...

गुरुवर ''मैं'' नो ज्ञान करावे।
आत्मा नो सब मेल धोवे।।

आत्मज्ञान थी आत्मा परमात्मा बनी जाय।। मन मारू...

कनक गुरु हेय-उपादेय नो ज्ञान करावे।
निंदा थी बचवा ना उपाय करे।।

गुण प्रशंसा थी आत्मा गुणवान् (भगवान्) बनी जाय। मन मारू...

कनक गुरु ने आहार करावे।
पड़गाहन, पाद-पक्षालन, पूजन करे।।

आहार-दान थी भव-भ्रमण मिटी जाय मन मारू...

विजया गुरु गुण चिंतन करे।
मनन, अनुकरण, अनुभव करे।।

गुणानुवाद थी मन पवित्र थाय। मन मारू...

26 जनवरी 2018

''मु तो चार कषायों नो त्याग करू''

- रचयित्री-विजयलक्ष्मी गोदावत

(चालः- मु तो चार चार बंगडी वाली गाडी लाई दूँ)

मु तो चार चार कषायों नो त्याग करी दूँ।

मु तो मोक्ष मार्ग नी गाडी लाई दूँ।।
मु तो कनक गुरु नो साथ लई लूँ।
मारी आत्मा ने पावन करी दऊँ।।

मु तो चार चार क्रोध नो नाश करी दऊ।
मु तो कनक गुरु पासे स्वाध्याय करी लऊ।।
मु तो स्व आत्मा नो ज्ञान करी लऊ।
क्रोध थी आत्मा नो पतन जाणी लऊ।।

मु तो चार-चार मान नो त्याग करी दऊ।
मु तो मान थी सम्यग्दर्शन नो पतन जाणी लऊ।।
मान करी आत्मा नो अपमान जाणी लऊ।
मु तो ''विनय'' ने मोक्ष नो द्वार जाणी लऊ।

मु तो चार चार मायायों नो त्याग करी दऊ।
मु तो माया थी तिर्यंच नो बंध जाणी लऊ।।
मु तो मायाचारी ने पाप जाणी लऊ।
मु तो सरलता नो पाठ भणी लऊ।।

मु तो चार-चार लोभ नो त्याग करी दऊ।
मु तो लोभ ने पाप नो बाप जाणी लऊ ।।
मु तो परिग्रह थी आसक्ति कम करी लऊ।
विजया थारी आत्मा ने निर्मल करी लऊ।।

मु तो चार चार कषायों नो त्याग करी दऊ।
मु तो धर्म नो मर्म जाणी लऊ।।
मु तो श्रावक ना गुण जाणी लऊ।
मु तो गुरु पासे गुण ग्रहण करता सिखी लऊ।

मु तो कनक गुरु पासे स्वाध्याय करी लऊ।
मु तो समता नो पाठ भणी लऊ।।
मु तो ''क्षमा वीरस्य भूषणम्'' जाणी लऊ।
मु तो दस धर्म आत्मा नो स्वभाव जाणी लऊ।।

26 जनवरी 2018

सर्वज्ञ भ. महावीर जयन्ती सोल्लास सम्पन्न

अरावली की उपत्यकाओं में स्थित वाग्वर अञ्चल के धर्मवत्सल सांस्कृतिक कस्बा सागवाड़ा में ग्रीष्म प्रवासरत वैश्विक दृष्टि सम्पन्न वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दजी गुरुदेव ससंघ सानिध्य में अनूठा महावीर जयन्ती पर्व आध्यात्मिक प्रबोधन व प्रभावना पूर्ण सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आचार्य यतीन्द्रसागर जी भी उपस्थित रहे।

सभा में उपस्थित भक्त शिष्यों को भ. महावीर का व्यापक आध्यात्मिक स्वरूप का बोध कराते हुए आचार्य कनकनन्दी गुरुवर ने कहा कि भ. महावीर महान् स्त्री व पतित उद्धारक, पर्यावरण उद्धारक, समाज सुधारक, महावैज्ञानिक श्रमण थे, वे मात्र 1008 गुणधारी न होकर अनन्त गुणगणधारी तीर्थंकर परमात्मा थे। भ. महावीर के पूर्व भवों का वृत्तान्त बताते हुए गुरुदेव ने कहा कि भगवान् का संघर्षपूर्ण जीवन उत्थान व पतन को महागाथा है। वे वर्द्धमान से पूर्व हीयमान अवस्था में थे जिसका वर्णन मरीचि की पर्याय से आचार्य श्री ने किया। वह प्रथम तीर्थंकर का पोता, प्रथम चक्रवर्ती भरत का पुत्र होते हुए भी अहंकार करने से अनेक भव धारण कर संसार के दुःखों का भागी हुआ। सिंह की पर्याय में सम्यक् बोधि प्राप्त कर आध्यात्मिक उत्थान करते हुए अन्तिम तीर्थंकर महावीर बना। गुरुदेव ने कहा महावीर की जीवनी स्वयं की कहानी है। हर जीव स्वयं को जानने श्रद्धान ज्ञान व आचरण करके भगवान् बन सकता है। मोह व मिथ्यात्व महापाप है। इस सन्दर्भ में अनेक महापुरुषों के दृष्टान्त बताते हुए

भावात्मक धर्म की महत्ता व उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए गुरुदेव ने कहा कि आत्मज्ञान बिना समस्त धार्मिक क्रिया निष्फल है।

इस अवसर पर गुरुदेव की कवियित्री शिष्याएँ कुमारी पूर्वी पण्ड्या, कुमारी खुशी आदि ने भी अपनी स्व-रचित कविताएँ प्रस्तुत कर सभा को आनन्दित किया। अहमदाबाद से पधारे ऋषभ कुमार जैन ने आचार्य श्री संघ के आगामी चातुर्मास कराने हेतु निवेदन किया। आचार्य श्री सृजित गीताञ्जली त्रय 1. आत्म-विकास गीता धारा 75, 2. शोध-बोध गीता धारा 76, 3. आत्मबोध गीता धारा 77 का विमोचन हुआ। जिसके ग्रंथांक क्रमशः 288-289-290 हैं।

शुभाकांक्षी-श्रमण मुनि सुविज्ञासागर

विषयाणुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ संख्या
(1)	मैं निजशुद्धात्मादर्शन से मोक्ष प्राप्त करूँ	2
(2)	अचार्य कनकनन्दी गुरुवर का वैश्विक गुरुकल	7
(3)	वैश्विक गुरु आचार्य कनकनन्दी	8
(4)	जिया करो स्वयं से प्रेम	9
(5)	भगवान् आदिनाथ स्तुति	10
(6)	आचार्य श्री कनकनंदी गुरुदेव के चरणों में नमन	11
(7)	कनक गुरु द्वारा भाव विशुद्धि	12
(8)	मु तो चार कषायों नो त्याग करूँ	12
(9)	सर्वज्ञ भगवान् महावीर जयन्ती सोल्लास सम्पन्न	14

आत्मा का विश्वरूप गीताञ्जली

(1)	मैं हूँ अनन्त गुणगण स्वरूप (आतमा का विश्वरूप)	18
(2)	मैं ही मेरे संसार-मोक्ष का ईश्वर मैं हूँ	30
(3)	अनाकुल स्व संवेद्य में स्थिर होकर अमृत बनो	33
(4)	स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान से प्रारम्भ होते हैं सच्चे-अच्छे भाव-व्यवहार	52
(5)	स्व शुद्धात्मा श्रद्धान बिन न धर्म से लेकर मोक्ष तक	65
(6)	'अहंकार 'ममकार' त्याग से 'सोऽहं' 'अहं' बनूँ	79
(7)	परपरिणति त्याग से बनूँ परम स्वतंत्र-सुखी	91
(8)	विश्व के सभी जीवों का परिचय एक ही = चैतन्य-आत्मा	98
(9)	मेरा शोध-बोध प्रयत्न-स्वात्मा की शक्ति का प्रभाव-प्रयोग	111
(10)	मेरे हेतु ग्राह्य-अग्राह्य-माध्यस्थ	119

(11)	सम्पूर्ण तृष्णा त्याग से सम्पूर्ण मोक्ष	120
(12)	शिवत्व प्राप्ति के परम उपाय	121
(13)	आत्मनिष्ठता से स्वाधीनता	121
(14)	प्रार्थना व प्रार्थना का फल	122
(15)	जैन धर्म का परम अकर्त्तावाद	144
(16)	स्वयं को मनाऊँ बडे चाव से अन्य को न मनाऊँ क्लेश भाव से	159
(17)	बाह्य विकल्प त्याग से अन्तरंग विकल्प त्याग (निर्विकल्प)	162
(18)	आत्मा को जानने का संक्षिप्त उपाय	163
(19)	निश्चय से स्व-आत्मा ही स्व-गुरु	164
(20)	'सोऽहं' से 'अहं' बनने की साधना	165
(21)	सच्चे आध्यात्मिक गुरु व ढोंगी गुरु	170
(22)	निगोदिया से मुझे शिक्षा मिले	175
(23)	मुझे अनुभव हो रहा है-आध्यात्मिक रहित प्रायः भारतीय	192
(24)	जल से मुझे शिक्षा मिले	194
(25)	मेरी स्वआध्यात्मिक शक्ति प्रगट हेतु	198
(26)	स्वपुरुषार्थ से मिलती है शान्ति मुक्ति	200

मैं हूँ अनन्त गुणगण स्वरूप
(आत्मा का विश्वरूप)

- आचार्य कनकनंदी

(चालः- जहाँ डाल-डाल पर सोने की...,)

जहाँ हर प्रदेशों में अनन्त गुणगण...नित्य करते बसेरा...
वह जीव द्रव्य है मेरा...वह आत्म द्रव्य है मेरा...
अनादिकाल से मेरा अस्तित्त्व है...अनन्त तक रहेगा...वह जीव...
स्वयम्भू-सनातन-स्वतन्त्र-मौलिक...चैतन्य द्रव्य है मेरा...वह आत्म
जय आत्मन्...शुद्धात्मन्...परमात्मन्...(ध्रुव)...

अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य...अस्तित्त्व-वस्तुत्व-सूक्ष्मत्व...जय होऽऽ
अगुरुलघुत्व-प्रमेयत्व-अव्याबाधत्व...आदि गुण अनन्त...2
एक गुण में भी अनन्त प्रतिच्छेद...नित्य करते बसेरा...वह जीव...
इन सब दृष्टि से मैं हूँ विश्व का...महानतम द्रव्य प्यारा...वह आत्म...(1)

लोकालोक से भी अधिक विस्तार(जीव का)...ज्ञान-ज्ञेय दृष्टि से...जय होऽऽ
लोकालोक भी(मेरे) ज्ञान के एक कोण में...समाहित होने वाला...2
अनन्त सूर्य से भी अधिक ज्ञान ज्योति को...धारण करने वाला...वह जीवऽऽ
सर्व संसारी जीवों से भी मेरा सुख...अनन्त गुणित वाला...वह आत्मऽऽ(2)

संसार की कोई शक्ति भी न कर सकती है...नाश कदापि मुझको...जय होऽऽ
संसार के समस्त भौतिक मूल्य से भी...नहीं क्रय कर सकते मुझको...2
विश्व में न कोई समर्थ है...मेरा निर्माण करने वाला...वह आत्मऽऽ
मेरा निर्माण व निर्वाण भी...मेरे ही आधीन वाला...वह जीवऽऽ(3)

ऐसा मेरा शुद्ध परम तत्त्व...जिसे प्राप्त करना है मुझे...जय होऽऽ
समस्त पुरुषार्थ इस हेतु ही...कर रहा हूँ मैं मुझ में...2

सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव प्राप्त कर...सर्व विभाव नाश (कर) वाला...वह जीवऽऽ
मेरे द्वारा ही मुझ में प्राप्त करना है...मेरे ही अनन्त गुण(गण) आला...वह आत्मऽऽ(4)...

यह ही मेरा लक्ष्य-धर्म है...साधना-सिद्धि-परमार्थ...जय होऽऽ
पूजा-प्रार्थना-आरती-वन्दना...मूल-उत्तर गुण सत्यार्थ...2
ध्यान-अध्ययन-तप-त्याग ग्रहणीय...अन्य सर्व त्यजनीय...वह जीवऽऽ
कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता-विधाता 'कनक'...सार यह आध्यात्मिक...वह आत्माऽऽ...(5)

सागवाड़ा, दि. 30.3.2018, मध्याह्न 2.45

संदर्भ -

अप्पु पयासइ अप्पु परु जिम अंबरि रवि-राउ ।
जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थु सहाउ।।(101)

जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश अपने को और पर को प्रकाशित करता है, उसी तरह आत्मा अपने को पर पदार्थों को प्रकाशता है, सो हे योगी इसमें भ्रम मत कर ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है।

तरायणु जलि बिंबयउ णिम्मलि दीसइ जेम।
अप्पए णिम्मलि बिंबयउ लोयालोउ वि तेम।।(102)

जैसे ताराओं का समूह निर्मल जल में प्रतिबिम्बित हुआ प्रत्यक्ष दिखता है, उसी तरह मिथ्यात्व रागादि विकल्पों से रहित स्वच्छ आत्मा में समस्त लोक-अलोक भासते हैं।

अप्पु वि परु वि वियाणइ जें अप्पें मणिएण।
सो जिय-अप्पा-जाणि तुहुँ जोइय णाण बलेण।।(103)

जिस आत्मा को जानने से आप और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं, उस अपने आत्मा को हे योगी तू आत्मज्ञान के बल से जान।

अप्पा णाणु मुणेहि तुहुँ जो जाणइ अप्पाणु।
जीव-पएसहिं तित्तिडउ णाणें गयण-पवाणु।।(105)

हे प्रभाकर भट्ट तुम आत्मा को ही ज्ञान जान, जो ज्ञानरूप आत्मा अपने को

अपने प्रदेश से लोक-प्रमाण ज्ञान से व्यवहार नय कर आकाश प्रमाण जानता है।

संखेज्जमसंखेज्जं अणंतकप्पं च केवलं णाणं।
तह रागदोसमोहा अण्णे वि य जीवपज्जाया।।(43) सं. सू.

केवलज्ञान-असंख्यात-संख्यात-अनंतरूप है और वेसे रागद्वेष मोह रूप दूसरे भी जीव पर्याय हैं।

आत्मा को ज्ञान प्रमाण न मानने से दोष

णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा।
हीणो वा अहिओ वा णाणादो हवदि धुवमेव।।(24)
हीणो जदि सो आदा तण्णाणमचेदणं ण जाणादि।
अहिओ वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि।।(25) प्रव.सा.

He, who does not admit the soul to be co-extensive with knowledge, must indeed concede that the soul is either smaller or larlge than knowledge.If the soul is smaller, the knowledge, being insentient, cannot know, if larger, how can it know in the absence of knowledge ?

अब जो आत्मा को ज्ञान के बराबर नहीं मानते हैं, ज्ञान से कमती-बढ़ती मानते उनको दूषण देते हुए कहते है-

(इह) इस जगत् में (जस्स) जिस वादी के मत में (आदा) आत्मा (णाणपमाणं) ज्ञान प्रमाण (ण हवदि) नहीं होता है (तस्स) उसके मत में (सो आदा) वह आत्मा (णाणादो) ज्ञान गुण से (हीणो वा) या तो हीन अर्थात् छोटा (अहिगो वा) या अधिक अर्थात् बड़ा (हवदि) होता है (धुवम् एवं) यह निश्चय ही है।

(जदि) यदि(सो आदा) वह आत्मा (हीणो) हीन या छोटा होता है तब(तं णाणं) सो ज्ञान(अचेदणं) चेतन रहित होता हुआ (ण जाणादि) नहीं जानता है अर्थात् यदि वह आत्मा ज्ञान से कम या छोटा माना जाय तब जैसे अग्नि के बिना ऊष्ण गुण ठण्डा हो जायेगा और अपने जलाने के काम को न कर सकेगा तैसे आत्मा के बिना जितना ज्ञान गुण बचेगा वह ज्ञान गुण ठण्डा हो जायेआ और अपने जलाने के काम को न कर सकेगा तैसे आत्मा के बिना जितना ज्ञान गुण बचेगा वह ज्ञान गुण

आश्रयभूत चैतन्यमयी द्रव्य के बिना जिस आत्मद्रव्य के साथ ज्ञानगुण का समवाय सम्बन्ध हैं, अचेतन या जड़रूप होकर कुछ भी नहीं जान सकेगा।

(वा णाणादो) अथवा ज्ञान से (अहियो) अधिक या बड़ा आत्मा को माने तब (णाणेव विणा) ज्ञान के बिना (कहं) कैसे (णादि) जान सकता है अर्थात् यदि यह माने की ज्ञान गुण से आत्मा बड़ा है तब जितना आत्मा ज्ञान से बड़ा है उतना आत्मा जैसे उष्णगुण के बिना अग्नि ठंडी होकर अपने जलाने के काम को नहीं कर सकती है तैसे ज्ञान गुण के अभाव में अचेतन होता हुआ किस तरह कुछ जान सकेगा अर्थात् कुछ भी न जान सकेगा।

यहाँ यह भाव है कि जो कोई आत्मा को अंगूठे की गांठ के बराबर या श्यामाक तंदुल के बराबर या बड़ के बीज के बराबर आदि रूप से मानते है उनका निषेध किया गया तथा जो कोई सात समुद्घात् के बिना आत्मा को शरीर प्रमाण से अधिक मानते हैं उनका भी निराकरण किया गया है।

समीक्षा-द्रव्य में ही गुण और पर्याय होती है, द्रव्य को छोड़कर अन्यत्र गुण और पर्यायें नहीं होती हैं। जैसे-मिश्री के सफेद, मीठा, वजन आदि गुण मिश्री में ही हैं और उसका परिणमन उसी में ही है। उसी तरह प्रत्येक चेतन और अचेतन द्रव्य में उसके गुण एवं पर्यायें होती हैं। जीव भी एक द्रव्य है, इसीलिए उसके गुण उसमें व्याप्त होकर सर्वत्र रहते है। जैसे-मिश्री का मीठा गुण उस मिश्री के हर प्रदेश मे व्याप्त है उस मिश्री को छोड़कर अन्यत्र उसका मीठा गुण नहीं है और न ही उस मिश्री के कुछ अंश में है और न ही कुछ अंश में नहीं है। ज्ञान एवम् ज्ञानी का सम्बन्ध गुण और गुणी का सम्बन्ध है अर्थात् ज्ञान गुण है आत्मा गुणी है इसलिए जहाँ-जहाँ आत्मा है वहाँ-वहाँ ज्ञान रहेगा ही। क्योंकि गुणों का आश्रय द्रव्य होता है-इसलिए ज्ञान प्रमाण आत्मा है एवं आत्मा के जितने प्रदेश है उतने में ज्ञान रहेगा ही। किन-किन अवस्थाओं में आत्मप्रदेश कहाँ-कहाँ रहते हैं इसका वर्णन द्रव्यसंग्रह में नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने निम्न प्रकार किया है-

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा।। (10)

व्यवहार नय से समुद्घात अवस्था के बिना यह जीव संकोच तथा विस्तार से छोटे और बड़े शरीर के प्रमाण रहता है और निश्चय से जीव असंख्यात प्रदेशों का धारक है।

केवलज्ञानवस्था में ज्ञान की अपेक्षा से व्यवहार नय द्वारा आत्मा को लोक और अलोक में व्यापक माना है और जैसे नैयायिक मीमांसक और सांख्यमत वाले आत्मा को प्रदेशों की अपेक्षा से व्यापक मानते है वैसा नहीं। अणुमात्र शरीर प्रमाण आत्मा है, यहाँ पर 'अणु' शब्द से उत्सेधघनांगुल के असंख्यांतवें भाग परिमाण जो लब्धि अपूर्ण (अपर्याप्तक) सूक्ष्म निगोद शरीर है उसका ग्रहण करना चाहिए। और पुद्गल परमाणु का ग्रहण न करना चाहिए। और गुरु शरीर यहाँ पर 'गुरु' शब्द से एक हजार योजन परिमाण जो महामत्स्य का शरीर है, उसको ग्रहण करना चाहिए और मध्यम अवगाहन में मध्यम शरीरों का ग्रहण है।

यदि आत्मा के कुछ अंश में ज्ञान माना जाये तो ज्ञान रहित अवशेष अंश अचेतन हो जायेगा। और अचेतन अंश से अनुभव नहीं होगा। उस अंश के अचेतन होने से वह अंश आत्मामय है यह संभव नहीं होगा। यदि आत्मप्रदेश से भी बाहर उस जीव के ज्ञान गुण मानते हैं तो गुणी के आश्रय बिना गुण किसके आधार पर रहेगा ? यदि ऐसा होगा तो आत्मप्रदेश से ज्ञान आगे फैलने के कारण आत्मा में ही ज्ञान होता है अन्य अचेतन में नहीं होता है यह सत्य सिद्धान्त असत्य हो जायेगा। संसारावस्था में भी शरीर प्रमाण ही आत्मप्रदेश होते हैं और उसमें ज्ञान होता है। आत्म प्रदेश से व्याप्त शरीर के सम्पूर्ण अंग-उपांगों से सुख-दुःख का वेदन होता है। यदि शरीर के हृदयादि कुछ अंश में ही आत्म(ज्ञान) है तब एक साथ सर्दी, गर्मी का अनुभव कैसे होगा ? यदि समुद्घात को छोड़कर अन्य समय शरीर से बाहर आत्मप्रदेश रहते हैं तो शरीर से बाहर स्थित विष, अग्नि, बर्फ,कण्टक का अनुभव जीव को उसी प्रकार होना चाहिए था जैसे शरीर को अग्नि आदि में प्रवेश कराने पर होता है। संसारावस्था में भी यह जीव जिस छोटे-बड़े शरीर को प्राप्त करता है उसमें फैलकर निवास करता है। कुंदकुंददेव ने पंचास्तिकाय में कहा भी है-

जह पउमरायरणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं
तह देही देहत्थो सदेहमित्तं पभासयदि।।(33)

जिस प्रकार पद्मरागरत्न दूध में डाले जाने पर अपने अभिन्न प्रभासमूह द्वारा उस दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव अनादि काल से कषाय द्वारा मलिनता के कारण प्राप्त शरीर में रहता हुआ स्वप्रदेशों द्वारा उस शरीर में व्याप्त होता है। और जिस प्रकार अग्नि के संयोग से उस दूध में उफान आने पर उस पद्मरागरत्न के प्रभासमूह में उफान आता है (अर्थात् वह विस्तार को प्राप्त करता है) और दूध बैठ जाने पर प्रभासमूह भी बैठ जाता है, उसी प्रकार विशिष्ट आहारादि के वश उस शरीर में वृद्धि होने पर उस जीव के प्रदेश विस्तृत होते हैं शरीर फिर सूख जाने पर प्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं। पुनश्च, जिस प्रकार वह पद्मरागरत्न दूसरे अधिक दूध में डाले जाने पर स्वप्रभा समूह के विस्तार द्वारा उस अधिक दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव दूसरे बड़े शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रप्रदेशों के विस्तार द्वारा उस बड़े शरीर में व्याप्त होता है। और जिस प्रकार वह पद्मरागरत्न दूसरे कम दूध में डालने पर स्वप्रभा समूह के संकोच द्वारा उस थोड़े दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव अन्य छोटे शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रदेशों के संकोच द्वारा उस छोटे शरीर में व्याप्त होता है।

भगवान् सर्वव्यापी

सव्वगदो जिणवसहो सव्वे वि य तग्गया जगदि अट्ठा।
णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स ते भणिदा।।(26) प्रव.सार

The great Jina is every where and all the objects in the world are within him, since the jina is an embodiment of knowlege and since they are the objects of knowledge.

आगे कहते है कि जैसे ज्ञान को पहले सर्वव्यापक कहा गया है तैसे ही सर्वव्यापक ज्ञान की अपेक्षा भगवान् अरहंत आत्मा भी सर्वगत है। (णाणमयादो य) तथा ज्ञानमयी होने के कारण से (जिणवसहो) जिन जो गणधरादिक उनमें वृषभ अर्थात् प्रधान (जिणो) जिन अर्थात् कर्मों के जीतने वाला अरहंत या सिद्ध भगवान्(सव्वगदो) सर्वगत या सर्वव्यापक हैं, (तस्स) उस भगवान् के ज्ञान के (विसयादो) विषयपने को प्राप्त होने के कारण से अर्थात् ज्ञेयपने को प्राप्त होने के कारण से अर्थात् ज्ञेयपने को रखने के कारण से (सव्वे वि य जगदि ते अट्ठा) सर्व ही जगत् में जो पदार्थ हैं सो

(तग्गया) उस भगवान् में प्राप्त या व्याप्त(भणिया) कहे गए हैं।

जैसे - दर्पण में पदार्थ का बिम्ब पड़ता है तैसे व्यवहारनय से पदार्थ भगवान् के ज्ञान में प्राप्त हैं। भाव यह है कि जो अनन्तज्ञान हैं तथा अनाकुलपने के लक्षण को रखने वाला अनन्त सुख है उनका आधारभूत जो है सो ही आत्मा है, इस प्रकार के आत्मा का जो प्रमाण है वही आत्मा के ज्ञान का प्रमाण है और वह ज्ञान आत्मा का अपना स्वरूप है। ऐसा अपना निज स्वभाव देह के भीतर प्राप्त आत्मा को नहीं जोड़ता हुआ भी लोक-अलोक को जानता है। इस कारण से व्यवहारनय से भगवान् को सर्वगत कहा जाता है और क्योंकि जैसे नीले, पीले आदि बाहरी पदार्थ दर्पण में झलकते हैं ऐसे ही बाह्य पदार्थ ज्ञानाकार से ज्ञान में प्रतिबिम्बित होते हैं इसलिये व्यवहार से ज्ञान-आकार भी पदार्थ कहे जाते हैं। इसलिये वे पदार्थ ज्ञान में तिष्ठते हें ऐसा कहने में दोष नहीं है, यह अभिप्राय है।

ज्ञान वास्तव में, तीन काल में व्याप्त सब द्रव्य पर्याय रूप से व्यवस्थित विश्व के ज्ञेयाकारों को ग्रहण करता हुआ (जानता हुआ) सर्वगत कहा गया है और ऐसे (सर्वगत ज्ञान से) ज्ञानमय होकर रहने से भगवान् भी सर्वगत ही हैं। इस प्रकार सर्वगत ज्ञान के विषय(ज्ञेय) होने से सब पदार्थ भी सर्वगत ज्ञान से अधिक भगवान् के वे विषय हैं, ऐसा (शास्त्र में) कथन होने से वे सब पदार्थ भगवान्गत ही हैं(अर्थात् भगवान् में प्राप्त ही हैं) यहाँ(ऐसा समझना कि) निश्चय से अनाकुलता लक्षण सुख का जो संवेदन उस सुख संवेदन की अधिष्ठानता जितनी हो, आत्मा है और उस आत्मा के बराबर ही ज्ञान स्वतत्त्व है। उस आत्मप्रमाण ज्ञान को छोड़े बिना, विश्व के ज्ञेयाकारों के निकट गये बिना भगवान् (सर्व पदार्थों को) जानते हुए भी व्यवहारनय से 'भगवान् सर्वगत' हैं ऐसा उपचार किया जाता है, किन्तु उनका (आत्मा और ज्ञेय पदार्थों का) परमार्थ से एक-दूसरे में गमन नहीं हैं, क्योंकि सर्वद्रव्यों के स्वरूप निष्ठापना है(क्योंकि सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वरूप में निश्चल अवस्थित हैं) यही क्रम ज्ञान में निश्चित करने योग्य हे (अर्थात् जिस प्रकार आत्मा और ज्ञेयों के सम्बन्ध में निश्चय व्यवहार से कहा गया है, उसी प्रकार ज्ञान और ज्ञेयों के सम्बन्ध में भी निश्चय व्यवहार से वैसा ही निश्चय करना चाहिए)।

समीक्षा - जैसे कैमरे में (छायांकन यंत्र) पर्वत, वृक्ष, मनुष्यादि के चित्र तो

आ जाते हैं तथापि पर्वतादि कैमरे में प्रवेश नहीं करते हैं और न ही कैमरा इस रूप परिवर्तित होता है। उसी प्रकार भगवान् ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत होते हुए भी ज्ञेररूप परिणमन नहीं करते हैं और न ही ज्ञेय भगवान् रूप परिवर्तित होते हैं। कुछ लोग भगवान् को विश्वव्यापी मानते हैं वह ज्ञान की अपेक्षा यथार्थ है परन्तु जो शरीर की अपेक्षा विश्वव्यापी मानते हैं वह यथार्थ नहीं है। कुछ दार्शनिकों ने भगवान् को विश्वव्यापी माना है। यथा -

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतः पात्।

सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्त्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः।। (प्रमेय रत्नमाला 8)

जो विश्वतश्चक्षु है, सर्व ओर नेत्रवाला है अर्थात् विश्वदर्शी है विश्वतो मुख है सर्व ओर मुखवाला है अर्थात् जिसके वचन विश्वव्यापी है, विश्वतो बाहु हैं - सर्व और भुजाओं वाला है, अर्थात् जिसकी भुजाओं का व्यापार सर्वजगत् में है यानी जो सर्वजगत् का कर्त्ता है, विश्वतः पात् है- जिसके पाद(पैर) सभी ओर हैं अर्थात् जो विश्व में व्याप्त हैं, पुण्य-पाप रूप सम्बाहुओं से सर्व प्राणियों को संयुक्त करता है और जो परमाणुओं से दिव् अर्थात् आकाश और भूमि को उत्पन्न करता हुआ वर्तमान है ऐसा एक देव अर्थात् ईश्वर है।

आत्मा ज्ञान सुखादिमय

णाणं अप्पत्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं।

तम्हा णाणं अप अप्पा णाणं वा अण्णं वा।।(27) प्रव.सार

The doctrine of jine is that knowledge is the self and in the absence of the self there cannot be(any) knowledge,therefore, knowledge is the self, while the self is knowledge or anything else.

आगे गहते है कि ज्ञान आत्मा का स्वभाव है तथापि आत्मा ज्ञान स्वभाव भी है तथा सुख आदि स्वभाव रूप भी है- केवल एक ज्ञान गुण का ही धारी नहीं है-

(णाणं) ज्ञान गुण(अप्पत्ति) आत्मा रूप है ऐसा (मदं) माना गया है, कारण कि (णाणं) ज्ञान गुण(अप्पाणं) आत्म द्रव्य के (विणा) बिना अन्य किसी घट पट आदि द्रव्य में(णःवट्टदि) नहीं रहता है(तम्हा) इसलिए यह जाना जाता है कि किसी

अपेक्षा से अर्थात् गुण-गुणी की अभेद दृष्टि से (णाणं) ज्ञानगुण(अप्पा) आत्मरूप ही है। किन्तु (अप्पा) आत्मा (णाणं वा) ज्ञानगुण रूप भी है, जब ज्ञान स्वभाव की अपेक्षा विचारा जाता है। (अणं वा) तथा अन्य गुण रूप भी है।

अब आत्मा के अन्दर पाये जाने वाले सुख वीर्य आदि स्वभावों की अपेक्षा विचारा जाता है- यह नियम नहीं है कि मात्र ज्ञानरूप ही आत्मा है। यदि एकान्त से ज्ञान ही आत्मा है, ऐसा कहा जाय तब ज्ञान गुण मात्र ही आत्मा को प्राप्त हो गया फिर सुख आदि स्वभावों का अवकाश नहीं रहा। तथा सुख, वीर्य आदि स्वभावों के समुदाय का अभाव होने से आत्मा का अभाव हो जायेगा। जब आधारभूत आत्मा का अभाव हो गया सब उसका आधेयभूत ज्ञानगुण का भी अभाव हो गया इस तरह एकान्त मत में ज्ञान और आत्मा दोनों का ही अभाव हो जायेगा। इसलिए किसी अपेक्षा से ज्ञान स्वरूप भी आत्मा है सर्वथा ज्ञानस्वरूप ही नहीं है। यहाँ यह अभिप्राय है कि आत्मा व्यापक है और ज्ञान व्याप्य है। इसलिए ज्ञान -स्वरूप आत्मा हो सकता है। तथा आत्मा ज्ञानरूप भी है और अन्य स्वभावरूप भी है। तैसा ही कहा है 'व्यपकं तदतन्निष्ठं व्याप्य तदतन्निष्ठमेव च' व्यापक में व्याप्य एक और दूसरे अनेक रह सकते हैं जबकि व्याप्य व्यापक में ही रहता है।

समीक्षा- वस्तु अनेकान्तात्मक है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण एक साथ अविरोध रूप में रहते हैं जैसे अग्नि में दाहकत्व, प्रकाशकत्व, पाचकत्व आदि अनेक अनेक गुण एक साथ रहते हैं। तो भी एक गुण दूसरे गुण रूप परिणमन नहीं करता है, अग्नि दाहकत्व गुण के कारण दहन करती है, पाचकत्व गुण के कारण पचाती है और प्रकाशकत्व गुण के कारण प्रकाश करती है। इसलिए अग्नि एक होते हुए भी तीनों गुण के कारण अलग-अलग है। अग्नि तो तीनों रूप है परन्तु एक-एक गुण पूर्ण अग्नि रूप नहीं है इसलिए प्रकाशकत्व आदि गुण कथंचित् अग्नि रूप है परन्तु एक-एक गुण पूर्ण अग्नि रूप नहीं है इसलिए प्रकाशकत्व आदि गुण कथंचित् अग्नि रूप हैं कथंचित् नहीं हैं। इसी प्रकार आत्मा एवं आत्मा के गुणों के बारे में जानना चाहिए। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि अनंतगुण हैं। आत्मा का ज्ञान गुण आत्मा में ही है अन्य द्रव्य में नहीं है तथापि आत्मा में ज्ञानगुण के अतिरिक्त अन्य गुण भी है। इसीलिए आत्मा ज्ञान गुण स्वरूप व अन्य गुणरूप भी है। यदि आत्मा को केवल ज्ञान-स्वरूप

स्वीकार किया जावे एवं अन्य स्वरूप नहीं किया जावे तो अन्य गुणों का अभाव हो जायेगा एवं अन्य गुणों के अभाव से आत्मा का भी अभाव हो जायेगा क्योंकि गुण के अभाव से गुणी का अभाव हो जायेगा एवं गुणी के अभाव से गुण का भी अभाव हो जायेगा। इसलिए कथंचित् गुण-गुणी में भेद एवं अभेद भी है। इस सूक्ष्म सैद्धांतिक विषय को सरलीकरण करने के लिए और एक-दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। जैसे कोई कहता है, एक मीठा आम ले आओ, कोई कहता है एक पीला आम ले आओ, कोई कहता है एक किलो आम ले जाओ, कोई कहता है सुगन्धित आम ले जाओ। वे अलग-अलग विशेषण से आम प्राप्त करने के लिए ही बोल रहे हैं। मीठा आम लाना कहने पर आम का मीठा गुण क्या अन्य गुण से अलग करके लाया जा सकता है ? कदापि नहीं, क्योंकि मीठा गुण आम के अन्य गुण के साथ एक क्षेत्रावगाही होकर रहता है। इसी प्रकार अन्य गुणों को पृथक् करके नहीं लाया जा सकता है। इसलिए आम का मीठा गुण आम में होते हुए भी आम केवल मीठा गुण स्वरूप नहीं है अन्य गुण स्वरूप भी है। केवल गुण-गुणी संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा भेद होते हुए भी प्रदेश अपेक्षा भेद नहीं होता है। उपरोक्त सिद्धांत का प्ररूपण तार्किक चूडामणि अकलंक स्वामी ने स्वरूप संबोधन में किया है।

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मकः।।(3)

वह आत्मा प्रमेयत्व आदि धर्मों द्वारा अचितरूप है, ज्ञान और दर्शन गुण से चेतनरूप है। इस कारण चेतन अचेतन रूप है।

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः।।(4)

आत्मा का ज्ञान गुण भूतकाल और भविष्यत्काल के पदार्थों को जानने रूप पर्यायों वाला है। वह प्रसिद्ध यह आत्मा उस ज्ञानगुण से सर्वथाभिन्न नहीं है और सर्वथा अभिन्न-यानी एक रूप भी नहीं है। किसी अपेक्षा से भिन्न और अभिन्न इस प्रकार कहा गया है।

स्वदेहप्रमिश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततःसर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा।।(5)

यह आत्मा अपने शरीर के बराबर है और वह आत्मा ज्ञानगुण मात्र भी यानी ज्ञान के बराबर भी नहीं है। इस कारण यह आत्मा सब तरह समस्त पदार्थों को स्पर्श करने वाला नहीं है और समस्त जगत् में व्यापने वाला भी सर्वथा नहीं है।।

नानाज्ञानस्वभावत्वादेकाऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैक स्वभावत्त्वादेकानेकात्मको भवेत्।।

वह आत्मा अनेक प्रकार के ज्ञानस्वरूप होने से अनेक होते हुए भी एक चेतना-स्वभाव होने से एक होता हुआ भी सर्वथा एक ही नहीं है। किन्तु एक तथा अनेकात्मक होता है।

ज्ञानी एवं ज्ञेय परस्पर में अप्रवेशक

णाणि णाणसहावो अट्ठा णेयप्पगा हि णाणिस्स।
रूवाणि व चक्खूणं णेवाण्णोण्णेसु वट्टंति।। (28) प्रव. सार

आगे कहते हैं कि ज्ञान ज्ञेयों के समीप नहीं जाता है ऐसा निश्चय है-

(हि) निश्चय से (णाणी) केवलज्ञानी भगवान् आत्मा (णाणसहावो) केवलज्ञान स्वभावस्वरूप है तथा (णाणिस्स) उस ज्ञानी जीव के भीतर (अत्था) तीन जगत् के तीन कालवर्ती पदार्थ ज्ञेयस्वरूप पदार्थ(चक्खूणं) आँखों के भीतर (रूवाणि व) रूपी पदार्थों की तरह (अण्णोण्णेसु) परस्पर-एक दूसरे के भीतर (णेव वट्टंति) नहीं रहते हैं।

जैसे- आँखों के साथ रूपी मूर्तिक द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध नहीं है अर्थात् आँख शरीर में अपने स्थान पर है और रूपी पदार्थ अपने आकार का समर्पण आँखों में कर देते हैं तथा आँखे उनके आकारों को जानने में समर्थ होती है वैसे ही तीन लोक के भीतर रहने वाले पदार्थ तीन काल की पर्यायों में परिणमन करते हुए ज्ञान के साथ परस्पर प्रदेशों का सम्बन्ध न रखते हुए भी ज्ञानी के ज्ञान में अपने आकार के देने में समर्थ होते हैं तथा अखंडरूप से एक स्वभाव से झलकने वाला केवलज्ञान उन आकारों को ग्रहण करने में समर्थ होता हैं, ऐसा भाव है।

समीक्षा-यहाँ पर आचार्य देव ने ज्ञान एवं ज्ञेय का क्या संबंध है यह बताता है। ज्ञान उसे कहते है जो ज्ञेय को जानता है। ज्ञेय उसे कहते है ज्ञान का विषय बनता

है। ऐसा संबंध होते हुए भी न ज्ञान, ज्ञेय रूप होता है और न ज्ञेय, ज्ञान रूप होता है। यदि ऐसा हो जाय जो जड़ात्मक ज्ञेय भी चेतनात्मक ज्ञान बन जायेगा और चेतनात्मक आत्मा अचेतनात्मक हो जायेगा एवम् जड़ात्मक ज्ञेय, ज्ञान गुण के कारण चैतन्य बन जायेगें और गुणों के अभाव से गुणी का भी अभाव हो जायेगा। इसलिए ज्ञान, ज्ञेय का संबंध बताते हुए 'रत्नकरण्ड' में समन्तभद्रस्वामी ने कहा है-

'सालोकानां त्रिलोकाना यद्विद्या दर्पणायते।'

इसी प्रकार अमृतचन्द्र सूरि ने कहा भी है-

तज्जयति परं ज्योतिःसमं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थ मालिका यत्र।। (1)

वह केवलज्ञान रूप परम ज्योति स्वरूप दर्पण में संपूर्ण लोक-अलोक के समस्त ज्ञेय एवं अनंत पर्यायें सम्यक् रूप में झलकती हैं ऐसी ज्योति जयवन्त हो। यहाँ पर द्रयाचार्य श्री ने केवलज्ञान की तुलना दर्पण से की है। उसका रहस्य जान लेना चाहिए क्योंकि दृष्टान्त और द्राष्टान्त में बहुत कुछ समानता होती है। यदि कुछ समानता न हो तो दृष्टान्त और दृष्टान्त ही नहीं घट सकता है। भले केवल ज्योति चैतन्य स्वरूप है, दर्पण जड़ात्मक है। दर्पण में कुछ प्रतिबिम्बित होता है। केवलज्ञान में सब कुछ प्रतिबिम्बित होता है। इस तरह दोनों में महान् असमानता होते हुए भी कुछ समानता भी है। वह यह है कि जैसे दर्पण बिना रागद्वेष से अपनी स्वच्छता के कारण ज्ञेय में बिना प्रवेश हुए भी अपने प्रतिबिम्ब को झलकाता है। वैसे केवलज्ञान बिना रागद्वेष के तथा ज्ञेय में बिना प्रवेश किये हुए ज्ञेय को जानता है। इसलिए तो स्वामी कार्तिकेय ने कहा है-

णाणं ण जादि णेयं णेयं पि ण जादि णाण-देसम्मि।
णिय-णिय-देस ठियाणां व्यवहारो णाण-णेयाणं।। (256)

ज्ञान, ज्ञेय के पास नहीं जाता और न ज्ञेय के पास आता है। फिर भी अपने-अपने देश में स्थित ज्ञान और ज्ञेय में ज्ञेयज्ञायक व्यवहार होता है।

ज्ञानी ज्ञेय में प्रवेश बिना जानता

ण पविट्ठो णाविट्ठो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू।
जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं।।(29)

The knower, who is beyond sense-perception, necessarily knwos and sees the whold neither enthering into nor entered into by the object of knowledge, just as the eye sees the objects of sight.

आगे कहते हैं कि ज्ञानी आत्मा ज्ञेय पदार्थों में निश्चय नय से प्रवेश नहीं करता हुआ भी व्यवहार से प्रवेश किए हुए है, ऐसा झलकता है, ऐसी आत्मा के ज्ञान की विचित्र शक्ति है।

(अक्खातीदो) इन्द्रियों से रहित अतीन्द्रिय (णाणी) ज्ञानी आत्म(चक्खू) आँख (रूवम् इव) जैसे रूप के भीतर वैसे (णेयेसु) ज्ञेय पदार्थों में (ण पविट्ठो) निश्चय से प्रवेश न करता हुआ अथवा (ण अविट्ठो) व्यवहार से अप्रविष्ट न होता हुआ अर्थात् प्रवेश करता हुआ (णियदं) निश्चित रूप से व सशंय रहितपने से (असेसं) सम्पूर्ण (जगत्) जगत् को (पस्सदि) देखता है(जाणदि) जानता है।

जैसे नेत्र रूपी द्रव्यों को यद्यपि निश्चय से स्पर्शन नहीं करता है तथापि व्यवहार से स्पर्श कर रहा है ऐसा लोक में झलकता है। तैसे यह आत्मा मिथ्यात्व-रागद्वेष आदि आस्रव भावों के और आत्मा के संबंध में जो केवलज्ञान होने के पूर्व विशेष भेदभाव होता है, उससे उत्पन्न जो केवलज्ञान और केवलदर्शन के द्वारा तीन जगत् और तीन कालवर्ती पदार्थों को निश्चय से स्पर्श न करना हुआ भी व्यवहार से स्पर्श करता है तथा स्पर्श करता हुआ ही ज्ञान से जानता है और दर्शन से देखता है। वह आत्मा अतीन्द्रिय सुख के स्वाद में परिणमन करता हुआ इन्द्रियों के विषयों से अतीत हो गया है। इसलिये जाना जाता है कि निश्चय से आत्मा पदार्थों में प्रवेश न करता हुआ ही व्यवहार से ज्ञेय पदार्थों में प्रवेश हुआ ही घटता है।

मैं ही मेरे संसार-मोक्ष का ईश्वर मैं हूँ

(मैं ही मेरे पाप-पुण्य व मोक्ष के कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता-विधाता हूँ)

- आचार्य कनकनन्दी

(चालः- कसमें वादे .....आत्मशक्ति...., क्या मिलिए.....)

मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता विधाता मैं ही हूँ।
संसार से मोक्ष तक अतः मेरा ईश्वर मैं ही हूँ।।
अशुभ भाव जब मेरे होते...पापबन्ध करता हूँ।

इससे निम्न गतियों में...अनेक दुःख भोक्ता हूँ।।(1)

शुभ भाव जब मेरे होते...पुण्यबन्ध करता हूँ।
इससे उच्चगतियों में...संसार सुख भोक्ता हूँ।।
ऐसे शुभ-अशुभ भाव...कर रहा हूँ (मैं) अनादि से।
जिससे पुण्य-पाप विधाता...बना हूँ अनादि से।। (2)

इससे पंचपरिवर्तनों में...चौरासी-लक्ष्य-योनि पाकर।
चतुर्गति रूपी संसार में...जन्म-मरण(किया) अनन्त बार।।
सुद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अथवा...पंचलब्धियों को पाकर।
उपशम सम्यक्त्व पाकर पुनः त्याग किया अनेक बार।। (3)

सम्यक्त्व रहित अवस्था में, पंचपरिवर्तन (किया) अनन्त बार।
विश्व के हर द्रव्य-क्षेत्र-काल में जन्मा-मरा भी अनन्त बार।।
विश्व के हर पुद्गल द्रव्य को...ग्रहण व त्याग भी किया।
आहार-भोजन-शरीर आदि के...हेतु ग्रहण-त्याग किया।।(4)
इस दृष्टि से पूर्ण विश्व मेरे-जन्म-मरण के स्थान है।
विश्व के पूर्ण भौतिक द्रव्य...मेरे अपशिष्ट पदार्थ है।।
एक बार भी सम्यक्त्व होने से...मेरा अनन्त संसार हुआ नाश।
कुछ भव से ले अधिक से अधिक...अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन में मोक्ष।।(5)

अभी तो देव-शास्त्र-गुरु श्रद्धान सह...स्व-शुद्धात्मा का करूँ श्रद्धान।
अतः ज्ञान-चारित्र-युक्त अशुभ त्याग से शुभ में परिणमन।।
शुभ परिणमन सहित शुद्ध हेतु...कर रहा हूँ लक्ष्य निर्धारण।
जिससे पाप नाश से सातिशय पुण्य से अन्त में परिनिर्वाण।।(6)

मोक्ष से बनूँगा शुद्ध-बुद्ध-आनन्दमय सच्चिदानन्द।
पुण्य-पाप से रहित स्व-शुद्धात्मा का ही कर्त्ता-भोक्ता।।
अतएव मैं ही मेरे सभी अवस्थाओं का कर्त्ता-भोक्ता।
भले बाह्य निमित्त अनेक है, तथापि निश्चय से स्व-कर्त्ता-भोक्ता।।(7)

यह है मेरा वैश्विक रूप अनन्त भूत से भविष्य का।
मैं हूँ स्वयंभू-स्वतंत्र-अविनाशी स्वरूप 'कनक' का।।(8)

(यह कविता 'प्रार्थना द्वारा समाधान पाने की तकनीकें' के लेखक 'डॉ. जोसेफ मर्फी' से प्रभावित होकर रची।)

सागवाड़ा 01.04.2018 रात्रि

संदर्भ- मैं अब जिंदगी में कभी नहीं मानूंगा कि दूसरों में मुझे नुकसान पहुँचाने की क्षमता या शक्ति है। मैं जानता हूँ कि

उनमें ऐसी कोई शक्ति नहीं है'। जैसा आप तुरन्त अनुमान लगा सकते हैं, उनका यह कथन उपचारक प्रक्रिया का 51 प्रतिशत हिस्सा था; बाकी का काम आसान था। वे जान गए थे कि वे मानसिक लुटेरों-हत्यारों और उपद्रवियों को शह दे रहे थे, जो उनकी शान्ति और आन्तरिक शान्ति छीन रहे थे। अनेक नकारात्मक, विनाशकारी विचारों ने ही उनका पेप्टिक' अल्सर उत्पन्न किया था। उनके विचार ही उन्हें लूटने वाले चोर थे।

मैंने अपनी रूह पोशीदा भेजी-

इस जिंदगी के बाद की जिंदगी को समझने के लिए,
और मेरी रूह लौटकर मेरे पास आई
और बोली, ''मैं खुद ही जन्नत व दोजख हूँ।''

- उमर खय्याम

यह सोचना तथा जानना होगा कि जवाब या समाधान आपके पास आ चुका है, क्योंकि **सर्वज्ञाता और सर्वदृष्टा आपके भीतर ही वास करता है।**

बाइबिल कहती है **यह शाश्वत जीवन है, ताकि वे जान सकें कि आप ही एकमात्र सच्चे ईश्वर हो (जॉन त:3)।**

जीवन कभी जन्म नहीं लेता और यह कभी मरेगा भी नहीं पानी इसे गीला नहीं कर सकता, आग इसे जला नहीं सकती, हवा इसे उड़ा नहीं सकती।

यह महान सत्य याद रखना चाहिए : जैसे इंसान अपने दिल में सोचता है,

वैसा ही वह होता है। (खान-पान,व्यायाम और किसी भी तरह के खेल इस आदमी को युवा नहीं रखेंगे ।

यह जीवन शाश्वत है, ताकि वे जान सकें कि आप ही अकेले सच्चे ईश्वर हो(जॉन 17:3)। ईश्वर ही आपका जीवन है और आपकी वास्तविकता है, यह तथ्य जानना या इससे परिचित होने का मतलब यह जानना भी है कि आप अमर हैं।

दरअसल, हम सभी आयामों में जी रहे हैं, क्योंकि हम ईश्वर में जी रहे हैं, जो असीमित है।

आत्मा का फल है प्रेम, प्रसन्नता, शान्ति, धैर्य, नम्रता, अच्छाई, आस्था, विनय, संयम; इसके खिलाफ कोई नियम नहीं है (गैलेशियन्स 5:22-23)। आप असीमित की सन्तान हैं, जिसका कोई अन्त नहीं है और आप अमरता की सन्तान हैं।

अपने व्याख्यानों में वे एक ईश्वर, 'मैं हूँ'' में विश्वास पर आधारित जीवन सिद्धान्तों और अवचेतन मन की शक्ति को समझने के महत्त्व पर जोर देते थे।

मैं पुरुष और स्त्रियों को उनका दैवी उद्गम बताना चाहता हूँ और उनके भीतर मौजूद शक्तियों के बारे में भी। मैं यह जानकारी देना चाहता हूँ कि यह शक्ति उनके भीतर है और वे अपने खुद के सहाय हैं और अपनी मुक्ति हासिल करने में खुद सक्षम हैं। यही बाइबल का संदेश है और आज हमारी नब्बे प्रतिशत दुविधा इस कारण है, क्योंकि हमने बाइबल के जीवन बदलने वाले सत्यों की गलत, शाब्दिक व्याख्या कर ली है।

उनका संदेश सार रूप में यह था : **'आप सम्राट हैं, अपने संसार के शासक हैं, क्योंकि आप ईश्वर के साथ एक हैं।''(डॉ. जोसेफ मर्फी)**

भेदविज्ञान का व्यामोह त्याग कर
अनाकुल स्व संवेद्य में स्थिरत होकर अमृत बनो

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि किन्त्विमम्।
अनाकुलस्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले।। (24)

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरम्।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थमानन्दामृतं पदम्।। (25)

पद्यभावानुवाद-(चाल :-आत्मशक्ति...)

स्व-पर भेद विज्ञान करके, उसका भी व्यामोह दूर करो।
अनाकुल स्व-संवेदनमय, स्व-स्वरूप में तुम स्थिर रहो।।

स्व-आत्मा में स्वयं के द्वारा, स्वयं ही स्वयं से तुम करो ध्यान।
जिससे तुम प्राप्त करो आनन्दामृतमय अविनश्वर धाम।।

आम्बेडकर का संदेश

समता-स्वतंत्रता-बन्धुत्व : डॉ. सत्यनारायण सिंह

डा. आम्बेडकर मानववादी चिंतक थे और मानवीय स्थितियों को सुधारने के लिए पक्के राष्ट्रवादी थे। परन्तु अतिवादी, राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे। मानव की स्वतंत्रता में उनकी अटूट आस्था थी एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कट्टर समर्थक थे। डा. आम्बेडकर के सामाजिक मानववाद के 3 आधार स्वतन्त्रता, समता और भ्रातत्त्व है। उन्होंने कहा था ''समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व पर आधारित जीवन का नाम ही लोकतंत्र है।'' डा.आम्बेडकर ने वैचारिक प्रगति और सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा को प्रभावशाली माध्यम बनाया था। उनके अनुसार ज्ञान ही आदमी के जीवन की आधारशिला है। युवकों के नाम अपने पैगाम में उन्होंने कहा था ''एक तो वे शिक्षा और बुद्धि में किसी से कम नहीं रहे, दूसरे ऐशो-आराम में न पड़कर समाज का नेतृत्व करें, तीसरे समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को संभाले। समाज को संगठित कर उसकी सेवा करें।'' उन्होंने कहा था ''यदि तुम संघर्ष पर उतारू हो जावों तो सफलता तुम्हारे कदम चूमेंगी। देश अच्छा हो तो दुश्मन को रास्ता छोड़ना ही पड़ेगा।'' महिला जाग्रति पर जोर देते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा था ''किसी भी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उस समाज में महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है। ''शराबबंदी, दुराचार, शोषण के विरुद्ध महिलाओं का आह्वान करते हुए उन्होंने यहां तक कहा ''यदि तुम्हारे बच्चे शराब पीते हैं और तुम्हारा पति भ्रष्टाचारी है तो तुम उन्हें खाना मत दो। सभी मनुष्यों के अधिकार समान है।

महिलाओं को अपने साथ अच्छे व्यवहार की मांग करनी चाहिए।'' सामाजिक एवं मानवीय समस्याओं के प्रति उन्होंने नैतिक दृष्टिकोण अपनाया। जिस व्यवस्था ने विपन्नता जन्म दिया उसे वे बदलना चाहते थे। उन्होंने बहुत स्पष्ट कहा था ''सामाजिक एकता के बिना राजनैतिक एकता प्राप्त करना और कायम रखना कठिन है। सत्ता प्राप्त भी हो जाए तो वह उस मौसमी पौधे की तरह होगी जो मामूली हवा के झोंके से जड़ से ही उखड़ जाता है। जाति विहीन समाज की स्थापना के बिना सच्ची आजादी नहीं आएगी।'' उन्होंने कहा था ''मैं अपने और राष्ट्र के बीच राष्ट्र को महत्व दूंगा।''

डा. अम्बेडकर की गरीब के प्रति हमदर्दी थी। चाहे वह किसी भी जाति/धर्म समुदाय के हों। उन्होंने कहा था कि हर बच्चे को संरक्षण देना समाज का कर्त्तव्य है। वे धर्म और राजनीति को पृथक् रखना चाहते थे। उन्होंने कहा था ''मैं धर्म चाहता हूं, धर्म के नाम पर पाखंड नहीं। जो धर्म जन्म से एक को श्रेष्ठ और दूसरे को नीच बनाए रखे, वह धर्म नहीं गुलाम बनाए रखने का षड्यंत्र है। भारत में सामाजिक क्रांति के बिना सामाजिक व धार्मिक सुधार असंभव है। जात, पांत के रहते न समाज संगठित हो सकता है और न उसमें राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो सकती है। जाति विहीन समाज की स्थापना के बिना राजनैतिक आजादी व्यर्थ है। राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने एवं कायम करने की गति चाहे धीमी हो परन्तु दिशा सही होनी चाहिए। जाति विहीन समाज की स्थापना के बिना राजनैतिक आजादी व्यर्थ है। राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने एवं कायम करने की गति चाहे धीमी हो परन्तु दिशा सही होनी चाहिए। जाति विहीन समाज की स्थापना के बिना सच्ची आजादी नहीं आएगी। छूआछूत समाप्त करना मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है। भाग्यवाद मनुष्य को दब्बू, कमजोर और बुजदिल बनाता है। सभी मनुष्य एक ही मिट्टी के बने हैं। उन्हें यह अधिकार है कि वे अपने साथ अच्छे व्यवहार की मांग करे, धर्म का उद्देश्य इंसान और भगवान् के बीच संबंध न होकर इंसान इंसान के बीच अच्छे संबंध स्थापित करना है। कानून मनुष्यों की सुविधा और अनुशासन के लिए बनाए गए हैं।'' उनका कथन था सभी मनुष्य एक समान है। अतः एक मानव का दूसरे मानव द्वारा शोषण मानवता के खिलाफ है। इसलिए सभी मनुष्यों को एक दूसरे की भलाई करनी चाहिए। जैसे ऊँची नीची जमीन से अच्छी पैदावार की आशा नहीं की जा सकती, उसी प्रकार समाज में ऊँच नीच की

भावना रहने से राष्ट्र की प्रगति नहीं हो सकती। उन्होंने देश में विधान द्वारा कानून का राज स्थापित करने में पूर्ण योगदान दिया। साम्प्रदायिक एकता को उन्होंने देश में आवश्यकता बताया और फिरकापरस्ती का विरोध किया। हिन्दुओं व मुसलमानों को अपनी विचारधारा बदलकर भाईचारे की भावना लागू करनी होगी। फिरकापरस्ती व संकुचित विचारधारा को देश की एकता के लिए छोड़ना पड़ेगा। हिन्दू धर्म में प्रचलित वर्ण व्यवस्था पर प्रहार करते हुए उन्होंने कहा था कि एक वर्ण को ज्ञान प्राप्त करने, दूसरे को शस्त्र धारण करने व राज करने, तीसरे को व्यापार करने और चौथे को केवल दूसरों की सेवा करते रहने की व्यवस्था है। उनके लिए अनेक निषेध एवं निर्योग्यताएं खड़ी की गई है। जो धर्म एक को शिक्षा लाभ उठाने की शिक्षा देता व दूसरों को अज्ञानी बनाए रखना चाहता है, वह धर्म नहीं दूसरों को समाज का शाश्वत दास बनाए रखने का षड्यंत्र है। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर आश्रित रहने को बाध्य करना धर्म नहीं है। वे जाति विहीन और वर्ण विहीन समाज व्यवस्था चाहते थे। देश की शासन व्यवस्था लोक कल्याणकारी हो जिसमें सभी को फलने फूलने का अवसर मिले इसके वे पक्षधर थे। वे चाहते थे कि पूंजी का केन्द्रीयकरण नहीं हो। अवसर की समानता सभी को समान रूप से प्राप्त हो। अपने अंतिम समय में उन्होंने कहा था कि आज लोग मुझे समझ नहीं पा रहे है लेकिन हो सकता है कि मेरे नहीं रहने के बाद लोग मेरी बात को समझे। वर्तमान समाज व्यवस्था पर कठोर प्रहार करते हुए उन्होंने कहा था कि कला कौशल व उत्पादन का कार्य करने वाला श्रमिक तबका साधारण श्रेणी में रहा। इस व्यवस्था ने आदर अनादर की श्रृंखला सुदृढ़ कर दी गई। यहाँ तक कि नामकरण संस्कार भी भेदभावपूर्ण बन गया। 13 अक्टूबर 1935 में उन्होंने कहा था ''हमने समाज में समानता का दर्जा प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के प्रयास किए है। सत्याग्रह किए है परन्तु समानता के लिए कोई स्थान नहीं मिला क्योंकि हिन्दू सोसायटी उस बहुमंजिली मीनार की तरह है जिसमें प्रवेश करने के लिए न कोई सीढ़ी है, न कोई दरवाजा। जो जिस मंजिल व कमरे में पैदा हो जाता है, उसे उस मंजिल में मरना होगा।'' जातियाँ वर्ण व्यवस्था से ग्रस्त धर्म, जो कुछ वर्गों के आत्म सम्मान को चीरता है, धर्म नहीं, एक बीमारी है। धर्म जो एक गन्दे जानवर को छूने की अनुमति दे और मनुष्यों के लिए

निषेध करे, वह धर्म नहीं पागलपन है। वह धर्म जो अशिक्षित को अशिक्षित व निर्धन को निर्धन रहने की शिक्षा दे वह धर्म नहीं एक दंड है। डा. आम्बेडकर ने देश में राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय की संकल्पना की थी। समानता पर आधारित मजबूत राष्ट्र उनका वास्तविक उद्देश्य था। वे किसी जाति विशेष या धर्म पर आक्षेप करना नहीं चाहते थे। उनका स्पष्ट कथन था कि ''कल के लिए हम आज को दोषी भी नहीं मानते जिसके कारण पिछड़ेपन व विपन्नता का जन्म हुआ।'' मानववाद से प्रभावित होकर उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। वे एक युग पुरुष थे। उनकी महानता, विद्वता, समाज व्यवस्था, शासन व्यवस्था और लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए सभी ने उनका लोहा माना। मानवतावादी समाज को अपनाकर ही अम्बेडकर के सामाजिक मानववाद को समझा जा सकता है। यही उसक मूल तत्त्व है।

कर्त्ता के विभिन्न रूप

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।। (8)

According to Vyavhara Naya is the doer performer of the Pudgala Karmas.According to Nischaya Naya (Jiva is the doer performer of) Thought Karmas.According to Shuddha Naya(Jiva is the doer) of Shuddha Bhavas.

आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

इस गाथा में जीव के विभिन्न कर्तृत्वभावों का वर्णन किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से ''स्वतंत्र कर्त्ता'' अर्थात् जो कर्म को स्वतंत्र रूप से करता है उसे कर्त्ता कहते हैं। जीव भी विभिन्न अवस्था में विभिन्न कर्मों का कर्त्ता बनता है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म का तथा आदि शब्द से औदारिक, वैक्रियक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियों के योग्य जो पुद्गल पिण्ड रूप नो/ईषत् कर्म है उसका कर्त्ता है। स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट, पट, कुर्सी, टेबल, घर, चटाई, विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण, ईंट, मूर्ति आदि का भी जीव कर्त्ता है। निश्चय नय की अपेक्षा

अशुद्ध निश्चय नय से जीव चेतन कर्म अर्थात् मिथ्यात्व भाव, ईर्ष्या भाव, घृणा, द्वेष, लोभ, काम प्रवृति, अहं प्रवृत्ति का कर्त्ता है परंतु परम शुद्ध निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन, सच्चिदानन्द स्वरूप स्वभाव में परिणमन करता है तथा अनंत ज्ञान, अनंत अतीन्द्रिय सुखादि भावों का कर्त्ता होता है। छद्मस्थ अवस्था में भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से स्वभाव का कर्त्ता भी होता है परंतु केवली एवं मुक्त अवस्था में तो शुद्ध निश्चय नय से पूर्णरूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्त्ता होता है। वस्तुतः तो शुद्ध निश्चय नय से पूर्णरूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्त्ता होता है। वस्तुतः यहाँ जो आध्यात्मिक दृष्टि है उसकी अपेक्षा अशुभ, शुभ, शुद्ध भावों का जो परिमणन है, उसी का कर्तृत्वपना यहाँ कहा गया है, न कि हस्तपादादि से जो कार्य किया जाता है उसे यहाँ कर्त्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष कार्य किया जाता है उसे यहाँ कर्त्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष आध्यात्मिक दृष्टि यह है कि शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्ध भावों का कर्त्ता कहा गया है उसका अर्थ यह है कि उन शुद्ध भावों का जीव वेदन करता है न कि उन शुद्ध भावों का निर्माण करता है या बनाता है। प्राचीन आचार्यों ने भी जीव के विभिन्न कर्त्तापने का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यथा -

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गल परिणमदि।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदे।।

गा. 18 समयसार

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणमन करते हैं। इसी प्रकार दैव (कर्म) को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थ है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष उसको शक्ति प्रदान करता है, तब दैव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।
मंसवसारुहिरादिभावे उदराग्गे संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार मांस, रूधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि

भावों को प्राप्त करके 6 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भावो कम्म णिमित्तो कम्मं पुण भाव कारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं।। गा. 60 पंचास्तिकाय

निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मो से उदय से रहित चैतन्य का चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है, उससे उल्टे जो हृदय में प्राप्त कर्म है, उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रहित जो शुद्धात्म तत्त्व है, उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्त से बंधते हैं। ऐसा होने पर भी जीव संबंधी रागादिभावों का और द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादानकर्त्ता जीव ही है तथा द्रव्यकर्मों का उपादानकर्त्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान से यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किए जाने पर जीव रागादि भावों का कर्त्ता है यह बात सिद्ध है।

आदा कम्म मिलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।
तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामे।।

''संसार'' नामक जो यह आत्मा का तथाविध उस प्रकार का परिणाम है वही द्रव्यकर्म के चिपकने का बंध हेतु है, अब उस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है क्योंकि द्रव्य कर्म की संयुक्तता से वह बंध है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ संबंद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ संबद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से द्रव्य कर्म ही है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से है।

जीव परिणाम हेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि।।86

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि।87

यद्यपि जीव के रागद्वेष परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्वरूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीव कर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, इसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता किंतु मात्र इन दोनों का परस्पर एक दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सकेण भावेण।
पुग्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। गा. 88 समयसार

इस प्रकार जीव और पुद्गल में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है।

व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के रागद्वेष निमित्त पाकर कर्मपरमाणु, द्रव्यकर्म रूप में परिणमन करता है। द्रव्य कर्म के उदय से भाव कर्म उत्पन्न होते हैं परंतु निश्यचनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में कहा है-

''निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो
जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।''

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्त्ता है।

यदि एकान्ततः निश्चयनय के समान व्यवहारनय से भी जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तब अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। व्यवहार से भी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं होने पर कर्मबन्ध नहीं होगा, कर्मबंध के अभाव से संसार का अभाव हो जाएगा। संसार के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा, जो कि आगम, तर्क प्रत्यक्ष एवं अनुभव विरुद्ध है। निश्चयनय का विषय व्यवहार से संयोजना करके शिष्य, गुरुवर्य

कुन्दकुदाचार्य से निम्न प्रकार प्रश्न करता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं
किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।।
गा. 63 पंचास्तिकाय

कर्त्ता-अकर्त्ता- जीव कर्त्ता हैं, क्योंकि शुभाशुभ कर्मों का भोक्ता है। जो कर्त्ता होता है, वही भोक्ता होता है। शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता नहीं होने के कारण जीव स्वयं अपने प्रपञ्च का कर्त्ता है। प्रपञ्च का कर्त्ता होने के कारण वह प्रपञ्च से प्राप्त सुख-दुःख का भोक्ता स्वयं ही है। जीव स्वयं अपने संसार का कर्त्ता होने पर भी समस्त जीवों का एवं समस्त अजीवों का कर्त्ता नहीं है। यह मोहादि भावों की सृष्टि शुद्ध परमात्मा में नहीं हो सकती है क्योंकि शुद्ध आत्मा का स्वरूप मोहादि परिणमन रूप नहीं है। इसलिए परम ब्रह्म जगत् का कर्त्ता नहीं है, और जो जगत् का कर्त्ता है, वह शुद्ध परमात्मा नहीं हो सकता है। यदि करुणामय, दयासागर, अनंत ज्ञानी परमात्मा सृष्टि के कर्त्ता होते तब संसार में करुणारहित, निर्दयी, अज्ञानी जीवों की उपलब्धि नहीं होती। भगवान् दयाशील होकर भी एक को सुखी क्यों करते हैं और अन्य को दुःखी क्यों करते हैं। यदि इस प्रकार भेदभाव है तो उनमें पक्षपात है। जो पक्षपाती हैं वे रागीद्वेषी हैं। जो रागीद्वेषी हैं वे परमात्मा नहीं हो सकते हैं। यदि हम कहें कि परमात्मा जीव के कर्म अनुसार फल देते हैं, इसलिए उनमें पक्षपात नहीं है। यदि कर्म के अनुसार जीव को फल प्राप्त होता है, तब परमात्मा सृष्टि का कर्त्ता कैसे होगा? इतना ही नहीं, ब्रह्मा, विष्णु महेश्वरादि भी जब कर्म के अधीन हैं तब वे कैसे स्वतंत्र रूप से जगत् की सृष्टि कर सकते हैं ?

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने, क्षिप्तो महा संकटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गमने तस्मै नमः कर्मणे।।(96)
(भर्तृहरि नीतिशतक)

हम लोग देवताओं को नमस्कार करते हैं, पर वे भी दुष्टविधि के ही अधीन है।

इसलिए यदि हम विधाता को नमस्कार करते हैं तो वह विधाता भी स्वतंत्रतया हमको फल देने में समर्थ नहीं है, वे कर्म के अनुसार ही फल देते हैं इसलिए जब फल कर्म के अनुसार ही मिलता है तब हमें क्या मतलब देवताओं से और क्या मतलब विधाता से ? उस कर्म को ही क्यों न नमस्कार करें, जिस पर विधाता का भी कोई वश नहीं चलता।

परम-ब्रह्म, जीवात्मा पर दया करके भी सुख देने में समर्थ नहीं है। पूर्व जन्म में किया हुआ सुकृत ही जीव की रक्षा करता है। विष्णु भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। स्वयं विष्णु(श्री रामचंद्र) की पत्नी (सीता) को भी रावण हरण करके ले गया और उसको रामचन्द्र नहीं जान पाये एवं हठात् सीता का उद्धार भी नही हकर पाये। स्वयं विष्णु(श्री कृष्ण) को जरत कुमार ने बाण मारा एवं उस बाण के घात से प्राण का अपहरण हुआ तो भी अपनी रक्षा नहीं कर पाये। भस्मासुर जब इंद्र को जलाने के लिए दौड़ा उस समय रुद्र भी अपनी रक्षा नहीं कर पाए और भस्मासुर को भी नष्ट नहीं कर पाये। इससे सिद्ध होता है कि अन्य कोई शक्ति है, जिससे जीव की रक्षा होती है। जैसे कि भर्तृहरि ने कहा है-

वने रणे शत्रुजलाग्नि मध्ये,
महार्णवे पर्वत मस्तके वा।।
सुप्त प्रगतं विषमस्थिते वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।। (98) (नीतिशतक)

पूर्व जन्म में किया हुआ पुण्य ही पुरुष को वन में, रण में, शत्रुओं से घिर जाने पर, अग्नि में, जल में, महासमुद्र में, पर्वत की चोटी पर, सुप्तावस्था में, असावधानी में और संकट-काल आ जाने पर रक्षा करता है।

स्वयं कृष्ण नारायण ने भी अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भागवत्गीता में, लोक में कोई कर्त्ता नहीं है, इस प्रकार बताया है-

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु।
न कर्मफलं संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।

परमेश्वर भी भूत-प्राणियों के न कर्त्तापने को और न कर्मो को तथा न कर्मों के

फल के संयोग को वास्तव में रचता है, किंतु परमात्मा के सकाश (कारण) से प्रकृति ही वर्तती है अर्थात् गुण ही गुणों में वर्त्त रहे हैं।

नादते कस्यचित्पायं न चैव सुकुतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

सर्वव्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्म को और न किसी के शुभ कर्म को भी ग्रहण करता है, किंतु माया के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है। इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं।

स्याद्वाद मञ्जरी में आचार्य हेमचंद्र ने भी जगत् का कोई कर्त्ता नहीं है, ऐसा बताया है एवं कर्त्तावाद का भी खंडन किया है।

कर्त्तास्ति कश्चिज्जगतः स चैक. स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः।
इमा कुहेवाकविडम्बनाः स्युस्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम्।।

हे नाथ! जो अप्रमाणिक लोग, जगत् का कोई कर्त्ता है- 1. वह एक है, 2. सर्वव्यापी है, 3. स्वतंत्र है और 4. नित्य है आदि दुराग्रह से परिपूर्ण सिद्धांतों को स्वीकार करते हैं उनके आप अनुशासक नहीं हो सकते हैं।

संक्षिप्त में चैतन्य, पुद्गल से एक स्वतंत्र द्रव्य हैं। इसको उत्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह चैतन्य द्रव्य अन्य द्रव्य से उत्पन्न नहीं हुआ है। यह एक शाश्वतिक अनादि निधन द्रव्य है। लोक भी शाश्वत है। लोक में रहने वाला पौद्गलिक द्रव्य परिणमनशील है। पुद्गल द्रव्य भी अकृत्रिम एवं शाश्वतिक है। भौतिक सिद्धांत का जो अत्यंत मान्य विकासवाद का सिद्धांत है वह भी एकान्त रूप एवं असम्पूर्ण होने के कारण सत्य सिद्धान्त नहीं है। इस सिद्धांत में आत्मा के अस्तित्त्व के बारे में ज्ञान नहीं होने पर कारण अपूर्ण है। एकांत पक्ष होने के कारण एवं असंपूर्ण साक्षात्कार होने के कारण असत्य है। निर्जीव वस्तु से आत्मा तत्त्व उत्पन्न हुआ, इस प्रकार मानकर आत्म तत्त्व का अपमान करता है। ईश्वरवादी मत के शास्त्र भी भ्रांतिपूर्ण हैं इसका कारण वे भगवान् को विश्व का उपादान कारण मानते हैं एवं वे असत्य से सत्य के उत्पन्न होने के वाद को पोषण करते हैं। धर्म एवं विज्ञान परस्पर अनुपूरक एवं परिपूरक रूप से कार्य करते हैं अर्थात् समन्वय से कार्य करते हैं।

इस कार्य के लिए अन्य कारणान्तर की आवश्यकता नहीं होती है। जब स्वयं द्रव्य कार्य करने मे समर्थ है उस समय में अन्य कर्त्ता की आवश्यकता ही नहीं रहती है। कविवर दौलतराम जी ने इस भाव को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

किनहू न करौ न धरे को षटद्रव्यमयी न हरे को।
सो लोकमांहि बिन समता दुःख सहे जीव नित भ्रमता।। (छहढाला)

इस षड्द्रव्यमयी लोक को न किसी ने बनाया है, और न किसी के द्वारा धारण किया गया है और नहीं किसी के द्वारा नष्ट किया जा सकता है किंतु जीव बिना समता के कारण कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्त्ता होकर, संसार में परिभ्रमण करते हुए दुःख अनुभव कर रहा है।

धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं पुद्गल अकर्त्ता है, क्योंकि शुभाशुभ कर्मो का भोक्तृत्व नहीं है। सांख्य मत जो केवल प्रकृति जड़ को कर्त्ता मानते हैं उसका निरसन हुआ क्योंकि जड़ में चेतन शक्ति नहीं होने के कारण वह कर्त्ता नहीं हो सकता है। यदि केवल प्रकृति ही कर्त्ता होती तो प्रकृति को ही फल भोगना पड़ता, किंतु प्रकृति जड़ होने के कारण उसमें भोक्तृत्व शक्ति भी नहीं है।

राय-दोस वे परिहरिवि जे सम जीव णियंति।
ते सम-भावि परिट्ठिया लहु णिव्वाणु लहंति।(100)

जो राग और द्वेष को दूर करके सब जीवों को समान जानते हैं, वे साधु समभाव में विराजमान होकर शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं।

राय-रोस बे परिहरिवि जो समभाउ मुणेई।
सो समाइउ जाणि फुडु केवलि एम भणेइ। (100) योगसार पृ. 382

राग और द्वेष इन दोनों को छोड़कर जो सम भाव होता है, उसे निश्चय से सामायिक समझो। ऐसा जिनभगवान् ने कहा है।

बहिरब्भंतरकिरिया रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं(46) द्रव्य संग्रह

संग्रह के कारणों को नष्ट करने के लिए ज्ञानी के जो बाह्य और अतरंग क्रियाओं का निरोध है, श्री जिनेन्द्र का कहा हुआ वह उत्कृष्ट सम्यक् चारित्र है।

चारित्र रूप परिणत आत्मा ही धर्म है

परिणमदि-जेण दव्वं तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो।। (8) प्रव. सार

For the time being a substance is sais to be constituted of that by which it is transformed, therefore the self should be recognised as Dharma, when there is developed the condtition of Dharma.

आगे कहते हैं कि अभेदनय से इन वीतरागभावरूपी धर्म में परिणमन करता हुआ आत्मा ही धर्म है।

(दव्व) द्रव्य (जेण) जिस अवस्था या भाव से (परिणमदि) परिणमन करता है या वर्तन करता है (तक्काले) उसी समय वह द्रव्य (तम्मयत्ति) उस पर्याय या भाव के साथ तन्मय हो जाता है, ऐसा (पण्णतं) कहा गया है। (तम्हा) इसीलिए (धम्मपरिणदो) धर्म रूप भाव से वर्तन करता हुआ (आदा) आत्मा (धम्मो) धर्मरूप(मुणेयेव्वो) माना जाना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि अपने शुद्ध आत्मा के स्वभाव में परिणमन होते हुए जो भाव होता है, उसे निश्चय धर्म कहते हैं तथा पंचपरमेष्ठी आदि की भक्ति रूपी परिणति या भाव को व्यवहार धर्म कहते हैं। क्योंकि अपनी अपनी विवक्षित पर्याय से परिणमन करता हुआ द्रव्य उस पर्याय से तन्मय हो जाता है, इसलिए पूर्व में कहे हुए निश्चय धर्म और व्यवहार धर्म से परिणमन करता हुआ आत्मा ही गर्मलोहे के पिंड की तरह अभेद नय से धर्म रूप होता है, ऐसा जानना चाहिये। यह भी इसीलिये कि उपादान कारण के सदृश कार्य होता है, ऐसा सिद्धान्त का वचन है। तथा वह उपादान कारण शुद्ध अशुद्ध के भेद से दो प्रकार का है। केवलज्ञान की उत्पत्ति में रागद्वेषादि रहित स्वसंवेदन ज्ञान तथा आगम की भाषा से शुक्ल-ध्यान शुद्ध उपादान कारण है तथा अशुद्ध आत्मा रागादि रूप से परिणमन करता हुआ अशुद्ध निश्चय नय से अपने रागादि भावों का अशुद्ध उपादान कारण होता है।

समीक्षा-द्रव्य सत् स्वरूप होने के कारण शाश्वतिक भी है। द्रव्य शाश्वतिक होते हुए भी अपरिणमनशील कूटस्थ नित्य नहीं है परन्तु स्व स्वभाव त्याग किये बिना ही परिणमन करता हैं। इसका वर्णन स्वयं ग्रन्थकार आगे सविस्तार करेंगे इसलिये

इसका वर्णन पाठक आगे देखने का पुरुषार्थ करे। तथापि यहाँ कुछ परिज्ञान के लिए संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं। जब द्रव्य में परिणमन होता है तब वह द्रव्य परिणमन रूप ही होता है। जैसे-

जब पानी बर्फ रूप में परिणमन करता है तब वह पानी बर्फ रूप ही होता है और जब वह पानी वाष्प रूप में परिणमन करता है तब वह वाष्प रूप होता है। इसी प्रकार सुवर्ण जब कुंडल(कर्णफूल) रूप में परिणमन करता है तब स्वर्ण उस समय कुंडल रूप ही है। उस कुंडल को छोड़कर वह सुवर्ण अन्य रूप या अन्यत्र नहीं है। इसी प्रकार जब जीव चारित्र रूप धर्म में परिणमन करता है तब तब चारित्ररूप में तन्मय हो जाता है। उस समय जीव चारित्र रूप ही है अन्य रूप या अन्यत्र नहीं है। जैसे-

पुद्गल का मूर्तिक गुण पुद्गल में ही है अन्यत्र नहीं वैसे जीव का धर्म जीव में है जीव को छोड़कर अन्यत्र नहीं है। परन्तु जीव अनादिकाल कर्म संतति के कारण वैभाविक परिणमन से स्व स्वभावों को प्राप्त नहीं कर पाता परन्तु जब वैभाविक भाव को छोड़कर स्व स्वभाव में परिणमन करता है तब सुप्त रूप में जो स्वधर्म स्वयं में ही गुप्त रूप में था वह प्रगट हो जाता है। इस आशय को नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने वृहद् द्रव्य संग्रह में कहा है-

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
व्यवहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।। (39)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो। तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो निज आत्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्मा तत्तिमयइउ होदि हु मुक्खस कारणं आदा।।(40)

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता इस कारण उस रत्नत्रयमयी जो आत्मा है वही निश्चय से मोक्ष का कारण है।

परमात्म प्रकाश में योगेन्द्र देव ने कहा भी है-

देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ-सम-चित्ति।।(123)

आत्मदेव देवालय में नहीं है पाषाण की प्रतिमा में भी नहीं है, लेप में भी नहीं है, चित्राम की मूर्ति में भी नहीं है। लेप और चित्राम की मूर्ति लौकिकजन बनाते हैं, पंडितजन तो धातु पाषाण की ही प्रतिमा मानते हैं। सो लौकिक दृष्टांत के लिये दोहा में लेप चित्राम का भी नाम आ गया। वह देव किसी जगह नहीं रहता। वह देव अविनाशी है कर्माञ्जन से रहित है, केवलज्ञानकर पूर्ण है, ऐसा निज परमात्मा समभाव में तिष्ठ रहा है, अर्थात् समभाव को परिणत हुए साधुओं के मन में विराज रहा है, अन्य जगह नहीं है।

जीवहँ मोक्खहँ हेउ वरू दंसणु णाणु चरितु।
ते पुणु तिण्णि वि अप्पु णिच्छएँ एहउ वुत्तु।। (12)

जीवों के मोक्ष के कारण उत्कृष्ट दर्शन ज्ञान और चारित्र है फिर वे तीनों ही निश्चय कर आत्मा को ही जाने ऐसा श्री वीतरागदेव ने कहा है।

पेच्छइ जाणइ अणुचरउ अप्पिं अप्प जो जि।
दंसणु णाणु चरित्तु जिउ मोक्खहँ कारणु सो जि।। (13)

जो अपने से आपको देखता है, जानता है, आचरण करता है, वही विवेकी दर्शन ज्ञान चारित्र रूप परिणत हुआ जीव मोक्ष का कारण है।

अप्पा दंसण णाणु मुणि अप्पा चरणु वियाणि।
अप्पा संजमु सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि।। (81) यो.सा.

आत्मा को ही दर्शन और ज्ञान समझो, आत्मा ही चारित्र है, और संयम, शील तप और प्रत्याख्यान भी आत्माही मानो।

रयणत्तय-संजुत्त जिउ उत्तिम तित्थु पवित्तु।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु(83)

हे योगिन! रत्नत्रययुक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है और वही मोक्ष का कारण है अन्य कुछ मन्त्र तन्त्र मोक्ष का कारण नहीं है।

दंसणु जं पिच्छियइ बुह अप्पा विमल महंतु।
पुणु पुणु अप्पा भावियए सो चारित्त पवित्तु।। (84)

जिसके द्वारा देखा जाता है वह दर्शन है जो निर्मल महान् आत्मा है ज्ञान है, तथा आत्मा की पुनः भावना की जाती है वह पवित्र चारित्र है।

शुभ अशुभ एवं शुद्ध उपयोगात्मक जीव

जीवो परिणमदि जदा सुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो।। (9)

The Soul whose nature is amenable to modification comes to be auspicious, inauspicious or pure according as it develops auspicious, inauspicious or pure states (of consciousness)

आगे यह उपदेश करते हैं कि शुभ, अशुभ तथा शुद्ध ऐसे तीन प्रकार के उपयोग से परिणमन करता हुआ आत्मा शुभ, अशुभ तथा शुद्ध उपयोग स्वरूप होता है।

(जदा) जब (परिणाम सब्भावो) परिणमन धारी (जीवो) यह जीव (सुहेण) शुभभाव से (वा असुहेण) अथवा अशुभ भाव से (परिणमदि) परिणमन करता है तब (सुहो असुहो) शुभ परिणामों से शुभ तथा अशुभ परिणामों से अशुभ (हवदि) हो जाता है। (सुद्धेण) जब शुद्ध भाव से परिणमन करता है (तदा) तब (हि) निश्चय से (सुद्धो) शुद्ध होता है।

इसी का भाव यह है कि जैसे स्फटिक मणि का पत्थर निर्मल होने पर भी जपा पुष्प आदि लाल, काली, श्वेत स्वभाव से शुद्धबुद्ध एक स्वभाव होने पर भी व्यवहार करके गृहस्थ अपेक्षा यथासंभव राग सहित सम्यक्त्व पूर्वक दान पूजा आदि शुभ कार्यों के करने से तथा मुनि की अपेक्षा मूल व उत्तर गुणों को अच्छी तरह पालन रूप वर्तने में परिणमन करने से शुभ है, ऐसा जानना योग्य है। मिथ्यादर्शन सहित अविरति भाव, प्रमाद भाव, कषायभाव व मन वचन काय योगों के हलन चलनरूप भाव, ऐसे पांच कारण रूप अशुभोपयोग में वर्तन करता हुआ अशुद्ध जानने योग्य है तथा निश्चल रत्नत्रयमल शुद्ध उपयोग से परिणमन करता हुआ शुद्ध जानना चाहिए। इसका क्या प्रयोजन है सो कहते हैं कि सिद्धान्त में जीव के असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं। मध्यम वर्णन की अपेक्षा मिथ्यादर्शन आदि 14 गुणस्थान रूप से कहे गए हैं। इस प्रवचनसार प्राभृत शास्त्र में उन ही गुणस्थानों को संक्षेप से शुभ अशुभ तथा शुद्ध

उपयोग रूप से वर्णन किया गया है। सो ये तीन प्रकार के उपयोग 14 गुणस्थानों में किस तरह घटते हैं सेा कहते हैं-मिथ्यात्व, ससादन और मिश्र इन तीनगुणस्थानों में तारतम्य से कमती-कमती अशुभ उपयोग है। इसके पीछे असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरत तथा प्रमत्त संयत ऐसे तीन गुणस्थानों में तारतम्य से शुभोपयेाग है। उसके पीछे अप्रमत्त से लेकर क्षीणकषाय तक छः गुणस्थानों में तारातम्य से शुद्धापयोग है। उसके पीछे सयेागी जिन और अयेागी जिन इन दो गुणस्थानों में शुद्धोपयोग का फल है, ऐसा भाव है।

समीक्षा-जीव परिणाम स्वभाव के कारण परिणमन करता है। कर्म सहित जीव के तीन प्रकार के परिणमन(परिणाम) होते हैं। यथा-अशुभ, शुभ एवं शुद्ध। परन्तु कर्म रहित जीव में केवल शुद्ध परिणमन होता है। यदि जीव अशुभावस्था में है तो उसका परिणमन अशुभ होगा, शुभ होगा तो शुभ परिणमन होगा और जब शुद्ध होगा तो परिणमन शुद्ध होगा। इससे जो एकांतवादी कहते हैं कि जीव हर दृष्टिकोण में हर समय शुद्ध है। उसका मत निरसन हो जाता है। यदि हर नयापेक्षा जीव शुद्ध है तो संसार का ही अभाव हो जायेगा, संसार का अभाव होने से मोक्ष का भी अभाव हो जायेगा क्योंकि मोक्ष बंध पूर्वक होता है। यदि संसार ही नहीं है तो मोक्षमार्ग की आवश्यकता नहीं रहेगी और मोक्षमार्ग का अभाव हो जायेगा, मोक्षमार्ग के अभाव में तीर्थकर का तीर्थ प्रवर्तन उपदेश देना, उपदेश सुनना, गुरु-शिष्य संबंध, पूज्य-पूजक संबंध तथा अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु का भी अभाव हो जायेगा। जो एकांतवादी कहते है कि हर दृष्टिकोण से जीव शुद्ध है उनका वचन ही स्ववचन बाधित है क्योंकि वे स्वयं अशुद्ध है और यदि शुद्ध होते तो शरीरधारी नहीं होते, शुद्ध-बुद्ध और सर्वज्ञ होते पर यह प्रत्यक्ष, अनुभव और आगम बाधित है। आचार्य कुंदकुंद देव ने समयसार में इसी भाव का कथन निम्न प्रकार किया है-

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जंसो करेदी भावं उवओगो तस्स सो कत्ता।। (97)

यद्यपि शुद्धनय की अपेक्षा से आत्मा का उपयोग शुद्ध है, तो भी अनादिकाल से इन उपर्युक्त तीनभाव रूप परिणामों में से आत्मा जिस भाव को करता है उस समय उसका कर्त्ता होता है।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।

णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स।। (134) पृ. 132

यह आत्मा जिस समय जैसा भाव करता है उस भाव का कर्त्ता वह आत्मा होता है, अतः ज्ञानी के ज्ञानमय और अज्ञानी (संसारी) के अज्ञानमय भाव होता है।

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।

णाणिस्स दु णाणमओ ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि।। (135)

अज्ञानी-रागीद्वेषी जीव के आर्तरौद्ररूप अज्ञानमयभाव ही होता है जिससे यह कर्मों को करता रहता है, किन्तु-विरागी या समाधिस्थ जीव के ज्ञानमयभाव होते हैं**(आर्तरौद्रपरिणाम से रहित शुद्ध ज्ञानरूप-परिणाम ही होता है।)** अतः वह ज्ञानी किसी भी प्रकार का कर्म नहीं करता है।

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो।

जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया।। (136)

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो।

तम्हा सव्वे भावा अण्णाणमया अणाणिस्स।। (137)

ज्ञानी जीव के सब ही भाव ज्ञानमय ही होते हैं क्योंकि ज्ञानमय भाव से ज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अज्ञानमय भाव से अज्ञानमयभाव ही उत्पन्न होता है, अतः जीव के सभी भाव अज्ञानमय होते हैं।

जैसे साने की की सिल्ली से कुण्डलादिक आभूषण बनते हैं और लोहे के टुकड़े से कड़ाही आदि बनती है। उसी प्रकार अज्ञानी जीव के अज्ञानमय भाव से अनेक प्रकार के अज्ञान भाव होते हैं। किन्तु ज्ञानी जीव के सब ही भाव ज्ञानमय होते हैं।

जीवों के जो अतत्त्वरूप श्रद्धान होता है, वह मिथ्यात्व का उदय है। उन जीवों के जो त्याग का अभाव है वह असंयम का उदय है। इसी प्रकार उनका जो स्वरूप का अन्यथा जानना है वह अज्ञान का उदय है तथा जो जो जीवों के उपयोग का मैलापन है वह कषाय का उदय है और जीवों के शुभाशुभ रूप वचन काय की उत्साहात्मक चेष्टा विशेष होती है वह योग का उदय है। उपर्युक्त पांचों में से किसी के भी होने पर जो कर्मवर्गणाओं का समूह आता है वह ज्ञानावरणादि के रूप में आठ

प्रकार का होकर अवश्य ही जीव के साथ सम्बद्ध होता है उस समय उन मिथ्यात्वादि भावों का यह जीव कारण होता है।

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवंति हि।

सर्वेप्यज्ञाननिवृत्ता भवंत्यज्ञानिनस्तु ते।। (67)

ज्ञानी के सभी भाव ज्ञान से उत्पन्न होते हैं और अज्ञानी के सभी भाव अज्ञान से उत्पन्न होते हैं।

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकां।

द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुतां।। (68)

अज्ञानी अज्ञानमय अपने भावों की भूमिका को व्याप्त कर आगामी द्रव्य कर्म के कारण अज्ञानादिक भाव की हेतुता को प्राप्त होता है।

शुद्ध एवं शुभोपयोग का फल

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो।

पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं। (11)

The self that developed equanimity, if endowed with pure activities. attains the bliss of Nirvana and if endowed with auspicious activities attains happiness..

आगे वीतराग चारित्र रूप शुद्धोपयोग तथा सराग चारित्र रूप शुभोपयोग परिणामों का संक्षेप से फल दिखाते हैं-

(परिणदप्पा) परिणमन स्वरूप होता हुआ (अप्पा) यह आत्मा (जदि) यदि (सुद्धसंपयोगजुदो) शुद्धोपयोग नाम के शुद्ध परिणाम में परिणत होता है (णिव्वाणसुह) तब निर्वाण के सुख को (पावादि) प्राप्त करता है। (व) और यदि (सुहोवजुत्तो) शुभोपयोग में परिणमन करता है तो (सग्गसुह) स्वर्ग के सुख को पाता है।

यहां विस्तार यह है कि धर्म शब्द से अहिंसा लक्षण रूप मुनि धर्म, श्रावक का धर्म,उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्म अथवा रत्नत्रय स्वरूप धर्म का मोह क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम या शुद्ध वस्तु का स्वभाव ग्रहण किया जाता है। वही धर्म अन्य पर्याय से अर्थात् चारित्र भाव की अपेक्षा चारित्र कहा जाता है। यह सिद्धान्त का वचन है कि 'चारित्तं खलु धम्मो' (देखो गाथा 7वीं) वही चारित्र अपहृत संयम तथा

उपेक्षा संयम के भेद से वा सराग, वीतराग के भेद से वा शुभापयोग, शुद्धोपयोग के भेद से दो प्रकार का है इनमें से शुद्ध संप्रयोग शब्द से कहने योग्य जो शुद्धोपयोग रूप वीतराग चारित्र है उससे निर्वाण प्राप्त होता है। जब विकल्प रहित समाधिमय शुद्धोपयोग की शक्ति नहीं होती है तब यह आत्मा शुभोपयोग रूप सराग भाव से परिणमन करता है तब अपूर्व और अनाकुलता लक्षणधारी निश्चय सुख से विपरीत आकुलता को उत्पन्न करने वाला स्वर्ग सुख पाता है। पीछे परम समाधि के योग्य सामग्री के होने पर मोक्ष को प्राप्त करता है ऐसा सूत्र का भाव है।

समीक्षा- जीव का स्वभाव परिणमनशील होने के कारण जीव हर समय परिणमन करता है परन्तु यह परिणमन पूर्णतः पर निरपेक्ष नहीं होता है। कर्म सहित जीव के मुख्यतः तीन प्रकार का परिणमन होता है(1) अशुभ (2) शुभ एवं (3) शुद्ध चारित्र रूप परिणमन करता हुआ जीव जब शुद्ध रूप में परिणमन करता है तब समस्त पुण्य पाप रूपी बंधन से रहित होकर परिनिर्वाण/मोक्ष/मुक्त/परम स्वातंत्र अवस्था को प्राप्त करता है।

स्वशुद्धात्मा विश्वास से प्रारंभ होते हैं सच्चे-अच्छे भाव व्यवहार

- आचार्य कनकनन्दी

चालः- आत्मशक्ति)

सम्यग्दर्शन होने के अनन्तर होते हैं सच्चे-अच्छे भाव
सम्यग्दर्शन के बाद ही क्योंकि होते सम्यग्ज्ञान-आचरण।। (1)

देव-शास्त्र-गुरु श्रद्धान से होता है तत्त्वार्थ श्रद्धान।
जिससे होता स्वशुद्धात्मा श्रद्धान, जिससे होते सच्चे-अच्छे भाव।। (2)

जब होता है श्रद्धान स्व का 'मै' हूँ ''सच्चिदानन्दमय''।
तन-मन-इन्द्रिय व रागद्वेष मोह परे तब होते सच्चे-अच्छे भाव।।(3)

अष्टमद व स्तव्यसन रहित होते हैं ज्ञान व वैराग्य।
अष्टगुण व अष्टअंग सहित, उपशम संवेग आस्तिक्य भाव।। (4)

मैत्री-प्रमोद-कारूण्य-माध्यस्थ सहित होते सच्चे अच्छे भाव,
दयादान सेवा परोपकार युक्त, ख्याति पूजा लाभ रहित भाव।। (5)

ईर्ष्या तृष्णा घृणा व काम क्रोध रहित, होते हैं सच्चे-अच्छे भाव,।
पर निन्दा-अपमान वैर-विरोध रहित होते सच्चे-अच्छे भाव।। (6)

दिखावा आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड व मायाचार-ठगी रहित भाव।
होते हैं सच्चे-अच्छे भाव समता-सहिष्णुता-पावन भाव।। (7)

'गोमुख व्याघ्र व 'बगुला भक्त' के न होते सच्चे-अच्छे भाव।
यथा वेश्या व ठगों के मधुर व्यवहार में नहीं होते सच्चे-अच्छे भाव।। (8)

मत्स्यपालन व मुर्गापालन जो मांस हेतु करते हैं,
उनका मत्स्यादि को खिलाना नहीं दान व दया दत्ति हैं।। (9)

ऐसे व्यक्ति होते हैं दीन-हीन-दंभी-स्वार्थी व ढोंगी।
इनने विपरीत होते सम्यग्दृष्टि 'स्वाभिमानी' से ले 'सोऽहं' भावी।। (10)

सच्चे व अच्छे भाव-व्यवहार बिन न होता है शुभोपयोग।
जिससे न होता पाप संवर न होता सातिशयपुण्य बन्ध।। (11)

इनके धार्मिक काम से अधिक से अधिक संभव पापानुबन्धी पुण्य
जिससे वे 'अहंकार' 'नमस्कार' सहित अधिक करते पापकर्म।। (12)

सच्चे-अच्छे भाव-व्यवहार वालों का होता सातिशय पुण्य बन्ध।,
जिससे वे वैभव पाकर भी नहीं करते 'अहंकार' व 'ममकार' ।। (13)

ऐसे जीव दानदाया सेवा परोपकार सहित बनते श्रावक-साधु,।
जिससे वे क्रमशः कर्मनाशकर अन्त में बनते अरिहंत-सिद्ध।। (14)

अन्यथा सभी भाव-व्यवहार संसार हेतुक न कि मोक्ष हेतुक,।
मोक्षहेतुक आत्मविश्वास ज्ञानचरण को पालन करे 'सूरी कनक' ।। (15)

सागवाडा- 4.4.2018 रात्रि-8.28

संदर्भ :-

दुर्गति का पात्र कौन ?

णही दाणे णही पूया णही सीलं णहि गुणं ण चारित्तं।
जे जइणा भणिया ते णेरइया हुंति कुमाणुसा तिरिया।। 39।। (रयणसार)

अर्थ :- जिन जीवों ने मनुष्य पर्याय प्राप्त करके सुपात्र को दान नहीं दिया, श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा नहीं की, शीलव्रत(स्वदारसंतोष-परस्त्रीत्याग) पालन नहीं किया, मूलगुण और उत्तमगुण पालन नहीं किया चारित्र का पालन नहीं किया और श्री जिनेन्द्र देव की आज्ञा पालन नहीं की अर्थात् धर्म के आचरण तो नहीं किया। ऐसे वे मनुष्य मरकर परलोक में नारकी तिर्यंच अथवा कुमनुष्य होते हैं। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

हेयोपादेय से रहित जीव मिथ्यादृष्टि है

ण वि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च पुण्ण पावं हि।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्मउम्मुक्को।।40।। रयण.

अर्थ :- जो मनुष्य कार्य अकार्य को, हित अहित को अर्थात् सेवन करने योग्य व असेवन करने योग्य क्या है, पुण्य क्या है और पाप क्या है, धर्म क्या है-अधर्म क्या है, तत्त्व क्या है, अतत्त्व क्या है, इसका विवेक नहीं है वह मनुष्य सम्यक त्व से रहित है अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

हेयोपादेय रहित जीव के सम्यक्त्व कहां ?

ण वि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को।।41।।

अर्थ :- जो मानव अमूल्य ऐसे इस मानव देह को प्राप्त करके भी विवेक पूर्वक अब मेरे लिए क्या हेय-त्यागने योग्य है और उपादेय-ग्रहण करने योग्य क्या है, इस प्रकार हेय उपादेय के विवेक रहित प्रमादी मनुष्य निरंतर पापों की प्रवृत्ति करता है। सत्यार्थ क्या है, असत्यार्थ क्या है, नित्य का अर्थ क्या है अनित्य का अर्थ क्या है भव्य कौन है अभव्य कौन है। भव्य अभव्य क्यों कहते हैं, सम्यक्त्व मिथ्यात्व क्यों

कहते हैं इनका लक्षण क्या है आदि का जिनको विवेक विचार ज्ञान नहीं है वह मनुष्य सम्यत्व से रहित है अर्थात् धर्म से तत्त्वज्ञान से रहित मिथ्यादृष्टि है।

लौकिक जनों की संगति योग्य नहीं

लोइय जणसंगादो होइ मइमुहर कुडिल दुब्भावो
लोइय संगं तम्हा जोइ वि तिविहेण मुंचा हो।। 42।।

अर्थ :- लौकिक मनुष्यों की प्रवृत्ति अर्थात् मनुष्य अधिक बोलने वाले (वाचाल) बक्कड़ कुटिल परिणामी और दुष्ट भावों से अत्यंत क्रूर विकृत परिणामी होते हैं इसलिये लौकिक मनुष्यों की संगति कभी नहीं करे। मन वचन काय से छोड़ देना चाहिये।

सम्यक्त्वरहित जीव का लक्षण

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरुद्धो सो जीवो सम्मउम्मुक्को।।43।।

अर्थ :- उग्र प्रकृति वाले, तीव्र क्रोधादि प्रकृति वाले, दुष्ट स्वभाव वाले, दुर्भाव वाले, मिथ्या शास्त्रों के श्रवण करने वाले, दुष्ट वचन के कहने वाले, मिथ्याभिमान को धारण करने वाले, आत्मधर्म से विपरीत चलने वाले और अतिशय क्रूर प्रकृति वाले मनुष्य सम्यक्त्व रहित होते हैं।

क्षुद्र स्वभावी व दुर्भावना युक्त जीव सम्यक्त्व हीन हैं

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो अणिट्ठुपिसुणा सग्गत्थि असूयो।
गायण जायण भंडण दुस्सुणसीलो दु सम्मउम्मुक्को।। 44।।

अर्थ :- क्षुद्र प्रकृति वाले रौद्र परिणामी, क्रोधी चुगलखोर कामी, गर्विष्ठ, असहनशील, द्वेषी, गायन करने वाले, याचना करने वाले, लड़ाई झगड़ा करने वाले, दूसरों के दोषों को प्रकट करने वाले, निंद्य पापाचारी और मोही मनुष्य धर्म तथा सम्यक्त्व से रहित होते हैं।

जिन धर्म विनाशक जीवों के स्वभाव

वाणर गद्दह साण गय वग्घ वराह कराह।
पक्खि जलूय सहावणर जिणवरधम्म विणासु।। 45।।

अर्थ :- बंदर स्वभाव वाले, गधे के स्वभाव वाले, कुत्ते के स्वभाव वाले, हाथी के स्वभाव वाले, बाघ के स्वभाव वाले, शूकर के स्वभाव वाले, पक्षी के स्वभाव वाले, जलूकादि स्वभाव वाले मनुष्य श्री जिनेद्र देव प्रणीत धर्म को धारण नहीं कर सकते हैं। धर्म को लोप करने वाले होते हैं।

सम्यक्त्व की हानि का कारण

कुतव कुलिंग कुणाणी कुवय कुसीले कुदंसण कुसत्थो।
कुणिमित्ते संथुय थुइ पसंसणं सम्महाणि होइ णियमं।। 46।।

अर्थ :- मिथ्या तपश्चरण करने वाले, कुत्सित भेषधारण करने वाले, मिथ्याज्ञान की आराधना करने वाले, कुत्सित व्रत धारण करने वाले, कुशील सेवन करने वाले, मिथ्या श्रद्धानी विपरीत श्रद्धानी, मिथ्याशास्त्रों का पठन पाठन आदि करने वाले, कुत्सित आचरण, मिथ्याधर्म मिथ्यादेव मिथ्यागुरु इनकी प्रशंसा करने वाले मनुष्य सम्यक्त्व रति होते हैं।

रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन की मुख्यता

सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।
तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणक्किट्ठमिदि जिणुदिट्ठं।।47।।

अर्थ :- सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नियम पूर्वक नहीं होते हैं। जिसके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय में सम्यक्त्वगुण प्रशंसनीय है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

भावार्थ :- सम्यक्त्व गुण ही सब गुणों में प्रधान गुण है। जीव को जब तक सम्यक्त्व गुण प्राप्त नहीं होता है तब तक संसार भ्रमण का अन्त नहीं आता है। सम्यक्त्व होने के पश्चात जीव नरकवास में रहे तो भी वह श्रेष्ठ है परन्तु मिथ्यात्व सहित स्वर्ग भी सुखकारी नहीं है। सम्यक्त्व होने पर ही सम्यग्ज्ञान और चारित्र की सार्थकता होती है।

अहो! सबसे बड़ा कष्ट मिथ्यात्व

तणुकुट्ठी कुलभंगंकुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।
दाणाइ सुगुण भंगंसुगइभंगं मिच्छमेव हो कट्ठं।।48।।

अर्थ :- जिस प्रकार कोढ़ी रोगवाला मनुष्य कुष्ठ रोग शरीर के कारण अपने कुल को नष्ट करता है ठीक उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य दान पूजा चारित्र और धर्मायतनों का विध्वंस करता है, इसलिये मिथ्यात्व बहुत ही कष्टप्रद दुःखदायक है।

मिथ्यात्व से समस्त आत्मीय गुण नष्ट हो जाते हैं और सच्चे देव शास्त्र गुरु तथा धर्माचरणों से विपरीत भाव व क्रिया बनते है। अर्थात् मिथ्यात्व का सेवन करना महा दुःखों का ही कारण है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की भूमिका

जैसे बिन्दुओं से रेखा का प्रारम्भ होता है, एक से गणना का प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से होता है। बिन्दु बिना रेखा बीज बिना अंकुर की उत्पत्ति, स्थिति, एवं वृद्धि नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना मोक्षमार्ग की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि नहीं हो सकती है। महान् तार्किक दार्शनिक संत समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि-

विद्या वृत्तस्य संभूति स्थिति वृद्धि फलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव।। 31।।

जिस प्रकार बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

दर्शन ज्ञान चारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते।। 31।।

जिस प्रकार किसी भी नाव का जलाशय के उस पार जाना खेवटिया के आधीन होता है, उसी प्रकार संसारी जीव का संसार समुद्र को पार करना सम्यग्दर्शन के आधीन होता है। यद्यपि मोक्षमार्गपना ज्ञान और चारित्र में भी है, परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र में सम्यक्पना रूप नहीं होता। इसलिए मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्रधानता बतलाई गई है।

सम्यग्दर्शन को प्रधानता देने का कारण यह है कि बिना सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र सुज्ञान, सुचारित्र न होकर कुज्ञान, और कुचारित्र होते हैं, जिससे मोक्षमार्ग नहीं बनता है। लक्ष्यविहीन पथिक का गमन, गमन नहीं है किन्तु भटकाव है। लक्ष्य के

विपरीत दिक् में जितना भी गमन हो, वह गमन लक्ष्य प्राप्ति के लिये अंकिच्चितकर ही रहेगा। मान लीजिये दिल्ली स्थित एक व्यक्ति का लक्ष्य कश्मीर जाना है। मान लिया जाये कि दिल्ली से कश्मीर की दूरी 1000 कि.मी. है। यदि वह 10 बजे एक गाड़ी में बैठकर 1 घण्टा प्रति 100 कि.मी. गति से वह दक्षिण की ओर प्रयाण करेगा तब वह 11 बजे कश्मीर से 1100 कि.मी. दूर हो जायेगा। 12 बजे 1200 कि.मी. दूरी पर रहेगा। जितना-जितना वह आगे बढ़ेगा, उतना-उतना वह लक्ष्य से दूर होता जाता है क्योंकि कश्मीर दिल्ली से उत्तर की ओर है और उसका प्रयाण दक्षिण दिक की ओर हो रहा है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन रहित उसका मोक्ष प्रयाण मोक्ष में पहुँचाने के लिये समर्थ नहीं होगा। अतः श्रद्धान रूपी लक्ष्य बिन्दु पहले ही निश्चित होने चाहिये।

अमृतचन्द्रसूरि जो कुन्द कुन्द साहित्य के प्रथम टीकाकार थे वे पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में मोक्षमार्ग में सम्यक्त्व की प्रथम भूमिका का वर्णन करते हुए कहते हैं-

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुमाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन्सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च।। 21।।

रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग में सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का अखिल प्रयत्न पूर्वक आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान एवं चारित्र सम्यक् बनते हैं जिससे मोक्षमार्ग बनता है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्राथमिकता एवं प्राथमिक भूमिका का प्रतिपादन करते हुए भगवद् कुन्द कुन्द आचार्य देव निम्न प्रकार बताते हैं-

''दंसण मूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।।2।।

अनंत ज्ञानी अनंत जिनेन्द्र ने अपने शिष्यों को बताया है कि धर्म रूप वृक्ष की मूल सम्यग्दर्शन है।

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्ते भट्ठा य।
एदे भट्ठा वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति।।8।।

जो सम्यग्दर्शन से रहित है वह ज्ञान से भी एवं चरित्र से भी रहित है। दर्शन भ्रष्ट महाभ्रष्ट है। जो स्वयं भ्रष्ट है वह दूसरे को भी भ्रष्ट करते हैं। जो स्वयं मिथ्यादृष्टि हैं वह दूसरों को भी मिथ्यादर्शन के उपदेश की प्रेरणा देते हैं जिससे अन्य लोग भी मिथ्यादर्शन का अनुसरण करके भ्रष्ट होते हैं।

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ठी।
तह जिणदंसणभट्ठामूलविणट्ठा ण सिज्झंति।।10।।

जैसे वृक्ष का भूल नष्ट हो जाने से वृक्ष की शाखा प्रशाखा की वृद्धि नहीं हो सकती है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन नष्ट होने से रत्नत्रय स्वरूपी वृक्ष भी नष्ट हो जाता है जिससे मोक्षरूप फल की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष नहीं मिलता।

सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान तथा चारित्र मोक्ष के लिये कारण न होने से वे दोनों जीव के लिये भार स्वरूप हैं। यथा-

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुसः।
पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम्।।5।।

पुरुष के सम्यक्त्व से रहित शान्ति, ज्ञान, चारित्र और तप इनका महत्व पत्थर के भारीपन के समान व्यर्थ है। परन्तु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है जो वह मूल्यवान मणि के महत्व के समान पूजनीय है।

इसलिए भगवती आराधना में सम्यग्दर्शन की उपलब्धि विश्व की सम्पूर्ण उपलब्धि से भी श्रेष्ठ बताया है।

''समद्दंसण लंभो वरं खु तेलोक्क लंभादो।''

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीन लोक के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है।

नादंसणिस्य नाणं।
नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स णत्थि मोक्खो।
णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं।। (उत्तराध्ययन)

सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान के अभाव में चारित्र के गुण नहीं होते, गुणों के अभाव में मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के अभाव में निर्वाण(शाश्वत-आत्मानंद) प्राप्त नहीं होता।

''नत्थि चरित्रं सम्मत्त विहूणं'' (उत्तराध्ययन)

सम्यक्त्व (सत्य दृष्टि) के अभाव में चरित्र नहीं हो सकता।

तवेण धीरा विधुर्णति पावं अज्झप्पजोगेण खवंति मोहं।
संखीण छुदराग दोसा उत्तमा सिद्धिगादिं पंयाति।।903।।

धीर मुनि तप से पाप नष्ट करते हैं। अध्यात्म योग से मोह का क्षय करते हैं। पुनः वे उत्तम पुरुष मोह रहित और राग-द्वेष रहित होते हुये सिद्ध गति प्राप्त कर लेते हैं।

मोक्षमार्ग का क्रम -

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक मार्ग ही मोक्ष मार्ग है। तीनों की पूर्णता से तत्क्षण साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति होती है जैसे-(1) अनेक बिन्दुओं के सम्यक् संयोग से रेखा बनती है परन्तु एक बिन्दु से वा सम्यक् रूप में असंयोजित अनेक बिन्दुओं से भी रेखा नहीं बनती है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी तीन बिन्दुओं से मोक्षमार्ग रूपी रेखा बनती है।

(2) 100 संख्या के लिये एक तथा दो बिन्दुओं की सम्यक् समिष्ठी चाहिये। तीनों अंक अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से या कोई भी दो के संयोग से भी 100 संख्या नहीं बन सकती है इसी प्रकार 100 संख्या रूप मोक्ष मार्ग के लिये सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के लिये तीनों अंकों की सम्यक् संयोजना चाहिये।

बिना एक अंक स्वतन्त्र रूप से एक शून्य या दो शून्य मिलकर भी कोई विशिष्ट इकाई को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। एक अंक भी बिना दो शून्य के संयोग से कभी भी 100 संख्या नहीं बन सकती। उसी प्रकार सम्यक् दर्शन बिना ज्ञान, चरित्र, मोक्ष मार्ग के लिए अंकिचित्कर है। उसी प्रकार ज्ञान, चारित्र, रहित सम्यग्दर्शन पूर्ण मोक्षमार्ग बनाने के लिये असमर्थ हैं। जैसे 100 संख्या के लिए प्रथम संख्या एक होने पर भी एक ही सौ नहीं है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान भी पूर्ण मोक्ष मार्ग नहीं है। जब 10 के आगे एक शून्य का संयोग होता है तब 100 संख्या की पूर्णता होती है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यग्चारित्र का संयोग होता है तब पूर्ण मोक्षमार्ग बनता है।

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्व भाव उवलद्धि।
उवलद्धपयत्थो पुण सेयासेयं वियाणादी।। 705।। (मूलाचार)

जिन वचनों की श्रद्धा का नाम सम्यक्त्व है उससे ज्ञान होता है अर्थात् उस सम्यक्त्व से ज्ञान की शुद्धि होती है। अतः सम्यक्त्व से ही सम्यग्ज्ञान होता है।

सम्यग्ज्ञान से भेद प्रभेद सहित पर्यायों सहित सर्व द्रव्यों के पदार्थों का और अस्तिकायों का बोध होता है।

शंका - सम्यग्दर्शन का विषय ज्ञान से भिन्न नहीं है तो फिर तत्पूर्वक ज्ञान कैसे हुआ ?

समाधान - ऐसा दोष आप नहीं दे सकते हैं क्योंकि ज्ञान के विपरीत अनध्यवसाय और अकिंचित्कर आदि स्वरूप सम्यक्त्व से ही दूर किये जाते हैं।

पुनः पदार्थों के ज्ञानी मनुष्य श्रेय पुण्य अर्थात् कर्मों को दूर करने के कारण और अश्रेय-पाप अर्थात् कर्मों को दूर करने के कारण और अश्रेय पाप अर्थात् कर्मबन्ध के कारण अच्छी तरह से जान लेते हैं। उसी को और कहते हैं।

सेयासेव विदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवं होदि।
सील फलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहदि णिव्वाणं।। 906।।

श्रेय और अश्रेय के दाता दुःशील का नाश करके शीलवान् होते हैं पुनः उस शील के फल से अभ्युदय तथा निर्वाण पद को प्राप्त कर लेते हैं।

श्रेय और उसके कारणों के तथा अश्रेय और उसके कारणों के वेत्ता मुनि दुःशील पाप क्रिया से निवृत्त होकर चारित्र से समन्वित होते हुये अठारह हजार शील के आधार हो जाते हैं। उसके प्रसाद से स्वर्गादि सुखों का अनुभवरूप अभ्युदय प्राप्त कर अन्त में सर्व कर्मों के अभाव से उत्पन्न हुये सुखों के अनुभवरूप निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिये सभी पूर्व ग्रन्थों से चारित्र का महात्म्य कहा गया है।

समन्तभद्र स्वामी ने भी इसी सिद्धान्त को उजागर किया है-

मोह तिमिरापहरणे दर्शन लाभादवाप्त संज्ञानः।
राग द्वेष निवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः।।47।।

जब मोह रूपी अन्धकार का विध्वंस हो जाता है तब सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन की उपलब्धि के बाद राग-द्वेष को निवारण करने के लिए साधु के आचरणरूप सम्यक् चारित्र को स्वीकार करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जब तक सम्यक् चारित्र का अवलम्बन नहीं लिया जाता तब तक राग-द्वेष की निवृत्ति नहीं होती है। बिना राग-द्वेष की निवृत्ति के वीतरागता नहीं आती है। बीना वीतरागता केवलज्ञान की

प्राप्ति नहीं होती है। बिना केवलज्ञान प्राप्त किये मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा भी है -

णाणं णरस्ससारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।

सम्मताओ चरणं चरणाओ ओइ णिव्वाणं ।।31।।

ज्ञान मनुष्य का सार है। सम्यग्दर्शन भी सारभूत है। क्योंकि सम्यग्दर्शन से ज्ञान सम्यग्ज्ञानरूप परिणमन हो जाता है। सम्यग्दर्शन, सम्यकज्ञान से चारित्र सम्यक् चारित्र होता है। सम्यग्चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है। आचार्य कुन्द-कुन्द के आध्यात्मिक शास्त्ररूपी सिन्धु का मंचन करने वाले अमृत चन्द्र सूरि पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। यथा-

विगलित दर्शन मोहै : समंजस ज्ञान विदिन तत्त्वार्थः।

नित्यमपि निःप्रकम्पैः सम्यक् चारित्रमालम्ब्यम्।।37।।

दर्शन मोह प्रगलित-नष्ट होने से सम्यग्दर्शन की उपलब्धि होती है जिससे तत्त्व का परिज्ञान होता है। अतएव सम्यक्श्रद्धान एवं सम्यकज्ञान के बाद नित्य दृढ़ भाव से सम्यक् चारित्र का अवलम्बन लेना चाहिये।

रत्नत्रय के सुमेल से ही मोक्ष, अमेल से नहीं

कोई भी कार्य तत्योग्य सम्पूर्ण कारणों के समुदाय से ही होता है। अपूर्ण कारणों से कार्य नहीं हो सकता। जैसे एक त्रिभुज क्षेत्र बनाने के लिए तीन बाहु की नितान्त आवश्यकता होती है। एक भी बाहु का अभाव होने पर त्रिभुज क्षेत्र नहीं बन सकता है। एक सीढ़ी बनाने के लिए दो-दो लम्बी लकड़ी और मध्य की लकड़ियों की आवश्यकता होती है, उन तीनों प्रकार की लकड़ियों से एक भी लकड़ी का अभाव होने पर सीढ़ी नहीं बन सकती है। भात बनाने के लिए चावल,पानी, अग्नि की आवश्यकता होती है, उसमें किसी एक वस्तु का अभाव होने पर भात नहीं बन सकता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों के समवाय से जो आध्यात्मिक मार्ग बनता है, वही यथार्थ मोक्षमार्ग है।

पृथक्-पृथक् से मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है। तीनों के सम्यक् समवाय के बिना अन्य किसी भी प्रकार से मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है। इसीलिए अन्य प्रकार

मानना सम्यग्दर्शन नहीं है। लेकिन मिथ्यादर्शन है। इस मार्ग को अन्यथा मानने से निम्न प्रकार के सात मिथ्यात्व होते हैं :- यथा

(1) केवल समग्यदर्शन से ही मोक्ष मानना।

(2) केवल सम्यक्ज्ञान से ही मोक्ष मानना।

(3) केवल सम्यक्चारित्र से ही मोक्ष मानना।

(4)सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से ही मोक्ष मानना।

(5)सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान से ही मोक्ष मानना।

(6) सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से ही मोक्ष मानना।

(7) सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से मोक्ष नहीं मानना।

तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य प्रवर उमास्वामी ने मोक्षमार्ग के लिए जो सूत्र का प्रतिपादन किया है उसमें ''**सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्राणि**'' में बहुवचन है एवं ''मोक्षमार्गः'' में एक वचन का निर्देश किया है। यहाँ पर विशेष बहुवचन होने से विशेषण मार्ग शब्द भी बहुवचन होकर ''मार्गाः'' होना चाहिए, परन्तु एक वचनांत ''मार्गः'' शब्द रखे हैं। क्योंकि तीनों अलग-अलग मार्ग नहीं है। किन्तु तीनों मिलकर एक ही मोक्षमार्ग बनते हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये महान् दार्शनिक अकलंकदेवस्वामी राजवार्तिक में निम्न प्रकार कहते हैं-

मार्ग स्वभावता तीनों में समान रूप से होने के कारण उस मार्ग सवभावता की प्रधानता पर दृष्टि रखने से मार्ग शब्द में पुलिंगता और एक-वचनत्व रखने में कोई विरोध नहीं हैं।

शंका-''विद्या से अविद्या की निवृत्ति होती है, अविद्या की निवृत्ति से संस्कार का निरोध होता है, और संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध होता हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर निरोध होने से मोक्ष होता है। इसलिए अविद्या से बन्ध और विद्या से मोक्ष होता है, यह सिद्ध होता है।। 46।। पृ. 36

शंका - ''सामायिक मात्र से अनंत जीव सिद्ध हुये हैं।'' इस आर्ष वचन में ज्ञान रूप सामायिक से स्पष्टतया सिद्धि का वर्णन है क्योंकि सामायिक ज्ञान है। इसलिए ज्ञान से मोक्ष होता है, यह अर्हत् मत में भी अविसंवाद से सिद्ध होता है।

अतः जब अज्ञान से बंध और ज्ञान से मोक्ष यह सभी वादियों को निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। तब सम्यग्दर्शनादि तीनों से मोक्ष के मार्ग की कल्पना उपयुक्त नहीं है।

शंका - एवमज्ञानद् बन्धः केवलाच्च ज्ञानान्मोक्षः।। 48।। पृ. 37

इस प्रकार अज्ञान से बन्ध और ज्ञान से मोक्ष होता है।।

समाधान - यह शंका ठीक नहीं है। रसायन के समान सम्यग्दर्शनादि तीनों में अभिनाभाव सम्बन्ध है, नान्तरीयक (तीनों के साथ अविनाभाव) होने से तीनों की समग्रता के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि इसमें रसायन श्रद्धान और रसायन क्रिया का अभाव है। यदि किसी ने रसायन के ज्ञान मात्र से रसायन-फल-आरोग्य देखा हो तो बतावे ? परन्तु रसायन ज्ञान मात्र से आरोग्य फल मिलता नहीं है, न रसायन की क्रिया (अपथ्यत्यागादि) मात्र से रोगनिवृत्ति होती है। क्योंकि इसमें रसायन के आरोग्यता गुण का श्रद्धान और ज्ञान का अभाव है तथा ज्ञानपूर्वक क्रिया से रसायन का सेवन किये बिना केवल श्रद्धान मात्र से भी आरोग्यता नहीं मिल सकती। इसलिए पूर्ण फल की प्राप्ति के लिये रसायन का विश्वास, ज्ञान और उसका सेवन आवश्यक ही है। जिस प्रकार यह विवाद रहित है- उसी प्रकार दर्शन और चारित्र के अभाव में सिर्फ ज्ञान मात्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। मोक्षमार्ग के ज्ञान और तदनुरूप क्रिया के अभाव में सिर्फ श्रद्धान मात्र से मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता और न ज्ञान-श्रद्धान शून्य क्रिया मात्र से मुक्ति प्राप्त हो सकती है क्योंकि ज्ञान-श्रद्धान रहित क्रिया निष्फल होती है।

यदि ज्ञानमात्र से ही क्वचिद् अर्थसिद्धि देखी गई हो तो कहो। परन्तु ज्ञानमात्र से अर्थ की सिद्धि दृष्टि गोचर नहीं होती है। अतः मोक्षमार्ग की कल्पना तीनों से करना ही श्रेष्ठ है। ''**अनन्ताःसामायिकसिद्धा**'' वचन भी सम्यग्दर्शनादि तीनों के मोक्षमार्ग का समर्थन करता है- क्योंकि ज्ञान स्वभाव आत्मा के तत्त्व श्रद्धान पूर्वक ही सामायिक-समता भाव रूप चारित्र हो सकता है। समय, एकत्व, अभेद ये अनर्थान्तर (एकार्थवाची) हैं। समय, समता वा एकत्व वा अभेद ही सामायिक चारित्र है। सामायिक अर्थात् समस्त पाप योगों से निवृत होकर अभेद समता और वीतरागता में प्रतिष्ठित होना। यही संग्रह नय से सामायिक चारित्र कहलाता है।

''हतं ज्ञानं क्रियाहीनं, हता चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् किलाधको दग्धः पश्यन्नपि च पंगुलः।।1।।
संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञा, न ह्येकचक्रेण रथः प्रयाति।
अन्धश्च पङ्गुश्च वने प्रविष्टो, तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ।।2।।

कहा भी है क्रियाहीन ज्ञान नष्ट हो जाता है और अज्ञानियों की क्रिया निष्फल होती है। दावानल से व्याप्त वन में जिस प्रकार अन्धा इधर-उधर भाग कर भी जल जाता है, उसी प्रकार लंगड़ा देखता हुआ भी जल जाता है; क्योंकि एक चक्र से रथ नहीं चल सकता है। अतः ज्ञान और क्रिया का संयोग ही कार्यकारी है- ऐसा विद्वानों का कथन है। एक अन्धा और एक लंगड़ा दोनों मिल जायें और अन्धे कन्धे पर लंगड़ा बैठ जाये तो दोनों का ही उद्धार हो जाय। लंगड़ा रास्ता बता कर ज्ञान का कार्य करे और अन्धा पैरों से चल कर चारित्र का कार्य करे तो दोनों का ही उद्धार हो जाय। लंगड़ा रास्ता बता कर ज्ञान का कार्य करे और अन्धा पैरों से चलकर चारित्र का कार्य करे तो दोनों ही नगर में आ सकते हैं।

स्व आत्मसम्बोधन

स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान बिन न धर्म से लेकर मोक्ष तक

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः- मन रे ! तू काहे...., सायोनारा.....)
आत्मन्! तू स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान कर ऽऽऽ
इस हेतु कर देव-शास्त्र-गुरु श्रद्धान ऽऽऽ तत्त्वार्थ श्रद्धान भी कर ऽऽऽ (ध्रुव)

इसके बिना न होता सम्यग्ज्ञान ऽऽऽ दोनों बिन न सम्यग्चारित्र ऽऽऽ
तीनों के बिना न मोक्षमार्ग है ऽऽऽ मोक्षमार्ग बिन न मोक्ष प्राप्त ऽऽऽ
तीनों से युक्त तू ही तेरा मोक्षमार्ग ऽऽऽ तीनों की पूर्णता ही तेरा मोक्ष ऽऽऽ
तीनों की पूर्णतामय तू ही मोक्ष ऽऽऽ (आत्मन) (1)

देव शास्त्र-गुरु व तत्त्वार्थ श्रद्धान से ऽऽऽ जब तू किया स्वशुद्धात्म श्रद्धान्
तब ही तेरा हुआ समयग्दर्शन ऽऽऽ जिससे हुए ज्ञान-चारित्र भी सम्यक् ऽऽऽ
तीनों से युक्त तेरा मोक्षमार्ग ऽऽऽ (आत्मन्!) (2)

स्व-शुद्धात्मा दर्शन बिन न सही श्रद्धान ऽऽऽ यथा मिथ्यादृष्टि देव के सम ऽऽऽ
वे तो द्रव्यमिथ्यात्व न सेवन करते ऽऽऽ जिनप्रतिमा पूजते कुलदेव मान्य ऽऽऽ
शुद्धात्मा दर्शन बिना अन्धश्रद्धानऽऽऽ स्वरूप श्रद्धान बिन मिथ्यादर्शन ऽऽऽ (3)

कायकलेसुववासं दुद्धरतवयरणकारणं जाण।
तं णियसुद्धसरूवं परिपुण्णं चेदि कम्मणिम्मूलं।। (86) रयणसार
कम्मु ण खवेइ जो हु परब्रह्म ण जाणे सम्मउम्मुक्को।
अत्थु ण तत्थु ण जीवो लिंग घेत्तूण किं करई ।। (87)
अप्पाणं पिण पिच्छई ण मुणइ णवि सद्दहइ ण भावेइ।
बहुदुक्खभारमूलं लिंगं घित्तूण किं करई ।। (88)
जाव ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो तावं।
तेण अणंत सुहाणं अप्पाणं भावए जोई।। (89)
णियतच्चुबलद्धि विणा सम्मत्तु बलद्धि णत्थि णियमेण।
सम्मत्तुबलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि जिणुदिट्ठं।।(90)
कायक्लेश उपवासादि तपश्चरण ऽऽऽ वे होते हैं मोक्षकारण ऽऽऽ
जो निजशुद्धात्मा स्वरूप में पूर्णऽऽऽ अन्यथा केवल मिथ्याचरण ऽऽऽ
द्रव्यलिंगी के पाखण्ड काम ऽऽऽ (आत्मन्) (4)

स्व-शुद्धात्मा भावना-ज्ञान बिना ऽऽऽ न होता कर्मों का क्षय ऽऽऽ
कर्मक्षय बिन दुःख क्षय न होता ऽऽऽ दुःख क्षय हेतु करो आत्मभावना ऽऽऽ
तमनाश हेतु यथा प्रकाश करना ऽऽऽ(आत्मन्)(5)
णवि जाणइ जिणसिद्धसरूवं तिविहेण लह णियप्पाणं।
जो तिव्वं कुणई तवं सो हिंडइ दीहसंसारे ।। (124) रयणसार
णिच्छयववहारसरूवं जो रयणत्तय ण जाणइ सो।
जं कीरइ तं मिच्छारूवं सव्वं जिणु दिट्ठं ।। (125)

निजतत्त्व उपलब्धि बिन न सम्यक्त्व ऽऽऽ सम्यक्त्व बिन नहीं है मोक्ष ऽऽऽ

यह सर्वज्ञ द्वारा कथित परम सत्य ऽऽऽ अतः स्व-शुद्धात्मा का करो विश्वास ऽऽऽ
त्यागो समस्त मिथ्यात्वभ्रम ऽऽऽ (आत्मन्) (6)

निश्चय से तू ही तेरा परम सत्य ऽऽऽ द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ-तीर्थ ऽऽऽ
मोक्षमार्ग व मोक्षस्वरूप तू ही ऽऽऽ सुद्रव्यक्षेत्रादि बाह्य निमित्त ऽऽऽ
'कनक' तू तो शुद्ध-बुद्ध-आनन्द ऽऽऽ(आत्मन्)(7)

सागवाडा दि. 02.04.2018 रात्रि 08:25

अज्ञानी का तप

णवि जाणइ जिणसिद्धसरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं।
जो तिव्वं कुणइ तवं सो हिंडइ दीहसंसारे।।124।। रयण.

अर्थ :- जो मुनि न तो अरहंत देव का स्वरूप जानता है और न भगवान् सिद्ध परमेष्ठि का स्वरूप जानता है। तथा वह परमात्मा अंतर आत्मा और बहिरात्मा इन तीन भेदों को भी नहीं जानता है। फिर तो निजात्मा को कैसे जान पायेगा ? नहीं जानता है। ऐसे साधु तीव्र तपश्चरण करते हैं वे द्रव्यलिंगी हैं। उनका जन्म मरण नहीं छूटता है, वे संसार से मुक्त नहीं होते हैं बल्कि संसार में दीर्घ काल तक भ्रमण करते हैं।

भावार्थ :- पंचपरमेष्ठी का स्वरूप और आत्मा के स्वरूप को जानना और श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जो पंचपरमेष्ठी और आत्मा का स्वरूप नहीं जानता उनको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है। सम्यग्दर्शन के बिना तपश्चरण संसार में दीर्घकाल तक भ्रमण कराता है।

निश्चय व्यवहार जाने बिन सब मिथ्या

णिच्छयववहारसरूवं जो रयणत्तय ण जाणइ सो।
जं कीरइ तं मिच्छारूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं।। 125।।

अर्थ :- जो भी हो निश्चय नय और व्यवहार नय रूप रत्नत्रय को नहीं जानता है, वह जो कुछ कितना भी तपश्चरण आदि करे तो भी वह सब मिथ्यारूप होता है,

मोक्ष मार्ग में कर्म निर्जरा रूप से काम में नहीं आता है। क्योंकि रत्नत्रय ही मोक्ष का कारण है। अगर निश्चय व्यवहार रूप से न जानकर तपस्या अनुष्ठान करता है तो मोक्ष मार्ग में प्रापक नहीं है। उसको मिथ्यातप कहना चाहिये और ऐसे मिथ्यातप को करने वाला मिथ्यात्वी समझना चाहिए। ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भव बीज

किं जाणिऊण सयलं तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं
सम्मविसोहि विहीणं णाणं तवं जाण भवबीय।। 126।।

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि शुद्ध सम्यग्दर्शन के बिना समस्त तत्त्वों को जान लेने से भी क्या लाभ है ? तथा बिना शुद्ध सम्यग्दर्शन घोर तपश्चरण करने से भी क्या लाभ है ? क्योंकि शुद्ध सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान तप दोनों ही संसार के कारण समझना चाहिये।

भावार्थ :- समस्त तत्त्वों को जानकर अपना मुक्ति का प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। तथा विशेष रूप से बहुत ही तपश्चरण करने पर कार्य सिद्धि नहीं हुई लेकिन ये ज्ञान और तप संसार को बढ़ाने वाला बीज वृक्ष के समान हुआ। अर्थात् मूल में विशुद्ध सम्यग्दर्शन ही ज्ञान तप चारित्र के लिए मूल कारण है। इसे जानकर प्रथम पक्के श्रद्धानी बने उसके साथ-साथ ज्ञान तप चारित्र से मोक्ष सिद्धि होती है।

संसार की वृद्धि

वय गुण सील परिसहजयं च चरियं च तवं सडावसयं।
ज्झाणझयणं सव्वं सम्मविणा जाण भववीयं।।127।।

अर्थ :- मुनिजन तथा श्रावक देशव्रती भी जब तक सम्यग्दर्शन के अभाव में व्रत पालन करना, गुप्ति समिति पालन करना, शीलव्रत पालन करना,घोर तपश्चरण करना, छह आवश्यकों का पालन करना, ध्यान अध्ययन करना ये सब संसार के कारण भूत बीज ही है ऐसा समझना।

ये सब क्रियायें करना तो अत्यंत आवश्यक है, इनके करने से कर्मों की निर्जरा होती है, मुक्ति फल मिलता है परन्तु वह सम्यगदर्शन सहित हो, इसे हमे जानकार श्रद्धान के साथ सब क्रियायें कार्यकारी बनते हैं। यही इसका तात्पर्य है।

परलोक कैसे सुधरेगा ?

खाई पूया लाहं सक्काराइं किमिच्छसे जोई।
इच्छइ जइ परलोंय तेहिं किं तव परलोयं ।। 128।।

अर्थ :- आचार्य बड़े प्रेम से कहते हैं कि हे वत्स योगी! हे मुनिराज! यदि तू अपने परलोक को सुधारने की इच्छा करता है तो फिर अपनी ख्याति-प्रसिद्धि, सम्मान, पूजा, लाभ आदि इनकी क्यों इच्छा करता है ? मान आदर सत्कार इनकी इच्छा रखने से अपना क्या लाभ है ? वास्तव में हानि है। जो परलोक-मोक्षस्थान को पहुंचना है, तो ये सभी लाभकारी नहीं होकर हानि करने वाले हैं। लोक विरूद्ध और निश्चय मोक्ष मार्ग और मोक्ष के विरुद्ध है। इससे-हे मुनि ! इन बातों से तेरा परलोक सुधार कभी नहीं हो सकेगा। मुक्ति स्थान अभी बहुत दूर है। और तूं यहीं पर अटक रहा है। सावधान होकर आगे गमन कर। इससे अधिक क्या कहे।

अपनी शुद्ध आत्मा में रूचि

कम्माई विहाव सहावगुणं जो भाविऊण भावेण।
णियसुद्धप्पा रुच्चइ तस्स य णियमेण होइ णिव्वाणं।। 129।।

अर्थ :- जो मुनिराज कर्म के उदय से होने वाले आत्मा के वैभाविक गुणों का (राग द्वेष मोह मद मत्सर कषाय आदि भावों का) चिंतवन करता है, तथा उन कर्मों के नाश होने का भी प्रयास करता है, पुरुषार्थ करता है तब उस चिंतवन और पुरुषार्थ से अपने स्वाभाविक आत्मा के गुणों का चिंतवन होता है, और अपने निज आत्मा के उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव आदि अपने आत्मा में स्पष्ट रूप से प्रकट होते है।। जिसको अपने शुद्ध आत्मा का प्रेम होता है वह इन दोनों के यथार्थ स्वरूप का चिंतवन करते हैं। जो अपने शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करता है उसको अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

स्वाधीन का मार्ग

व्यवहार एवं निश्चय मोक्षमार्ग

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा। 39

Known that from the ordinary point of view, perfect faith, knowledge and counduct are the cause of liberation, while really one's own soul consisting of these three (is the cause of liberation).

सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्रस्वरूप जो निज आत्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

आचार्य श्री ने प्रथम महाधिकार में विश्व के मूलभूत षड्द्रव्यों का तथा द्वितीय महाधिकार में सप्त तत्त्व एवं नव पदार्थों का संक्षिप्त, सार गर्भित सांगोपांग, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक, विश्लेषण करने के अनन्तर इस तृतीय महाधिकार में स्वतंत्रता के मार्ग का वर्णन कर रहे हैं। इस गाथा में व्यवहार एवं निश्चय मोक्ष मार्ग का वर्णन आचार्य श्री ने किया है। आचार्य उमास्वामी ने भी कहा है-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

सम्यर्क् दर्शन Right Darsana belief सम्यक् ज्ञान न Right Gyan(knowledge) सम्यक् चारित्र Right Charitra (Conduct) मोक्ष मार्गः the path to liberation

Right belief, right knowledge,right conduct,these together constitute the path of liberation.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चरित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है।

रत्नत्रय :- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को धर्म या मोक्ष मार्ग इसलिए कहते हैं कि इनसे जीव बंधन में नहीं पड़ता वरन् बंधन से मुक्त होता है। जैसा कि अमृतचंद्र सूरी ने कहा है-

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चरित्रं कुत एतेभ्यो भवति बंधः।। 216 पु.उ.

सम्यग्दर्शन आत्मा की प्रतीति को कहा जाता है। आत्मा का सम्यक् प्रकार ज्ञान करना बोध सम्यग्ज्ञान कहलाता है। आत्मा में स्थिर होना अर्थात् लवलीन होना सम्यक् चारित्र कहा जाता है। इनसे बंध कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता।

कुन्दकुन्द स्वामी भी यह भेदाभेदात्मक निश्चय व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

दंसण णाण चरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।। 16 समयसार
सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि सेवतियव्यानि।
साधुना व्यवहारनयेन नित्यं सर्वकालं।

तानि पुनर्जानीहि त्रीण्यपि। शुद्धात्मानं चैव। निश्चयतः शुद्धनिश्चयतः। अयमात्रार्थ- पञ्चेन्द्रिय विषय क्रोध कषायादि रहित निर्विकल्पसमाधिमध्ये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमस्तीति।

साधु को व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र इन तीनों को भिन्न-भिन्न समझकर नित्य सदा ही इनकी उपासना करनी चाहिए। अपने उपयोग में लाना चाहिए लेकिन शुद्ध नय से वे तीनों एक शुद्धात्मा स्वरूप ही हैं। उससे भिन्न नहीं है ऐसा समझना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पञ्चेन्द्रियों के विषय और क्रोधादि कषायों से रहित जो निर्विकल्प समाधि है उसमें ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों होते हैं।

णिज्जावगो य णाणं वादो झाणं चरित्तं णावा हि।
भवसागरं तु भविया तरंति तिहि सण्णिवायेण।।

खेवटिया ज्ञान है, वायु ध्यान है और नौका चारित्र है। इन तीनों के संयोग से ही भव्य सागर में तिर जाते हैं।

णाणं पयासओ तओ सोधयो संजमो य मुत्तियरो।
तिण्हंपि य संपजोगे होदि हु जिण सासणे मोक्खो। 101

ज्ञान प्रकाशक है तप शोधक है और संयम रक्षक है इन तीनों के संयोग से ही अर्थात् मिलने पर ही जिन शासन में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तवेण धीरा विधुणंति पावं अज्झप्पजोगेण खवंति मोहं।
संखीण छुदराग दोसा उत्तमा सिद्धिगदि पयाति।। 103

धीर मुनि तप से पाप नष्ट करते हैं। अध्यात्म योग से मोह का क्षय करते हैं। पुनः वे उत्तम पुरुष मोह, रहित और राग द्वेष रहित होते हुए सिद्धि प्राप्ति कर लेते हैं।

जीवादी सद्दहणं सम्मत तेसिमधिगमो णाणं।
रागादि परिहणं चरणं ऐसा दु मोक्खसहो।। (155)

सम्यग्दर्शन-

जीवादी सद्दहण सम्मंत = जीवादिनवपदार्थानां विपरीताभिनिवेशरहितत्त्वेन श्रद्धानं सम्यग्दर्शन।

जीवादि सद्दहणं सम्मतं = जीवादि नव पदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित जो सही श्रद्धान है, वही सम्यग्दर्शनम् है।

सम्यग्ज्ञान-

तेसिमधिगमो णाणं = तेषामेव संशयविमोहविभ्रमरहितत्त्वेनाधिगमो निश्चयः परिज्ञान सम्यग्ज्ञानम्।

तेसिमधिगमो णाणं = उन्ही जीवादि पदार्थों का संशय - उभय कोटिज्ञान, विमोह-विपरीत एक कोटि ज्ञान, विभ्रम- अनिश्चित ज्ञान, इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है, निर्णय कर लिया जाता है, जान लिया जाता है, वह सम्यग्ज्ञान कहलता है।

सम्यक्चरित्र -

रागादि परिहरणं चरणं।

तेषामेव सम्बन्धित्वेन रागादिपरिहारश्चारित्र।

रागादि परिहरणं चरणं और उन्हीं के संबंध में होने वाले जो रागादिक विभाव होते हैं उनको दूर हटा देना सो सम्यक्चारित्र कहलाता है।

व्यवहार मोक्षमार्ग-

एसो दु मोक्खोपहो इत्येव व्यवहारमोक्षमार्गः।

यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

अथवा तेषामेव भूतार्थेनाधिगतानां पदार्थानां शुद्धात्मनः सकाशात् भिन्नत्वेन सम्यगवलोकनं निश्चयः सम्यक्त्वम्। तेषामेव सम्यक्परिच्छितिरूपेण शुद्धात्मनां भिन्नत्वेन निश्चयः सम्यग्ज्ञानम् तेषामेव शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चयं कृत्वा रागादिविकल्प रहित्वेन स्वशुद्धात्मन्यवस्थानं निश्चयं चारित्रमिति निश्चय मोक्षमार्ग।

भूतार्थनय के द्वारा जाने हुए उन्हें जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धआत्मा से पृथक रूप में ठीक-ठीक अवलोकन करना निश्चयसम्यग्दर्शन कहलाता है और उन्हीं

जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में जानना सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादिकरूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना निश्चय सम्यक्चारित्र है इस प्रकार यह निश्चय मोक्ष मार्ग हुआ।

"Self reverence, self knowledge and self control.
These three alone lead life to sovereign power"

निश्चय से रत्नत्रयधारी आत्मा ही मोक्ष मार्ग

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्ण दवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइय होदि हु मोक्खस्सकारणं आदा।। 40
रत्नत्रयं न वर्त्तते आत्मानं मुक्त्वा अन्यद्रव्ये।
तस्मात् तत्त्रिकमयःभवति खलु मोक्षस्य कारणं आत्मा।।

The three jewels(i.e. perfect faith,perfect knowledge and perfect conduct) do not exist in any other substance except the soul.Therefore, the soul surely is the cause of liberation.

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता है इस कारण उस रत्नत्रयमी जो आत्मा है वही निश्चय से मोक्ष का कारण हैं।

आचार्य श्री ने इस गाथा में रत्नत्रय युक्त आत्मा ही निश्चय से मोक्ष का कारण बताया है क्योंकि रत्नत्रय की पूर्णता ही मोक्ष है और रत्नत्रय आत्मा में विद्यमान रहता है।

योगेन्द्र देव ने भी योगसागर में कहा है-

रयणत्तय-संजुतं जिउ उत्तिमु तित्थु पवित्तु।
मोक्खहं कारण जोइया अण्ण ण तंतु ण मंतु।।83

हे योगिन! रत्नत्रय युक्त जीव ही उत्तम तीर्थ है, और वही मोक्ष का कारण है। अन्य कुछ मंत्र-तंत्र मोक्ष का कारण नहीं।

अप्प दंसणु णाणु मुणि अप्पा चरणु वियाणि।
अप्पा संजमु सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि।।81

आत्मा को ही दर्शन और ज्ञान समझो, आत्मा ही चारित्र है, और संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान भी आत्मा को ही माने।

रयणत्तयसजुत्तं जीव हवदि उत्तम तित्थं।
संसार तरइ जेणं रयणत्तयं दिव्व णावेण।

रत्नत्रय युक्त जीव ही उत्तम तीर्थ है। क्योंकि **''तरंति संसारं येन भव्यास्तत्तीर्थं''** अर्थात् संसार रूपी सागर से भव्य जिसके माध्यम से तिरता उसे तीर्थ कहते हैं। कहा भी है- **''तीर्थ शब्देन मार्गो रत्नत्रयात्मकः''** तीर्थ शब्द से रत्नत्रय मार्ग जानना चाहिये इसलिए इस गाथा में कहा गया है कि **''संसार तरइ जेणं रयणत्तयं दिव्य णावेण''** यह जीव जिस दिव्य नाव से संसार रूपी सागर को पार करता है, ऐसी रत्नत्रय रूपी नौका ही उत्तम तीर्थ है।

आत्मा प्रतीति रूप जो आत्म का ही गुण है उसे 'सम्यग्दर्शन' कहते हैं। आत्मा का जो परिज्ञान रूप आत्मा का गुण है, उसे ''सम्यग्ज्ञान्'' कहते हैं और आत्मा में रमण करने रूप आत्म गुण को चारित्र कहते हैं। इसलिए रत्नत्रय आत्मा का ही अभिन्न स्वभाव है। इसलिए रत्नत्रय आत्मा में ही है और साधन अवस्था में यह रत्नत्रय मोक्ष के कारण या मार्ग है तो सिद्ध अवस्था में यही रत्नत्रय मोक्षरूप कार्य या साध्य बन जाते हैं। जिस प्रकार 1.कपूर 2. अजवाइन सत्त्व, 3 पिपरमेंट से अमृतधारा बनाते हैं। इन तीनों का जब योग्य अनुपात में मिलाते हैं तब वे तीनों अमृतधारा के लिए कारण बनते हैं। क्योंकि ये तीनों धीरे-धीरे पिघलकर अमृतधारा रूप में परिणमन कर लेते हैं। जब अमृतधारा रूप परिणमन कर लेते हैं तब कार्य रूप हो जाते हैं। अमृतधारा बनने के पहले तीनों कारण थे किन्तु अमृतधारा बनने पर कार्य हो गये। इसी प्रकार रत्नत्रय भी मोक्ष के पहले कारण रहते हैं फिर मोक्ष में स्वयं कार्यरूप परिणमन कर लेते हैं। पानी से बर्फ बनती है पानी ठंडा होते-होते जब हिमांक तक ठंडा हो जाता है तब पानी ही बर्फ रूप में परिणमन हो जाता है। बर्फ बनने के पहले जो पानी बर्फ के लिए कारण था बर्फ बनने के बाद वह पानी बर्फ कार्य रूप में परिणमन हो गया। इसी प्रकार व्यवहार रूप भेद रत्नत्रय निश्चय रूप अभेद रत्नत्रय के लिए कारण है और भेद रत्नत्रय साधन अवस्था में कारण है तो सिद्ध अवस्था में कार्य रूप हो जाते हैं।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

जीवादी सद्दहणं सम्मतं रूपमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेस विमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि।।41

Samyaktva (perfect faith) is the belief in Jiva etc. That is a quality of the soul, and when this arises, Gyan (knowledge), being free from errors, surely beocmes perfect.

जीव आदि पदार्थों को जो श्रद्धान करना है वह सम्यक्त्व है और वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है। और इस सम्यक्त्व होने पर संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय इन तीनों दुरभिनिवेशों से रहित होकर ज्ञान सम्यक्ज्ञान कहलाता है।

आचार्य श्री ने इस गाथा में निश्चय एवं व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप और उसके कार्य का प्रतिपादन किया है। **''जीवादीसद्दहणं सम्मतं''** अर्थात् जीवादी षट् द्रव्य या सप्त तत्त्व या नव पदार्थ का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है और **''रूवमप्पणो तं तु''** वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। **''दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि''** अर्थात् सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान संशय विपर्यय एवं अनध्यवसाय रहित होकर सम्यग्ज्ञान हो जाता है। ऐसा प्रतिपादन करके आचार्य श्री ने सम्यग्दर्शन की महिमा का वर्णन किया है क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान कुज्ञान रहते हैं। सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यादृष्टि के 11 अंग 9 पूर्व का ज्ञान भी मिथ्याज्ञान ही रहता है। केवल ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान सम्यक् नहीं होता है, ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के विपुलज्ञान भी मिथ्याज्ञान रहेगा। सम्यग्दर्शन सहित थोड़ा सा ज्ञान भी सम्यक् हो जाएगा इसलिए ज्ञान एवं चारित्र में जो सम्यक्पना है वह वस्तुतः दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम, क्षय एवं क्षयोपशम से आता है न कि केवल ज्ञानावरणीय कर्म एवं चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से आता है।

जैसे बिन्दुओं से रेखा का प्रारंभ होता है, एक से गणना का प्रारंभ होता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग का प्रारंभ सम्यग्दर्शन से होता है। बिन्दु बिना रेखा, बीज बिना अंकुर उत्पत्ति, स्थिति एवं वृद्धि नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन बिना मोक्षमार्ग की उत्पत्ति, स्थिति वृद्धि नहीं हो सकती है। महान् तार्किक दार्शनिक संत समन्तभद्र

स्वामी कहते हैं कि -

विद्या वृत्तस्य संभूति स्थिति वृद्धि फलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वेः बीजाभावे तरोरिव।।।31

जिस प्रकार बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

दर्शनं ज्ञान चारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्ग प्रचक्ष्यते।।

जिस प्रकार किसी भी नाव का जलाशय के उस पार जाना खेवटिया के आधीन होता है उसी प्रकार संसारी जीव का संसार समुद्र को पार करना सम्यग्दर्शन के अधीन होती है। यद्यपि मोक्षमार्गपना ज्ञान और चारित्र में भी है, परंतु सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र में सम्यक्पना रूप नहीं होता। इसलिये मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्रधानता बतलाई गयी है।

सम्यग्दर्शन को प्रधानता देने का कारण यह है कि बिना सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र सुज्ञान, सुचारित्र न होकर कुज्ञान, और कुचारित्र होते हैं, जिससे मोक्षमार्ग नहीं बनता है। लक्ष्यविहीन पथिक का गमन, गमन नहीं है किंतु भटकाव है। लक्ष्य के विपरीत दिक् में जितना भी गमन हो, वह गमन लक्ष्य प्राप्ति के लिए अकिचिंतकर ही रहेगा। मान लीजिए दिल्ली स्थित एक व्यक्ति का लक्ष्य कश्मीर जाना है। मान लिया जाये कि दिल्ली से कश्मीर की दूरी 1000 किलोमीटर है। यदि वह 10 बजे एक गाड़ी में बैठकर 1 घंटा प्रति 100 किलोमीटर की गति से वह दक्षिण की ओर प्रयाण करेगा तब वह 11 बजे कश्मीर से 1100 कि.मी. दूर हो जाएगा। 12 बजे 1200 कि.मी. दूरी पर रहेगा। जितना-जितना वह आगे बढ़ेगा, उतना-उतना वह लक्ष्य से दूर होता है क्योंकि कश्मीर दिल्ली से उत्तर की ओर है और उसका प्रयाण दक्षिण दिक् की ओर हो रहा है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन रहित उसका मोक्ष प्रयाण मोक्ष में पहुंचाने के लिए समर्थ नहीं होगा। अतः श्रद्धान रूपी लक्ष्य बिन्दु पहले ही निश्चत होने चाहिये।

अमृतचंद्र जो कुन्दकुन्द साहित्य के प्रथम टीकाकार थे वे पुरुषार्थसिद्धिउपाय में मोक्षमार्ग से सम्यक्त्व की प्रथम भूमिका का वर्णन करते हुए कहते हैं-

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन्सत्येव यतो भवति ज्ञान चरित्रं च।।2

रत्नत्रय रूपी मोक्षरूप से सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का अखिल प्रयत्न पूर्वक आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान एवं चारित्र सम्यक् बनते है जिससे मोक्ष मार्ग बनता है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्राथमिकता एवं प्राथमिक भूमिका का प्रतिपादन करते हुए भगवत् कुन्दकुन्द आचार्य देव निम्न प्रकार बताते हैं

''दंसण मूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।

अनंत ज्ञानी अनंत जिनेंद्र ने अपने शिष्यों को बताया है कि धर्म रूप वृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन है।

जे दंसणेसु भट्ठा णाणभट्ठा चरित्त भट्ठा य।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति।।8

जो सम्यग्दर्शन से रहित है वह ज्ञान से भी एवं चरित्र से भी रहित है। दर्शनभ्रष्ट महाभ्रष्ट है।

जो स्वयं भ्रष्ट है वह दूसरे को भी भ्रष्ट करते हैं। जो स्वयं मिथ्यादृष्टि है वह दूसरों को भी मिथ्यादर्शन के उपदेश की प्रेरणा देते हैं जिससे अन्य लोग भी मिथ्यादर्शन का अनुसरण करके भ्रष्ट होते हैं।

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।।
तह जिणदंसणभट्ठा मूल विणट्ठा ण सिज्झंति।। 10

जैसे वृक्ष की मूल नष्ट हो जाने से वृक्ष की शाखा प्रशाखा की वृद्धि नहीं हो सकती है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन नष्ट होने से रत्नत्रय स्वरूपी वृक्ष भी नष्ट हो जाता है, जिससे मोक्षरूप फल की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष नहीं मिलता।

सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान तथा चारित्र मोक्ष के लिए कारण न होने से वे दोनों के लिए भार स्वरूप है यथा-

शमोबोधवृत्त तपसां पाषाणस्वयेव गौरवे पुंसः।
पूज्य महामणेखि तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम्।। 15 आत्मानु.

पुरुष के सम्यक्त्व से रहित शांति, ज्ञान, चरित्र और तप इनका महत्व पत्थर के भारीपन के समान व्यर्थ है। परंतु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है तो वह मूल्यवान मणि के महत्व के समान पूजनीय है।

इसलिए भगवती आराधना में सम्यग्दर्शन की उपलब्धि विश्व की संपूर्ण उपलब्धि से भी श्रेष्ठ बताया है।

''सम्मदंसण लंभो वरं खु तिलोक्क लंभादो।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीन लोक के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है

नादंसणिस्य नाणं

नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।

णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं।। उत्तराध्ययन 28/30

सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान के अभाव में चारित्र के गुण नहीं होते, गुणों के अभाव में मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के अभाव में निर्वाण शाश्वत-आत्मानंद प्राप्त नहीं होता।

''नत्थि चरित्तं सम्मत्त विहूण''। उत्तराध्ययन 28/29

सम्यक्त्व सत्य दृष्टि के अभाव में चारित्र नहीं हो सकता।

एवं जिण पण्णत्तं दंसण रयणं धरेइ भावेण।

सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स।। 21(अष्ट पाहुड)

इसी प्रकार जो जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित सम्यग्दर्शन रूप अलौकिक अमूल्य रत्न को भाव सहित धारण करता है, वह सार भूत रत्नत्रय के प्रथम सोपान में अपना पैर रखता है जो कि मोक्ष के लिए प्रथम एवं प्रधान सोपान स्वरूप है।

सम्यग्दर्शन प्रथम एवं प्रधान सोपान होने पर भी यह अंतिम सोपान नहीं है परंतु प्रथम सोपान प्राप्त किए अंतिम सोपान की प्राप्ति नहीं हो सकती है परंतु प्रथम सोपान को अंतिम सोपान मानना महती भूल है। इस सोपान को प्रथम एवं अंतिम मानने वाला आगे के लिए लक्ष्य विहीन होने से वह आगे प्रयाण नहीं कर सकता है जिससे यथार्थ से अंतिम सोपान को प्राप्त नहीं कर सकता है।

मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।

सम्यकता न लहे, सो दर्शन धारौ भव्य पवित्रा।।

आचार्य समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।

त्रिमूढापोढमष्टांग सम्यग्दर्शनमस्मयम्।। 4

आप्त-देव, आगम-शास्त्र और तपोभृत-गुरु का जो स्वरूप कहा गया है उस स्वरूप से सहित आप्त, आगम और तपोभृतका दृढ़ श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता और गुरु मूढ़ता इन तीनों मूढ़ताओं से रहित होता है। निःशंकितत्त्व, निःकाक्षित्व, निर्विचिकित्सितत्त्व, अमृढ़दृष्टित्व, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना इन आठ अंगों से सहित होता है तथा ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर आठ मद से रहित होता है। यहां कोई यह शंका करे कि शास्त्रों में छह द्रव्य सात तत्त्व तथा नौ पदार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है परंतु यहाँ आचार्य ने देव शास्त्र, गुरु की प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहकर अन्य शास्त्रों में प्रतिपादित लक्षण को संग्रह नहीं किया है, तो इस शंका का समाधान है कि आगम के श्रद्धान से ही छह द्रव्य, सात तत्त्व तथा नौ पदार्थों के श्रद्धान रूप लक्षण शास्त्र का संग्रह हो जाता है क्योंकि 'अवाधितार्थ प्रतिपादकमाप्त वचनं ह्यगमः- अबाधित' अर्थ का कथन करने वाला जो आप्त का वचन है वही आगम है। आगम का यह लक्षणकारों ने स्वीकृत किया है। इसलिए आगम के श्रद्धान में ही छह द्रव्य आदि का श्रद्धान संग्रहीत हो जाता है।

भ. महावीर जयन्ती के स्मरणार्थ

'अहंकार' 'ममकार' त्याग से सोऽहं अहं बनूँ

- आचार्य कनकनन्दी

(चालः- मन रे ! तू काहे ....)

जिया रे! तू मद को कम न समझो ऽऽ

मद में गर्भित अनन्तानुबन्धी मान मिथ्यात्व सहयोगी मान ऽऽ

अनात्मवस्तु में ममत्व भाव से (में) होता मद का सद्भाव (उद्भव)

'ममकार' से 'अहंकार' उपजता 'अहंकारी' 'ममकारी' होते मिथ्यात्वी

मिथ्यात्वी होते हैं कुज्ञानी/(कुधर्मी) जिया रे...(1)
स्वशुद्धात्मा से भिन्न तन-जन, धन...औदायिकादि जन्य अष्टमद ऽऽ
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि डिग्री में...'ममकार' 'अहंकार' करे सो मिथ्यात्वी
शुद्धात्मा वैभव से विपरीत दृष्टि/(बुद्धि) जिया रे...(2)
अष्टमदयुक्त होते वे कुदृष्टि...देव-शास्त्र-गुरु में न होती प्रतीति
तत्त्वार्थ-श्रद्धान, शुद्धात्मा-श्रद्धान...न करते है वे अहंकारी
मोह से युक्त होने से अहंकारी ऽऽजिया रे...(3)
पंचधाविनय से वे होते रहित ऽऽ देव-शास्त्र-गुरु का करते अवर्णवाद ऽऽ
निन्दा अपमान व अवज्ञा करते ऽऽ कुमति श्रुतज्ञान से स्वच्छन्द बोलते ऽऽ
सनम्र सत्यग्राही न वे होते ऽऽ जिया रे...(4)
मारिचीकुमार इसका प्रसिद्धि दृष्टान्त ऽऽ आदिनाथ को न माना हो मदमस्त ऽऽ
समवशरण से हुआ बहिनिर्गत ऽऽ मिथ्यामत प्रचार में हुआ मदमस्त ऽऽ
अरबों-खरबों जन्म में हुआ संत्रस्त ऽऽजीया...(5)
शुद्धात्मा स्वभाव का तू श्रद्धान कर ऽऽ 'अहंकार-ममकार' दूर कर ऽऽ
'आत्मगौरव' 'सोऽहं' 'अहं' को धर ऽऽ अनात्म द्रव्य-भाव को परिहर ऽऽ
द्विविध परिग्रह से तू हो पर ऽऽ जिया...(6)
देव-शास्त्र-गुरु का गुणगान कर ऽऽ स्व शुद्धात्मा का तू ज्ञान-ध्यानकर
इन का ही शोध-बोध तू कर ऽऽ वाचना-पृच्छना व कथन कर ऽऽ
'कनक' शुद्ध-बुद्ध आनन्द बन ऽऽ जिया रे...(7)

सागवाडा 23.3.2018 रात्रि 8.50

संदर्भ :- जो मनुष्य मतिज्ञान व श्रुतज्ञान के अभिमान से श्री जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित अर्थ को स्वच्छंद अपने मन कल्पित यद्वा तद्वा विरुद्धार्थ को अर्थात् आगम के सत्यार्थ को छिपाकर मिथ्या अर्थ को कहते हैं वह मिथ्यादृष्टि है।

सम्यग्दर्शन के भेद

समत्तरयणसारं मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणियं।
तं जाणिज्जइ णिच्छयववहारसरूवदो भेदं।।4।।

अर्थ :- सम्यग्दर्शन ही तीन रत्नों में प्रमुख रत्न है, यह सम्यगदर्शन मोक्षरूपी वृक्ष का मूल जड़ है। इसी सम्यग्दर्शन के निश्चय सम्यग्दर्शन एवं व्यवहार सम्यग्दर्शन ऐसे दो भेद हैं।

भावार्थ :- जीवों के परिणामों में जो विशुद्धता प्राप्त होती है वह बाह्य और आभ्यंतर कारणों के निमित्त से विशुद्धता प्राप्त होती है। उससे आत्मा की प्रतीति अर्थात् आत्मा की अभिरूचि होती है और आत्मिक गुणों की श्रद्धा होना यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। तथा आत्मा के स्वरूप को प्रकट-व्यक्त कराने वाले देव शास्त्र गुरु और धर्म का श्रद्धान होना यह व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

आत्मा अनंत गुणों का पिण्ड है, उन गुणों में सम्यग्दर्शन भी आत्मा का गुण है, वह सम्यग्दर्शन आत्मा को अपनी आत्मा के स्वभाव में स्थिर कराता है और उससे आत्मा अपने स्वरूप में परिणमन करता है, अपने आत्मगुणों में अभिरूचि करता है व पर पदार्थों को अपने से भिन्न समझकर उनको अपनाता नहीं है, यही सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?

भयविसणमलविवज्जिय, संसार सरीरभोग णिव्वण्णो।
अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।।

अर्थ :- सात प्रकार के भयों से रहित, सात व्यसनों से रहित पच्चीस शंकादि दोषों से रहित, तथा संसार शरीर और भोगों से विरक्त भाव को रखकर एवं निःशंकादिक आठ गुणों सहित होकर, पंचपरमेष्ठी में दृढ़, श्रद्धा भक्ति भावना रखना विशुद्ध सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दृष्टि दुःखी नहीं होता

णियसुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावच्छवज्जिओ णाणी।
जिणमुणिधम्मं मण्णइ गइदुक्खीहोइ सद्दिट्ठी।।6।।

अर्थ :- जो ज्ञानी भव्यात्मा पुरुष अपनी आत्मा के शुद्ध स्वभाव में अनुरक्त-तन्मय होता है और पर पदार्थ जन्य पुद्गलों की शुभाशुभ पर्यायों से विरक्त होता है और श्री जिनेन्द्र भगवान, निर्गंथ (नग्न) मुनि-गुरु तथा जिनधर्म को श्रद्धाभाव से भक्तिपूर्वक मानता है वह संसार के समस्त प्रकार के दुःखों से रहित सम्यग्दृष्टि है।

भावार्थ :- शुद्ध बुद्ध ज्ञायक एक स्वभावी परम वीतराग रूप आत्मा के स्वभाव में तन्मय होकर देव शास्त्र गुरु धर्म की प्रतीति कर वीतराग परिणति में स्थिर होने की भावना सो सम्यग्दर्शन है।

44 दोष रहित सम्यग्दृष्टि

मयमूढमणायदणं संकाइवसण भयमईयारं।
जेसिं चउदालेदो ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।

अर्थ :- जिनके आठ मद, तीन मूढता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष, सात व्यसन, सात प्रकार के भय और पांच प्रकार के अतिचार इस प्रकार चवालीस दूषण नहीं है वे सम्यग्दृष्टि हैं।

77 गुणों सहित सम्यग्दृष्टि श्रावक

उहयगुणवसण भयमलवेरग्गाइचारभत्तिविग्घं वा।
एदे सत्तत्तरिया दंसणसावयगुणा भणिया।। 8।।

अर्थ :- उभय गुण अर्थात् श्रावक के आठ मूलगुण और बारह व्रत (उत्तर गुण) सप्तव्यसन, सातभय, आठमद, आठ शंकादि दोष, तीन मूढ़ता, छह अनायतन इन दोषों से रहित तथा वैराग्य उत्पन्न करने वाली भावनाएं और मूल गुणों में और उत्तर गुणों में लगने वाले अतिचार अथवा सम्यक्त्व के पांच अतिचार रहित भक्ति व विघ्न रहित इन सबको मिलाकर सतहत्तर सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण होते हैं इस प्रकार भगवान ने कहा है।

मुक्ति सुख के पात्र कौन ?

देवगुरुसमयभत्ता संसार सरीर भोग परिचित्ता।
रयणत्तयसंजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता।।9।।

अर्थ :- जो भव्य मनुष्य देव शास्त्र और गुरु के भक्त है, और जिन्होंने संसार शरीर और भोगों से मुख मोड़ लिया है अर्थात् त्याग कर दिया है, तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र से संयुक्त है ऐसे वे मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं।

सम्यग्दर्शन के बिना दीर्घ संसार

दाणं पूया सीलं उपवासं बहुविहंपि खवणंपि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं सम्मविणा दीहसंसारं।।10।।

अर्थ :- चतुर्विध संघ मुनि आर्यिका पिंच्छी कमंडलुधारी त्यागी व व्रतधारी श्रावक श्राविकाओं के लिए आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान व अभयदान वसतिकादान देना। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, दिगम्बर साधु और जिनवाणी शास्त्र की पूजा करना। एक देश या सकल देश निरतिचार ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना। अष्टमी चतुर्दशी प्रौषध के साथ उपवास करना अथवा अन्य भी एक दो तीन आदि उपवास करना और भी अनेक धर्मानुष्ठान के उपवास करना। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित करने पर मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। अर्थात् सम्यक्त्व के बिना सब दीर्घ संसार के लिए कारण है।

अर्थ :- श्रावक के मुख्य छह आवश्यक कर्त्तव्य हैं, वे दान देना, पूजा करना ये दोनों ही श्रावक के मुख्य नित्य कर्त्तव्य हैं, इनके न करने पर श्रावक नहीं है। क्रिया नहीं है तो श्रावक धर्म नहीं है, श्रावक नहीं है। तथा ध्यान और अध्ययन करना यह मुनि का मुख्य कर्त्तव्य हैं, मुनिधर्म की षट् क्रियाएँ हैं, ये ध्यान अध्ययनादि मुख्य क्रियाएँ करते नहीं हैं तो वह मुनिधर्म नहीं है और मुनि नहीं है। अर्थात् मुनि आर्यिका ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका पिच्छिधारी सभी त्यागी जनों का धर्म का व्रत पालन करना निश्चल कर्त्तव्य है, अगर यथारूप पालन नहीं करेगा तो वह त्यागी नहीं है।

बहिरात्मा की परिणति पतंगे के समान

दाणु ण धम्मुण चागु ण भोग गुण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोहकसायग्गिमुहे पडिउ मरिउ ण संदेहो।।12।।

अर्थ :- जो श्रावक (गृहस्थ) चार प्रकार का दान तथा सप्त क्षेत्रों में दान नहीं करता है, चारित्र एवं उत्तम क्षमादि दश धर्मों का पालन नहीं करता है, हिंसादि पापारंभों का त्याग नहीं करता है, और धन का भोग भी नहीं भोगता है, वह मनुष्य मोही बाह्यदृष्टि बहिरात्मा है, लोभकषाय रूपी अग्नि के मुख में पड़कर मरण को प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। जिस प्रकार पतंगा दीपक की ज्योति को खाने के

लोभ से ज्योति के ऊपर जाता है और जलकर मर जाता है, उसी प्रकार लोभी मनुष्य की दशा होती है।

पूजा-दान-धर्म को करने वाले सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गस्थ हैं।

जिणपूजा मुणिदाणं करेइ जो देह सत्तिरूवेण।
सम्माइट्ठी सावय धम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ।।13।।

अर्थ :- जो भव्य जीव न्याय पूर्वक कमाए हुए धन से अनेक प्रकार से भगवान् जिनेन्द्र देव की गाजे बाजे नृत्यादि करता हुआ पंचामृत अभिषेक पूजा करता है, उत्सव मनाता है, और चतुर्विध संघ को आहार दानादि में द्रव्य खर्च करता है, शास्त्र प्रकाशन करता है, धर्म की प्रभावना आदि अनेक प्रकार के धर्मकार्य अपनी शक्ति के अनुसार करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक धर्मात्मा मोक्षमार्ग में रत होता है, मोक्षमार्गस्थ है, मोक्ष अधिकारी है।

व्रतों की विशेषता

निश्शल्यो व्रती (18)

A **व्रती** Vrati, or a vower should be without (blemish which is like a thron) **शल्य** shalya, which makes the whole body restless.)

जो शल्यरहित है वह व्रती है।

अनेक प्रकार से प्राणीगण को दुःख देने से शल्य कहलाती है। विविध प्रकार की वेदना रूपी शलाकाओं (सुइयों) के द्वारा जो प्राणियों को छेदती है, दुःख देती है, वे शल्य कहलाती है।

जैसे-शरीर में चुभे हुए काँटा आदि प्राणियों को बाधा करने वाली शल्य हैं, अर्थात् शरीर में चुभा हुआ काँटा प्राणियों को दुःख देता है, उसी प्रकार कर्मोदय विकार भी शारीरिक और मानसिक बाधा का कारण होने से शल्य की भाँति शल्य नाम से उपचरित किया जाता है।

माया, मिथ्यात्व और निदान के भेद से शल्य तीन प्रकार के हैं। यह शल्य तीन प्रकार की है- माया, मिथ्यात्व और निदान। माया, निकृति, वञ्चना, छल-कपट ये सब एकार्थवाची हैं। विषयभोगों की काङ्क्षा निदान है। अतत्त्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है।

इन तीन प्रकार की शल्यों से निष्क्रान्त (रहित) निःशल्य व्यक्ति व्रती कहलाता है।

निःशल्यत्व और व्रतीत्त्व में अंग-अंगिभाव विवक्षित है। क्योंकि केवल हिंसादि विरक्ति रूप व्रत के सम्बन्ध से व्रती नहीं होता है जब तक कि शल्यों का अभाव न हो। शल्यों का अभाव होने पर ही व्रत के सम्बन्ध से व्रती होता है, यहाँ ऐसा विवक्षित है। जैसे बहुत दूध और घी वाला गोमान् कहा जाता है। बहुत दूध और घृत के अभाव में बहुत सी गायों के होने पर भी गोमान् (गायवाला) नहीं कहलाता । उसी प्रकार सशल्य होने पर व्रतों के रहते हुए भी व्रती नहीं कहा जा सकता। जो व्रत सहित निःशल्य होता है, वही व्रती है।

व्रतो के भेद

अगार्यनगारश्चय(19)

(Vowers are of 2 kinds :) **अगारी** Agrari, house-holders (laymen) and **अनगार** Anagara, house-less (ascelics.)

उसके अगारी और अनागार ये दो भेद हैं। आश्रयार्थी जनों के द्वारा जो स्वीकार किया जाता है, वा उसमें पाया जाता है, वास किया जाता है, वह अगार-घर है। अगार, वेश्म, गृह ये सब एकार्थवाची हैं, आगार जिसके है, वह अगारी कहलाता है। जिसके आगार नहीं है, वह अनगार कहलाता है।

यहाँ चारित्र-मोह के उदय से घर के प्रति अनिवृत्त परिणामरूप भावागार विविक्षित है। अतः भावागार (जिसके चारित्र मोहनीय का उदय है वह) व्यक्ति किसी कारणवश घर को छोड़कर वन में रहता है तो वह भी अगारी है और चारित्रमोह के उदय के अभाव से निर्ग्रन्थ मुनि किसी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के कारणवश शून्यागार, जिनमंदिर आदि में रहता है तो भी अनगार है अर्थात् विषय-तृष्णाओं से निवृत्त मुनि यदि शून्य घर, मन्दिर आदि में रहता है तो भी वह अनगारी है। अथवा राजा की तरह व्रती कहलाता है। जैसे बत्तीस हजार देशों की अधिपति चक्रवर्ती राजा कहलाता हैं। वैसे एक देश का स्वामी वा चक्रवर्ती आधे देश का स्वामी त्रिखण्डाधिपति क्या राजा नहीं कहलाता ? अपितु, एकादेशपति वा आधे देश का पति भी राजा कहलाता ही है। उसी प्रकार अठारह हजार शील और चौरासी लाख उत्तरगुणों को धारण करने वाला

जैसे पूर्ण व्रती है वैसे अणुव्रतधारक संयतासंयत व्रती नहीं है, फिर भी अणुव्रतधारी भी व्रती कहलाता ही है।

1. पुरुरवा भील की पर्याय में भगवान् महावीर

भगवान् महावीर का जीव भी अनादि काल से संसार एवं अनेक योनियों में परिभ्रमण करते-करते महावीर भगवान् बनने के अनेकों भव पहले विश्व के मध्य लोक में सबसे पहला एवं मध्य द्वीप जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर पुष्कलावती नामक देश की पुण्डरीकिणी नगरी में एक मधु नामके वन में पुरुरवा नामक भीलरूप में जन्म लिया था। उसकी स्त्री का नाम कालिका था। उस वन में सागरसेन नामधारी एक दिगम्बर जैन संत इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे; उन्हें देखकर पुरुरवा भील उन्हें मृग समझकर उन्हें मारने के लिए उद्यत हुआ; परन्तु उसकी स्त्री ने यह कहकर मना कर दिया कि ये वन के देवता घूम रहे हैं इन्हें मत मारो। यह सुनकर पुरुरवा भील उसी समय प्रसन्नचित होकर उन मुनिराज के पास गया और श्रद्धा से नमस्कार कर उनसे उपदेश सुनकर शांत हो गया। जैन संतने उसके जीवन को सुधारने के लिए मधु,माँस, मद्य का त्याग करने के लिए प्रेरित किया जिससे उस भील ने प्रसन्नतापूर्वक व्रतों को लेकर जीवन-पर्यन्त उन व्रतों का अच्छी तरह पालन किया। इन व्रतों के कारण वह भील मर करके सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु वाला देव हुआ। इससे सिद्ध होता है कि पापी से पापी जीव भी सत्संगति के प्रभाव से पाप का त्याग करके आत्मा का विकास कर सकता है। और नीच से नीच जाति वाले भी साधु-संत के उपदेश सुनकर उनसे व्रत ले सकते हैं। साधु-संत भी **'उदार पुरुषाणां वसुधैव कुटुम्बकम''** के अनुसार प्रत्येक जीव को समता की दृष्टि से देखते हैं और उनके उद्धार के लिए यथायोग्य उपाय बताते हैं।

2. आदि तीर्थंकर ऋषदेव के पौत्र एवं आदि चक्रवर्ती भरत के पुत्र के रूप में भगवान् महावीर का जीव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी आर्य क्षेत्र में कौशल नामक देश में विनीता (अयोध्या) नामकी नगरी थी। वह देश-धन-धान्य, उत्तमजन, शिक्षा, सभ्यता संस्कृति समृद्धि से सम्पन्न था। यथा-

विद्याभ्यासाद्विना शल्यं बिना भोगेन यौवनम्।
वार्धक्यं न विना धर्माद्विनान्तोऽपि समाधिना।।37।।
नावबोधः क्रिया शून्यो न क्रिया कलवर्जिताः।
अभुक्तं न फलं भोगो नार्थधर्मद्वयच्युतः।।38।। (महापु.

वहाँ पर बिना विद्याभ्यास के बालक अवस्था व्यतीत नहीं होती थी, बिना भोगों के यौवन व्यतीत नहीं होता था, बिना धर्म के बुढ़ापा व्यतीत नहीं होता था और बिना समधि के मरण नहीं होता था वहाँ पर किसी का भी ज्ञान क्रिया रहित नहीं था, क्रिया फलरहित नहीं थी, फल बिना उपभोग के नहीं था और भोग अर्थ तथा धन दोनों से रहित नहीं था।

इसीलिए तो भारत अत्यन्त ही प्राचीनकाल से विश्वगुरु रहा; इसीलिए तो भारत सोने की चिड़या कहलाया और यह किंवदन्ती प्रचलित हुई कि भारत में दूध घी की नदियाँ बहती हैं। इस महानता के कारण स्वर्ग के देव भी भारत में जन्म लेने के लिए लालायित रहते थे तथा सशरीर स्वर्ग से आकर भारत के सपूतों के साथ क्रिया भी करते थे।

सुरास्तत्र समागत्य स्वर्गायातैर्नरोत्तमैः।
स्वर्गासम्भूतसौहार्द रमन्ते सतन्तं मुदा।।40।। (महापुराण)

वहाँ के उत्तम मनुष्य स्वर्ग से आकर उत्पन्न होते थे इसीलिए स्वर्ग में हुई मित्रता के कारण बहुत से देव स्वर्ग से आकर बड़ी प्रसन्नता से उनके साथ क्रीड़ा करते थे।

इस नगरी का स्वामी भरत था जो षट्खण्ड पृथ्वी पर विजय प्राप्त करके इस भारत का प्रथम चक्रवर्ती बना। उनके नाम पर ही इस देश का नाम भारत अभिहित हुआ। इसके पहले इसे देश का नाम आर्यावर्त था; क्योंकि प्राचीन काल से ही यहाँ पर आर्य निवास करते आ रहे हैं। भरत चक्रवर्ती आदि तीर्थंकर आदिब्रह्मा (क्योंकि आदिनाथ भगवान् ने सर्वप्रथम असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिल्प, सेवा आदि का उपदेश देने के कारण इन्हें आदि ब्रह्मा कहते हैं तथा इन्हें 15वाँ मनु भी कहते हैं।) ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। (ऋषभदेव ने ही सर्वप्रथम जीविका निर्वाह के लिए एवं क्षुधा शांत करने के लिए इक्षुरस का प्रयोग करना प्रजाओं को सिखाया था;

इसीलिए इनको इश्वाकु कहते हैं एवं इनके वंश तो इक्षाकुवंश कहते हैं। भरत चक्रवर्ती ने भी राष्ट्र की समृद्धि, व्यवस्था के लिए अनेकों कार्य किये थे इसीलिए इन्हें 16वाँ मनु कहते हैं। ऋषभदेव के पहले सार्वजनिक व्यवस्थापक और भी 14 मनु इस भारतवर्ष में हो गये हैं।

आदितीर्थकृतो ज्येष्ठोपुत्रो राजसु षोडशः।
ज्यायांश्चक्री मुछूर्तेन मुक्तोऽयंकैस्तुलां व्रजेत्।। (महापु.)

वह भरत भगवान आदिनाथ का ज्येष्ठ पुत्र था, 16वाँ मनु था, प्रथम चत्रवर्ती था और एक मुहूर्त में ही मुक्त हो गया था (केवलज्ञानी हो गया था) इसीलिए वह किसके साथ सादृश्य को प्राप्त हो सकता था ? अर्थात् किसी के साथ नहीं, वह सर्वथा अनुपम था।

भरत चक्रवर्ती की सुशीला, सुंदरी तथा सर्वगुणसम्पन्न अनंमती नामकी रानी थी। उसके गर्भ से पुरुरवा भील का जीव जो सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था उसने स्वर्ग से च्युत होकर जन्म लिया। मरीचिने अपने पितामह भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा के समय स्वयं ही गुरुभक्ति से प्रेरित होकर कच्छ आदि चार हजार राजाओं के साथ सब परिग्रह का त्याग करके निग्रंथ दीक्षा धारण कर ली। उसने बहुत समय तक तपश्चरण का क्लेश सहा और क्षुधा, शीत आदि परोषह सहन कियेः परन्तु आगे चलकर वह उन कष्टों को सहन करने में असमर्थ हो गया इसीलिए जंगल के वृक्षों से फल तोड़कर स्वयं खाने के लिए तथा वस्त्रादि ग्रहण करने के लिए उद्यत हुआ। यह देखकर वनदेवताओं ने उन्हे समझाया कि दिगम्बर जैन साधुओं का वह आचरण एवं कर्त्तव्य नहीं है। यदि ऐसी प्रवृत्ति करना है तो इस दिगम्बर मुद्रा का त्याग करना पड़ेगा। वनदेवताओं के उक्त वचन सुनकर प्रबल मिथ्यात्व कर्म से प्रेरित हुए मरीचि ने सबसे पहले परिव्राजक (ढोंगी साधु) की दीक्षा धारणकर ली। उसने उस मिथ्या धर्म का प्रचार-प्रसार भी किया। जब आदिनाथ भगवान् को केवलज्ञान हुआ तब उनकी दिव्यध्वनि सुनकर भी वह समीचीन धर्म ग्रहण नहीं कर सका। वह इस विचार से मिथ्या साधु बनकर मिथ्या मत का प्रचार-प्रसार करता रहा कि जिस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने अपने आप समस्त परिग्रहों का त्याग कर तीन लोक में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली शक्ति प्राप्त की है उसी प्रकार मैं भी संसार में अपने द्वारा चलाये हुए दूसरें

मत की व्यवस्था करूँगा और उसके प्रभाव से मैं भी प्रसिद्धि को प्राप्त करूँगा। वह इस प्रकार अभिमान से प्रेरित होकर मिथ्याभाव से विरक्त नहीं हुआ और अनेक दोषों से दूषित होने पर भी वही वेष धारण कर मिथ्या धर्म का प्रचार-प्रसार करने लगा। इसने इस भारतवर्ष में आदिनाथ के समय से ही अनेक मिथ्या आडम्बरपूर्ण धर्म का चिरकाल तक प्रचार-प्रसार करता रहा।

(4) ब्रह्मस्वर्ग में भगवान् महावीर का जीव

वह मरीचि आयु के अंत में मरकर ब्रह्म स्वर्ग में दस सागर की आयुवाला देव हुआ।

(5) जटिल ब्राह्मण के रूप में -

वह ब्रह्मस्वर्ग का देव आयु के अंत में स्वर्ग से च्युत होकर अयोध्या में कपिल ब्राह्मण की काली नामक स्त्री से जटिल नामका पुत्र हुआ।

(6) सौधर्म स्वर्ग में देव-

वह जटिल मिथ्या मत में स्थित होकर पहले के समान चिरकाल तक मिथ्या मत का प्रचार-प्रसार किया और मरकर सौधर्म-स्वर्ग में देव हुआ।

(7) पुष्यमित्र के रूप में-

वह सौधर्म स्वर्ग का देव दो सागर के स्वर्गिक सुख भोगकर आयु के अंत में वहाँ से च्युत हुआ और इसी भरत क्षेत्र के स्थूणागार नामक श्रेष्ठ नगर में भारद्वाज नामक ब्राह्मण की पुष्पदत्ता स्त्री से पुष्यमित्र नामको पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी भव में भी उसने पहले के समान मिथ्या साधु का वेष धारण कर मिथ्या धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

(8) सौधर्म स्वर्ग में देव-

मंदकषाय के कारण वह पुष्पमित्र मर करके सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयुवाला देव हुआ।

(9) अग्रिसह के रूप में-

स्वर्ग का सुख भोगकर वहाँ से च्युत होकर इस भरतक्षेत्र के श्रुतिका नामक ग्राम में अग्निभूति नामक ब्राह्मण के गौतमी नामकी पुत्री से अग्निसह नामक पुत्र उत्पन्न

हुआ। इस भव में भी वह पहले के समान मिथ्या साधु बनकर मिथ्या धर्म का ही प्रचार-प्रसार किया।

(10) देवरूप में-

अंत में वह अग्निसह मरकर सात सागर की आयुवाला देव हुआ।

(11) अग्निमित्र का भव-

वह देव अंत में वहाँ से च्युत होकर इस भरत क्षेत्र के मंदिर नामक ग्राम में गौतम नामक ब्राह्मण के कौशिकी नामक ब्राह्मणी से अग्निमित्र नामका पुत्र हुआ। इस भव में भी उसने पूर्व संस्कार के कारण मिथ्यासाधु की दीक्षा लेकर मिथ्या धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

(12) महेन्द्रस्वर्ग में देव-

अंत में वह अग्निमित्र मरकर महेन्द्र स्वर्ग में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

(13) भारद्वज रूप में-

वह महेन्द्र स्वर्ग का देव च्युत होकर पूर्वोक्त मंदिर नामक नगर में शालंकायन नामक ब्राह्मण की मंदिरा नामकी स्त्री से भारद्वाज नामका पुत्र हुआ। इस भव में भी वह पूर्व संस्कार से प्रेरित होकर मिथ्या धर्म का प्रचार प्रसार किया।

(14) महेन्द्र स्वर्ग में देव-

अंत में वह भारद्वाज मर करके महेन्द्र स्वर्ग में 7 सागर की आयुवाला देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर मिथ्या मत के प्रचार-प्रसार के कारण समस्त अधोगतियों में जन्म लेकर महावीर के जीव ने भारी दुःख को भोगा। उसने त्रस, स्थावर योनियों में असंख्यात वर्ष तक परिभ्रमण करता हुआ विभिन्न शारीरिक मानसिक दुःखों को भोग।

(15) असंख्यात वर्ष की दुःखदायी अरबों पर्यायें

निम्न प्रकार से कुछ पर्यायों का वर्णन यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ-

अकौआ	60 हजार पर्याय	केसरी	5 करोड़ पर्याय
सीप	80 हजार पर्याय	चंदन वृक्ष	3 लाख पर्याय

नींबू	20 हजार पर्याय	मछली	3 करोड़ पर्याय
अशोकवृक्ष	99 हजार पर्याय	वेश्या	16 करोड़ पर्याय
हाथी	20 करोड़ पर्याय	नीम	20 हजार पर्याय
गधा	60 करोड़ पर्याय	केला	90 हजार पर्याय
कुत्ता	30 करोड़ पर्याय	शिकारी	5 हजार पर्याय
नपुंसक	60 करोड़ पर्याय	घोड़ा	8 हजार पर्याय
स्त्री	20 करोड़ पर्याय	गर्भपात	60 हजार पर्याय
धोबी	90 करोड़ पर्याय	स्वर्ग	80 करोड़ पयार्य
असुरदेव	30 करोड़ पर्याय	बिल्ली	60 करोड़ पयार्य
भोगभूमि	60 करोड़ पर्याय	सिपि	5 करोड़ पर्याय

(16) स्थावर नामका मनुष्य-

असंख्यात वर्ष तक विभिन्न दुःखदायी योनियों में भ्रमण करते-करते पूर्वसंचित पापकर्म कुछ हल्के होने के कारण महावीर का जीव मगध देश के राजगृही नगरी में शाण्डिल्य ब्राह्मण की पारशरी नामकी पत्नी से स्थावर नामका पुत्र हुआ। इस भव में भी उसने मिथ्या अभिप्राय से ग्रसित होकर मिथ्या साधु बनकर मिथ्याधर्म का ही प्रचार-प्रसार किया।

महावीर जयंती उपलक्ष्य में 'स्व' में स्थिर होने की साधना के निमित्त

परपरिणति त्याग से बनूं परम स्वतंत्र-सुखी

-आचार्य कनकनंदी

(चालः- मन रे ! तू काहे न....., सायोनारा.....)

आत्मन् ! तू शुद्ध-बुद्ध-स्वतंत्र बन ऽऽऽ
इससे ही मिलेगा तुझे आत्मिक सुख ऽऽऽ अतः परपरिणति त्याग ऽऽऽ (ध्रुव)

परपरिणति में (से) होता विभाव भाव...विभाव ही अशुद्ध व परतंत्र ऽऽऽ
इससे ही मिलता आत्मिक दुःख आत्मिक दुःख ही अधर्म व संसार ऽऽऽ
यह ही परतंत्र व विकार ऽऽऽ (आत्मन्)(1)

तेरा ही तू कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता बनो...यह ही तेरी परमस्वतंत्रता ऽऽऽ
अन्य के कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता त्यागो ...यह ही तेरी परम स्वाधीनता ऽऽऽ
इसे ही कहते स्व-आत्माधीनता ऽऽऽ(आत्मन्)(2)

पर परिणति में(से) होते राग-द्वेष-मोह...ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-वैर-विरोधऽऽऽ
आकर्षण-विकर्षण-विभाव होते ऽऽऽ अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा-द्वन्द्व ऽऽऽ
इससे ही बन्धते कर्म व दुखऽऽऽ(आत्मन्)(3)

हर जीव स्वयं का ही कर्त्ता-भोक्ता ऽऽऽ तेरे से होता है स्वतंत्र ऽऽऽ
अन्य का परिणमन होता उसमें ऽऽऽ उसके हेतु तू न करो परिणमन
अन्यथा तू होगा उसका गुलाम ऽऽऽ (आत्मन्)(4)

अन्य के भाव-व्यवहार कथन से...भले ले लो तू सही शिक्षा ऽऽऽ
किन्तु उनके कारण न बनो दोषी...न करो राग-द्वेष-मोह-ईर्ष्याऽऽऽ
केवल बनो तू ज्ञाता-दृष्टा ऽऽऽ (आत्मन्) (5)

यह ही तेरा परम धर्म है-मोक्षमार्ग से लेकर मोक्ष ऽऽऽ
समता-शान्ति-विशुद्धि-प्रगति...आध्यात्मिक साधना व अहिंसा ऽऽऽ
'कनक' स्व-स्वभाव में करो निष्ठा ऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द में करो प्रतिष्ठा ऽऽऽ (आत्मन्) (6)

सागवाडा 30.03.2018 प्रातः 07:58

संदर्भ - अगर आपका मन भटके, तो इसे हौले से वापस लौटा लाएँ। इस उनींदी अवस्था में धीरे-धीरे और सकारात्मक अंदाज में कहें, ''मुझे अब जवाब मिल गया है, मैं जानता हूं कि मेरा अवचेतन मन जवाब जानता है।'' इसी समय समाधान की मनोदशा में जिएँ। उस भावना को महसूस करे, जो आपको तब महसूस

होती, अगर आदर्श जवाब इसी समय आपके पास होता। अपने मन को इस मनोदशा के साथ एक तनावरहित अवस्था में खेलने दें; फिर सो जाएँ। हो सकता है कि आप उम्मीद से ज़्यादा जल्दी सो जाएँ, लेकिन आप जवाब के बारे में सोच रहे थे, इसलिए आपका समय बर्बाद नहीं हुआ है। अगर जागने पर भी आपको जवाब न मिले, तो किसी दूसरी चीज़ के बारे में व्यस्त हो जाएँ। जब आप अपने काम में मसरूफ होंगे, तब शायद जवाब आपके मन में उसी तरह उछलकर आ जाएगा, जिस तरह टोस्ट किसी टोस्टर से उछलकर बाहर आ जाता है।

उसने इन सरल निर्देशों पर अमल किया, जिनका इस्तेमाल हर रात को किसी भी तरह की समस्याएँ सुलझाने के लिए किया जा सकता है। इस प्रक्रिया के बाद चौथे दिन की सुबह जवाब उसके चेतन मन में तब आया, जब वह दाढ़ी बना रहा था। इसका कारण यह था कि दाढ़ी बनाते समय वह तनावरहित था; तब अवचेतन मन की बुद्धिमता और सहज बोध उसके सतही या चेतन तार्किक मन तक पहुँच गया।

अवचेतन आपको मार्गदर्शन देगा, लेकिन इसके लिए आपको अपने चेतन मन में एक निश्चित निष्कर्ष व निर्णय पर पहुँचना होगा। आपको डगमगाना या हिचकिचाना नहीं चाहिए। दूसरे शब्दों में, आपको ऊपर बताए जासूस की तरह पक्का इरादा करना होगा और यह सोचना तथा जानना होगा कि जवाब या समाधान उसके पास आ चुका है, क्योंकि सर्वज्ञाता और सर्वदृष्टा आपके भीतर ही वास करता है।

कई लोग अपने ज़्यादा गहरे या अवचेतन मन की कार्यविधि को नहीं समझ पाते है, इसलिए अनजाने में ही वे इस तरह के या ऐसे ही उलझन भरे सवालों के जवाब अपने पास पहुँचने से रोक लेते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि जब भी अवचेतन किसी विचार को स्वीकार करता है, तो यह तुरंत ही उस पर अमल करने लगता है। अपने लक्ष्य को पाने के लिए यह अपने तमाम शक्तिशाली संसाधनों का इस्तेमाल करता है और हमारी गहराइयों में छिपी असीमित मानसिक व आध्यात्मिक सारी शक्तियों को सक्रिया कर देता है। यह नियम अच्छे-बुरे दोनों ही तरह के विचारों के मामले में सच है। यानी, अगर हम इसका इस्तेमाल नकारात्मक तरीके से करते है, तो हमें मुश्किल, असफलता और दुविधा मिलेगी। जब हम इसका इस्तेमाल सकारात्मक तरीके से करते हैं, तो हमें मार्गदर्शन स्वतंत्रता और मानसिक शांति मिलेगी। अगर

हमारे विचार सकारात्मक, सृजनात्मक और प्रेमपूर्ण है, तो हमें अनिवार्यतः सही जवाब मिलेंगे। इससे यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि अवचेतन से किसी विचार को स्वीकार कराने के लिए हमें बस एक ही चीज़ करनी है। वह एकमात्र चीज़ यह है कि हम उसकी सच्चाई को इसी समय महसूस करें। बाक़ी का काम हमारे मन का नियम कर देगा। जब हम आग्रह को आस्था और विश्वास के साथ अपने अवचेतन मन के हवाले करते हैं, तो इसके बाद यह कमान सँभाल लेता है।

हम इसी तरह की बातें बोलकर अपनी समस्याओं के जवाब और अपनी प्रगति को बाधित कर लेते हैं : ''हालात बदतर होते जा रहे हैं।'' ''मुझे कभी जवाब नहीं मिलेगा।'' मुझे बाहर निकलने की कोई सूरत नज़र नहीं आ रही।'' यह निराशजनक है।'' मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा है कि क्या करूँ।'' मैं पूरी तरह से उलझन में हूँ।'' जब हम ऐसी बातें बोलते हैं, तो हमें अवचेतन मन से कोई प्रतिक्रिया या सहयोग नहीं मिलता है। समय काटने वाले सैनिकों की तरह हम न तो आगे, न ही पीछे जाते हैं। दूसरे शब्दों में, हम कहीं नहीं पहुँच पाते हैं।

अगर हम टैक्सी में जाएँ और पाँच मिनट में ही ड्राइवर को आधा दर्जन अलग-अलग दिशाएँ बताएँ, तो वह बहुत उलझन में पड़ जाएगा और शायद हमें कहीं भी ले जाने से इंकार कर देगा। यही हमारे अवचेतन मन के साथ होता है। हमारे मन में बिलकुल स्पष्ट विचार होना चाहिए। हमें एक निश्चित निर्णय पर पहुँचना चाहिए कि बाहर निकलने का एक रास्ता है, मुश्किल समस्याओं का एक समाधान है। केवल अवचेतन के भीतर की असीम प्रज्ञा ही जवाब जानती है। जब हम अपने चेतन मन में स्पष्ट निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, तो हमारा इरादा पक्का हो जाता है। हमारा विश्वास ही हमारे जीवन में सच हो जाता है।

विश्वास का मतलब है मन में रखा गया एक दृढ़ विचार या अवधारणा। वह विचार या धारणा चाहे जैसी हो, प्रतिक्रिया उसी अनुरूप मिलेगी। यदि हमारी धारणा यह है, ''बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है'', या ''मुझे कोई जवाब नहीं मिल सकता,'' तो हम दुविधा और अराजकता की निश्चित प्रतिक्रिया का आह्वान कर रहे हैं। यदि हमारा विचार बुद्धिमत्तापूर्ण है, तो हमें सही प्रतिक्रिया मिलेगी। हम सभी जानते हैं कि कोई भी काम किसी विचार की बाहरी अभिव्यक्ति मात्र होता है।

हमारा सृजनात्मक कार्य या निर्णय हमारे मन में मौजूद बुद्धिमत्तापूर्ण या सच्चे विचार की बाहरी अभिव्यक्ति है। सहज बोध आंतरिक मार्गदर्शन या बुद्धिमता की अभिव्यक्ति है। ऐसा नहीं है कि मार्गदर्शन या जवाब माँगने के बाद हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने वाली स्पष्ट और आरामदेह सीढ़ियों को नज़रअंदाज कर दें। हम तो बस समाधान के बारे में सोचते समय अपने जवाब को बाधित करने से बचते हैं, क्योंकि हम यह जानते है कि हमारा विचार अवचेतन को सक्रिय कर देता है, जो सब कुछ जानता है, सब कुछ देखता है और लक्ष्य को हासिल करने का ''व्यावहारिक ज्ञान'' रखता है।

आप विश्वास, जीत और विजय चुन सकते हैं

बाइबल में कहा गया है : आज के दिन चुनो, तुम किसकी सेवा करोगे। चुनाव करने की क्षमता ही स्वास्थ्य, खुशी, मानसिक शांति और प्रचुरता की कुंजी है। अगर हम सही तरीके से सोचना सीख जाते हैं, तो हम दर्द,दुख, ग़रीबी और सीमा का चुनाव करना छोड़ देंगे। तब हम अपने भीतर मौजूद असीमित के ख़जाने से चुनेंगे। हर व्यक्ति प्रभावशाली और निर्णायक तरीके से कहेगा, ''मैं खुशी, शांति, समृद्धि, बुद्धिमत्ता और सुरक्षा का चुनाव करता हूँ।'' जिस पल हम अपने चेतन में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, तो असीमित की शक्ति और बुद्धिमत्ता के समर्थन से हमारा अवचेतन मन हमारी सहायता करने के लिए सक्रिय हो जाएगा। मार्गदर्शन मिलेगा और उपलब्धि की राह या मार्ग हमारे सामने प्रकट कर दिया जाएगा।

मन में ज़रा सी भी झीझक, शंका या डर न रखें; पूर्ण विश्वास और सकारात्मक तरीक़े से दावा करें। ''सृजन की केवल एक ही शक्ति है और यह मेरे ही ज़्यादा गहरे स्वरूप की शक्ति है। हर समस्या का एक समाधान है। यह मैं जानता हूँ, आदेशित करता हूँ और यक़ीन करता हूँ।'' जब हम इस सत्य को साहस के दृढ़तापूर्वक कहते हैं, तो हमें मार्गदर्शन मिल जाएगा और हमारे सामने उजागर कर दिया जाएगा कि हमें कौन से क़दम उठाने चाहिए।

जंगल में भटकना और बाहर निकलना

अवचेतन मन का इस्तेमाल करते वक़्त हमें याद रखना चाहिए कि यह निगमनात्मक तरीक़े से तर्क करता है। यह केवल अंतिम परिणाम को देखता है और

चेतन मन में रखे गए आधार वाक्य को तार्किक, क्रमिक अंजाम तक पहुँचता है।

जब मैं लगभग ग्यारह साल का था, तो मैं जंगल में भटक गया था। पहले तो मैं दहशत में आ गया, लेकिन फिर मैंने दावा किया कि ईश्वर मुझे बाहर निकालेगा। मेरे मन में एक शक्तिशाली आवेग आया कि मुझे एक ख़ास दिशा में जाना चाहिए। मैंने अवचेतन के आंतरिक दबाव या प्रवृत्ति का अनुसरण किया और बाद में यह सही साबित हुई। चमत्कारिक रूप से दो दिन बाद मुझे एक खोजी दल के पास पहुँचा दिया गया। यह अवचेतन मन का संकेत था, जो जंगल से बाहर निकलने का रास्ता जानता था।

कई लोग दुविधाग्रस्त, भयावह और विक्षिप्त विचारों के मानसिक जंगल में रहते हैं। पूरी शक्ति से दावा करें कि भीतर की अवचेतन बुद्धिमता आपके जीवन में व्यवस्था, शांति और सद्भाव ला रही है। जब आप नियमित और सुनियोजित तरीके से यह काम करते हैं, तो सही परिणाम अवश्यंभावी रूप से मिलेंगे, क्योंकि बुद्धिमत्ता, शक्ति और प्रेम के अवचेतन के असीमित संसाधन आपके पक्ष में सक्रिय हैं। अवचेतन की सर्वशक्तिमान शक्तियाँ कभी असफल नहीं हो सकती।

मन के बाग में फूल बोएँ

किसी बगीचे के बारे में सोचने पर आप मन के दोहरे पहलुओं के बारे में ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं। तब आप उस व्यक्तिपरक नियम को भी जान जाएँगे, जिससे यह काम करता है। चेतन मन मिट्टी में बीज बोता है। यह निर्णय लेता है कि किस तरह के बीज बोए जाएँगे। जैसा आप जानते हैं, मिट्टी में चाहे कुछ भी बोया जाए, यह उसे उगा देगी, चाहे ये अंगूर हों या काँटे।

इसी तरह, अवचेतन मन को मिट्टी के रूप में देखें। इसमें बीज के विकास के लिए अनिवार्य सारे तत्त्व होते हैं। एक बार फिर, हमें यह अहसास कर लेना चाहिए कि बीज को उगाना मिट्टी का स्वभाव है, लेकिन जैसा आप जानते हैं, इसे क़तई परवाह नहीं होती कि क्या उगाती है। इसे क़तई परवाह नहीं होती कि यह ज़हरीला पेड़ उगाती है या फूलों का पेड़। यदि चेतन मन ज़हरीले पेड़ उगाने का चुनाव करे और मिट्टी उन्हें उगाने से इंकार कर दे, तो प्रकृति के सारे नियम भंग हो जाएँगे।

ठीक यही बात अवचेतन मन के बारे में सच है। यह कर्त्ता है; यह कभी पलटकर सवाल या बात नहीं करता है। जो भी इसके अंदर डाल दिया जाता है, यह उसे चुपचाप स्वीकार कर लेता है और इसे आपके अनुभव में उत्पन्न करता है, चाहे वह चीज़ अच्छी हो या बुरी। उन चीज़ों को बोएँ, जो सच्ची,न्यायपूर्ण, शुद्ध, प्यारी, उदात्त और अच्छी हैं; फिर आपके मन, शरीर और अनुभव के बाग में फूल लहलहाने लगेंगे।

सही क्रिया का रहस्य

अपने मन को सही जवाब के प्रति समर्पित करें, जब तक कि अंदर सही प्रतिक्रिया न मिल जाए। प्रतिक्रिया एक भावना, आंतरिक जागरूकता या प्रबल रुझान है, जिसके ज़रिये आप जान जाते हैं कि आप जानते हैं। आपने अवचेतन की शक्ति और बुद्धिमत्ता का इस बिंदु तक इस्तेमाल किया है कि जब यह आपका इस्तेमाल शुरू कर देता है।

मैं द्वितीय विश्व युद्ध में एक लड़के लिए प्रार्थना कर रहा था। उसकी माँ ने मुझे बताया कि उसे एक तार मिला है, जिसमें बताया गया है कि वह लड़ाई में मारा गया है। मुझे महसूस हुआ कि यह सच नहीं है और मैंने उसे यह बता दिया। मैं इसे वस्तुपरक तरीक़े से साबित नहीं कर सकता था, लेकिन मेरे मन में यह व्यक्तिपरक प्रबल विश्वास था कि वह जीवित है। बाद की घटनाओं ने इस विश्वास की पुष्टि की । कहीं कोई ग़लती हो गई थी। यह सचमुच जीवित था और आज भी है।

जब आप अपने भीतर की अवचेतन बुद्धिमता के मार्गदर्शन में यक़ीन करते है और उसके हिसाब से काम करते हैं, तो आप असफल नही हो सकते और एक भी ग़लत क़दम नहीं उठा सकते। आपके अपनी आदतन सोच के अनुरूप मार्गदर्शन मिलता है। यदि आप केवल अपने डर, मुश्किलों और असफलताओं के बारे में सोचते हैं, तो आपको ग़लत दिशा में मार्गदर्शन मिलेगा। तब आपको ज़्यादा दुविधा और अव्यवस्था का अनुभव होगा।

इस महान् विचार कर मनन करें। पूरी सृष्टि में डरने के लिए कुछ है ही नहीं। आपके पास अपने अवचेतन मन के बुद्धिमत्तापूर्ण इस्तेमाल के ज़रिए शक्ति और

नियंत्रण है। अपना मन बना लें कि सारी समस्याओं का जवाब आपके भीतर है। यह विश्वास अवचेतन शक्ति को सक्रिय कर देता है और इसकी बुद्धिमत्ता व नेकी को आपकी ख़ातिर गतिशील कर देता है।

इसी समय शांति से बैठकर पहाड़ों के बीच बनी सुंदर झील की कल्पना करें। शांत झील की सतह पर आप चाँद, तारों और नज़दीकी पेड़ों का प्रतिबिंब देखते हैं। लेकिन अगर झील विचलित हो जाए, तो आप प्रतिबिंब नहीं देख पाएँगे। इसी तरह, अपने मन को शांत कर लें, तनावरहित हो जाएँ और ढीला छोड़ दें। शांति और स्थिरता के बारे में सोचें। यह जान लें कि सच्चा जवाब हमेशा शांति में ही मिलता है। फिर आपके मन का प्रतिबिंबित जल आपके सवाल के जवाब को स्पष्टता से दिखा देगा।(डॉ. जोसेफ मर्फी)

विश्व के सभी जीवों का परिचय एक ही-चैतन्य-आत्मा (आत्मा चैतन्य की दृष्टि से सभी जीव एक समान)

आचार्य कनकनंदी

सभी जीवों का एक (ही) परिचय वह है चैतन्यरूप।
अन्य सभी परिचय है कर्मज, जो है अशुद्ध/(व्यवहार) रूप।। 1

यथा आकाश अमूर्तिक सर्वव्यापी भेदभाव से रहित।
तथाहि सभी जीव चैतन्य रूप से होते हैं एक समान।। 2

एकेन्द्रिय सूक्ष्म जीव निगोदिया से लेकर सिद्ध परमात्मा तक।
सभी का एक लक्षण है चैतन्य भले चेतना में अनन्त भेद तक।। 3.

यथा सभी प्रकार के पानी में होता H_2O ,एक समान।
भले पानी गंदा हो या स्वच्छ, अथवा ठंडा हो या गरम।। 4

चौरासी लाख योनि के अशुद्ध जीव अथवा शुद्ध जीव।
सभी में होता है एक समान विशेष गुण वह है चैतन्य रूप।। 5
'जीवो उपयोगमओ' सर्वज्ञों ने कहा, उपयोग रहित न कोई जीव।

'सव्वे सुद्धा हु सुद्धाणया' होने से, निश्चय से एक समान जब जीव।। 6

अतएव मानव अधिकार नहीं है, सम्पूर्ण सर्व जीव अधिकार सम्पूर्ण।
मानवों को जीना है तो सर्वजीवों का जीने देना है योग्य ।। 7

'अन्त्योदय' से 'सर्वोदय' तक होता है आध्यात्मिक नियम।
यथा बीज ही वृक्ष बनता तथाहि जीव ही बनता जिनेन्द्र तक।। 8

जीव जिणवर जो मुणहि जिणवर जीव मुणहि।
ते समभाव परट्ठिया लहु णिव्वाण पद लहहि।।
यह ही सार्वभौम सर्वोच्च नियम तथाहि कानून संविधान।
परम साम्यवाद से ले जीवतंत्र, अन्य सभी इससे न्यून।। 9

अतएव आध्यात्मिक नियम ही, आकाश सम सर्वव्यापी।
ऐसे आध्यात्मिक नियम को, सर्वश्रेष्ठ माने 'सूरी कनकनंदी' ।। 10

(सागवाडा दि. 30.3.2018, रात्रि = 8.35)
(मुनि सुविज्ञसागरजी एक व्यक्ति को परिचय पूछ रहे थे- उससे शिक्षा ले यह कविता बनी।)

संदर्भ - जीवद्रव्य के अधिकार

जीवो उवओग मओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।। 2।। द्र.सं.

अर्थ :- प्रत्येक जीव जीने वाला, उपयोगमय, अमूर्तिक, कर्मों का कर्त्ता, नामकर्म के उदय से प्राप्त अपने छोटे बड़े शरीर के बराबर रहने वाला, शुभाशुभ कर्मों के फल को भोगने वाला, संसारी, सिद्ध और स्वभाव से ऊपर गमन करने वाला है।

'जीवत्व अधिकार'

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय बल माउ आणपाणो य।
व्यवहारा सो जीवो, णिच्छयणयदोदु चेदणा जम्स।। 3।।

अर्थ :- जिसके व्यवहार नय से तीनों कालों में इंद्रिय, बल, आयु और

श्वासोच्छवास ये चार प्राण होते हैं और निश्चय नय से जिसके चेतना होती है, वह जीव है।

'उपयोगाधिकार'

उवओगो दुवियप्पो, दंसणणाणं च दंसणं चदुआ।
चक्खु अचक्खु ओही, दंसणमध केवलं णेयं।। 4।।

अर्थ :- उपयोग दो यह प्रकार है दर्शनपयोग और ज्ञानोपयोग। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवल दर्शन इस प्रकार दर्शनोपयोग चार प्रकार का जानना चाहिए।

'ज्ञानोपयोग के भेद'

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्ख परोक्खभेयं च।।5।।

अर्थ :- मति,श्रुत, अवधि ये अज्ञान और ज्ञान रूप तथा मनः पर्यय और केवलज्ञान की अपेक्षा ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का होता है और वह ज्ञानोपयोग प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद रूप है।

'जीव का लक्षण'

अट्ठ चदु णाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
व्यवहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसण णाणं।। 6।।

अर्थ :- व्यवहार नय से यथायोग्य आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन जीव का लक्षण है। किन्तु शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध दर्शन और शुद्धज्ञान ही जीव का लक्षण कहा गया है।

'अमूर्तित्वाधिकार'

वण्ण रस पंच गंधा दो, फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, व्यवहार मुत्ति बंधादो।। 7।।

अर्थ :- जीव में निश्चय से पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श नहीं होते हैं, इस कारण से अमूर्तिक है। और व्यवहार नय से कर्मबंधन सहित होने से मूर्तिक है।

'कर्तृत्वाधिकार'

पुग्गल कम्मादीणं, कत्ता ववहार दो दु णिच्छयदो।
चेदण कम्माणादा, सुद्धणया सुद्ध भावाणं।। 8।।

अर्थ :- जीव व्यवहार नय से ज्ञानावरणादिक कर्मों का तथा अशुद्ध निश्चय नय से रागादिक भावकर्मों का और शुद्ध निश्चयनयन से शुद्ध दर्शन, शुद्ध ज्ञान आदि चैतन्य भावों का कर्त्ता है।

'भोक्तत्वाधिकार'

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मफलं पंभुजेदि।
आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स।। 9।।

अर्थ :- जीव व्यवहार नय से ज्ञानावरणादिक कर्मों के फलस्वरूप सुख और दुःख का भोक्ता है और निश्चय नय से आत्मा के शुद्धज्ञान रूप भावों का ही भोक्ता है।

'स्वदेह परिमाणत्व अधिकार'

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा, णिच्छयणयदो असंखदेसो वा।। 10।।

अर्थ :- आत्मा व्यवहार नय से समुद्घात अवस्था के अंतिरिक्त शेष हालातों में शरीर नामकर्म के उदय से होने वाले संकोच विस्तार गुण के कारण घट आदि में स्थित दीपक की तरह अपने छोटे बड़े शरीर के बराबर है और निश्चय नय से असंख्यात् प्रदेश वाले लोकाकाश के बराबर है।

'संसारित्व अधिकार'

पुढवि जल तेउ वाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी।
विग-तिग चदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी।।11।।

अर्थ :- पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पति कायिक अनेक प्रकार के एकेन्द्रिय स्थावर हैं और शंखादिक दो इंद्रिय, तीन चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय त्रसजीव हैं।

'चौदह जीवसमास-जीवों के संक्षिप्त भेद'

समणा अमणा णेया, पंचिदिंय णिम्मणा परे सव्वे।
वादरसुहमेइंदी, सव्वे पज्जत इदरा य ।। 12।।

अर्थ :- पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी असंज्ञी दो प्रकार के होते हैं। शेष चारों असंज्ञी ही होते हैं। एकेन्द्रिय के बादर और सूक्ष्म ये दो भेद है। इस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय,त्रीन्द्रिय, चतुरन्द्रिय ये सभी ये सभी पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। इनको चौदह जीव समास कहते हैं।

'मार्गणा और गुणस्थान के द्वारा संसारी जीव का वर्णन'

मग्गण गुण ठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सद्धणया।। 13।।

अर्थ :- संसारी जीव व्यवहार नय से मार्गणाओं और गुणस्थानों की अपेक्षा से भी चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं। किन्तु निश्चय से सब जीव शुद्ध ही हैं, ऐसा जानना चाहिए।

'सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमनत्व'

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पाद वएहिं संजुत्ता।।14।।

अर्थ :- जो ज्ञानावरणादि आठ कर्म रहित, सम्यक्त्व आदि आठ गुण सहित, अंतिम शरीर से कुछ कम होते हैं। वे सिद्ध हैं, और वे सिद्ध विनाशरहित एवं उत्पाद, व्यय से युक्त लोक के अग्रभाग में स्थित होते हैं।

जीवाश्च।(3) त.सू.

Soul are also included in the category of substances.

जीव भी द्रव्य है।

इस अध्याय के प्रथम सूत्र में चार अजीव अस्तिकाय का वर्णन किया गया है। दूसरे सूत्र में बताया कि, ये चारों द्रव्य हैं। पुनः इस सूत्र में बताया गया कि जीव भी द्रव्य है तथा द्रव्य के साथ अस्तिकाय द्रव्य भी है। सूत्र में जो बहुवचन (जीवाः) दिया गया है। वह जीव के भेद-प्रभेदों का सूचक स्वरूप है। 'च' शब्द द्रव्य संज्ञा के

खींचने के लिये दिया गया है। जिससे 'जीव भी द्रव्य है' यह अर्थ फलित हो जाता है। इस प्रकार ये पाँच आगे कहे जाने वाले काल के साथ छह द्रव्य होते हैं।

कोई-कोई दार्शनिक एवम् वैज्ञानिक यह मानते हैं कि यह जीव एक पृथक् द्रव्य नहीं है। कुछ मानते हैं कि रसायनिक मिश्रण रसायनिक परिवर्तन से जीव की सृष्टि हुई है-जैसे डाविन आदि वेज्ञानिक और चावकि आदि दार्शनिक। चार्वाक का मत है पृथ्वी जल, अग्नि वायु एवं आकाश के समिश्रण से जीव की सृष्टि होती है। जैसे- चावल, गुड आदि के मिश्रण से मद्य में मादकता की सृष्टि होती है। परन्तु उपरोक्त धारणा कपोल कल्पित एवं सत्य-तथ्य से रहित है क्योंकि जीव अमूर्तिक, चेतन द्रव्य होने से मूर्तिक अचेतन द्रव्यों से उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। जीव द्रव्य का वर्णन प्रवचन सार में कुंद-कुंद देव ने निम्न प्रकार से किया है।

दव्वं जीवमजीवं जीवो पुण चेदणोवओगमओ।
पोग्गलदव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि य अजीवं।। (127)।।

द्रव्य जीव और अजीब ऐसे दो भेद रूप है और उसमें चेतन और उपयोगीमयी जीव है और पुद्गल आदिक अचेतन द्रव्य अजीव हैं।

णाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जोहि जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण पोग्गलदव्वेहिं णिणव्वत्ता।। (147)।।

जो चार प्राणों से जीता है, जीवेगा, और पहले जीता था, वह जीव है और प्राण पुद्गल द्रव्यों से निष्पन्न है।

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदाणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स व पजया बहुगा।। (16)।। (पं. का)

जीवादि के ''भाव'' है। जीव के गुण चेतना तथा उपयोग हैं और जीव की पयायें देव-मनुष्य-नारक-तिर्यञ्चरूप अनेक हैं।

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो।। (27)

आत्मा जीव है, चेतयिता है, उपयोगलक्षित है, प्रभु है, कर्त्ता है, भोक्ता है, देह प्रमाण है, अमूर्त है और कर्मसंयुक्त है।

णाणहि चदुहि जीवदि जीविस्सदि जो हुजीविदा पुव्वं।
सो जीवों पाणा पुण वलमिदियमाउ उस्सासो ।। (30) ।।

जो चार प्राणों से जीता है, जियेगा, और पूर्वकाल में जीता था वह जीव है, और वह प्राण इन्द्रिय, बल, आयु तथा श्वासोच्छवास है।

जीवा अणाइणिहणा संताणंता य जीवभावादो।
सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पधाणा य।। (53)

जीव(परिणामिक भाव से) अनादि अनंत हैं, (औपशमिक आदि तीन भावों से) सांत (अर्थात् सादि-सांत) हैं और जीव भाव से अनंत है। (अर्थात् जीव सद्भावरूप क्षायिक भाव से सादि अनंत है) क्योंकि सद्भाव से जीव अनंत होते हैं। वे पाँच मुख्य गुणों से प्रधानता वाले हैं।

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स होई उप्पादो।
इदि जिणवरेहिं भणिदं अण्णेण्णविरुध्दमविरुद्धं।। (54)

इस प्रकार जीव के सत् का विनाश और असत् का उत्पाद होता है- ऐसा जिनवरों ने कहा है, जो कि अन्योन्य विरुद्ध है तथापि अविरुद्ध है।

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खदो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं।। (122)

जीव सब जानता है और देखता है, सुख की इच्छा करता है, दुःख से डरता है, हित अहित को करता है और उनके (शुभ-अशुभ भाव के) फल को भोगता है।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में भी आचार्य अमृतचंद्र सूरि ने कहा है-

अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जितः स्पर्शगंधरसवर्णैः।'
गुणपर्ययसमवेतः समाहित समुदयव्ययध्रौव्यैः।। (9)

स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से रहित (वियुक्त) गुण-पर्यायों से विशिष्ट उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से सहित (संयुक्त) चैतन्यमय आत्मा पुरुष है।

जीव का लक्षण

उपयोगो लक्षणम् (8) त.सू.

The lakshna or differentia of soul is upayoga, attention, consiousness,attentivness.

उपयोग जीव का लक्षण है।

इस सूत्र में जीव के महत्वपूर्ण सद्भूत लक्षण का वर्णन है। पहले अध्याय में जीव के ज्ञान गुण का वर्णन मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से किया है तो इस अध्याय में भी जीव के भावों का वर्णन असधारण मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से किया है। उपयोग जीव के असाधारण भाव या लक्षण होने के कारण यह भाव अन्य अजीव पदार्थ में नहीं पाया जाता है तथा किसी भी रसायनिक प्रक्रिया से उपयोग शक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। डार्विन आदि वैज्ञानिक जो रसायनिक प्रक्रिया से जीव की उत्पत्ति मानते है वह सिद्धांत कपोल-कल्पित, अविचारित रम्य है। इस सिद्धांत का खण्डन मेरी (कनकनंदी) ''विश्व विज्ञान रहस्य'' पुस्तक में किया है। जिज्ञासु वहाँ से देखकर अध्ययन करें।

पंचास्तिकाय में कुंदकुद देव ने इसका वर्णन सविस्तार से निम्न प्रकार किया है-

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि।।

उपयोग वास्तव में दो प्रकार है ज्ञान और दर्शन से संयुक्त अर्थात् ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। यह सर्वकाल इस जीव से एकरूप है जुदा नहीं है ऐसा जानो।

वत्थुणिमित्तं भावो, जादो जीवस्स दु उपयोग।

जीव का जो भाव वस्तु को (ज्ञेय को) ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त होता है उसको उपयोग कहते हैं।

द्रव्यासंग्रह में नेमिचन्द्राचार्य ने कहा भी है-

''जीवो उवओगमओ'' जीवो'' शुद्धनिश्चयनयेनादिमध्यान्त-
वर्जितस्वरप्रकाशकाविनश्वरनिरूपाधिशुद्धचैतन्यलक्षणनिश्चयप्राणेन
यद्यपि जीवति, तथाप्यशुद्धयेनानादिकर्मबन्धवशादशुद्धद्रव्यभाव-
प्राणैर्जीवतीति जीवः

यद्यपि यह जीव शुद्धनिश्चयनय से आदि मध्य और अंत से रहित निज और पर का प्रकाशक, उपाधि रहित और शुद्ध ऐसा जो चैतन्य (ज्ञान) रूप निश्चय प्राण है, उससे जीता है, तथापि अशुद्धनिश्चयनय से अनादि कर्मबन्धन के वश से अशुद्ध जो द्रव्यप्राण और भाव प्राण है, उनसे जीता है इसलिये जीव है।

उपयोग के भेद

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः (9)

(Attention is of) 2 kinds which is subdivided in to 8 and 4 kinds

ज्ञानोपयोग knowledge attention.

दर्शनपयोग Contaion-attention :

उपयोग is a modification Consiousness, which is an essential attribute of the soul. Thus attentivenss is kind of consciousness. Consciouesness is a characteristic of the knower, the soul.

वह उपयोग दो प्रकार का है - ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग

ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनपयोग चार प्रकार का है।

जो अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के निमित्त से होता है और चैतन्य को छोड़कर अन्य द्रव्यों में नहीं रहता है वह 'उपयोग' कहलाता है। वह उपयोग दो प्रकार का है, ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का हैः मतिज्ञान,श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान , मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, मत्यज्ञान, कुश्रुतज्ञान और विभंगज्ञान। दर्शनोपयोग चार प्रकार का :- चक्षुदर्शन,अचक्षुदर्शन,अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

साकार और अनाकार के भेद से इन दोनों उपयोग में भेद है। साकार ज्ञानोपयोग है और अनाकार दर्शनोपयोग। ये दोनों छद्मस्थों के क्रम से होते हैं और कर्म आवरणरहित जीवों के युगपत् होते हैं। यद्यपि दर्शन पहले होता है तो भी श्रेष्ठ होने के कारण सूत्र में ज्ञान को दर्शन से पहले रखा है।

नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने गोम्मट्टसार में उपयोग का वर्णन निम्न प्रकार से सविस्तार से किया है -

वत्थुणिमित्तंभावो, जादो जीवस्स जोदु उवजोगो।

सो दुविहो णायव्वो, सायारो चेव अणायारो।। (672)

जीव का जो भाव वस्तु को (ज्ञेय को) ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त होता है

उसको उपयोग कहते हैं। इसके दो भेद हैं- एक साकार (विकल्प) और दूसरा निराकार(निर्विकल्प)।

णाणं पंचविहं पि य, अण्णाणतियं च सागरुवजोगो।

चंदुदसणमणगारो, सव्वे तल्लक्खणा जीवा।। (673)

पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान - मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल और तीन प्रकार का अज्ञान-मिथ्यात्व-कुमति, कुश्रुत, विभंग ये आठ साकार उपयोग के भेद हैं। चार प्रकार का दर्शन चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन अनाकार उपयोग है। यह उपयोग ही सम्पूर्ण जीवों का लक्षण है, क्योंकि उपयोग के इन 12 प्रकारों में से जीव के कोई न कोई उपयोग अवश्य रहा करता हैं।

मदिसुदओहिमणेहि य, सगसगविसये विसेसविण्णाणं।

अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगा सो दु सायारो।। (674)

मति श्रुत अवधि और मनः पर्यय इनके द्वारा अपने अपने विषय का अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यन्त जो विशेषज्ञान होता है उसको ही साकार उपयोग कहते हैं।

साकार उपयोग के पाँच भेद हैं-मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवल। इनमें से आदि के चार ही उपयोग छद्मस्थ जीवों के होते हैं। उपयोग चेतना का एक परिणमन है। तथा एक वस्तु के ग्रहण रूप से चेतना का यह परिणमन छद्मस्थ जीव के अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्तकाल तक ही रह सकता है। इस साकार उपयोग में यही विशेषता है, कि यह वस्तु के विशेष अंश को ग्रहण करता है।

इंदियमणोहिणा वा, अत्थे अविसेसिदूण जे गहणं।

अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो अणायारो।। (675)

इन्द्रिय, मन और अवधि के द्वारा अन्तर्मुहूर्तकाल तक पदार्थों का जो सामान्य रूप ग्रहण होता है उसको निराकार उपयोग कहते हैं। दर्शन के चार भेद हैं- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इनमें से आदि के तीन दर्शन छद्मस्थ जीवों के होते हैं। नेत्र के द्वारा जो सामान्यावलोकन होता है उसकों चक्षुदर्शन कहते हैं और नेत्र को छोड़कर शेष चार इन्द्रिय तथा मन के द्वारा जो सामान्यावलोकन होता है उसको अचक्षुदर्शन कहते हैं। अवधि ज्ञान के पहले इन्द्रिय और मन की सहायता के

बिना आत्ममात्र से ही रूपी पदार्थ विषयक सामान्यावलोकन होता है उसको अवधिदर्शन कहते है। यह दर्शनरूप निराकार उपयोग भी साकार उपयोग की तरह छद्मस्थ जीवों के अधिक से अधिक अन्तर्मुहूंत तक होता है।

अनाकार उपयोग या दर्शन उपयोग का वर्णन प्रकारान्तर से गोम्मट्टसार में निम्न प्रकार से पाया जाता है-

भावाणं सामण्ण विसेसयाणं सरूवमेत्तं जं।

वण्णणहीणग्गणं जीवेण य दंसणं होदि।। (483)

निर्विकल्परूप से जीव के द्वारा जो सामान्य विशेषात्मक पदार्थों की स्व-पर सत्ता का अवभासन होता है उसको दर्शन कहते हैं।

पदार्थो में सामान्य विशेष दोनों ही धर्म रहते है; किंतु इनके केवल सामान्य धर्म की अपेक्षा से स्व-पर सत्ता का अवभासन होता है उसको 'दर्शन' कहते हैं। इसका शब्दों द्वारा प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। इसके चार भेद हैं चक्षुदर्शन, अवचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन।

चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन का स्वरूप

चक्खूण ज पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं वेंति।

सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खूत्ति।। (484)

जो पदार्थ चक्षुन्द्रिय का विषय है उसका देखना, अथवा वह जिसके द्वारा देखा जाय, अथवा उसके देखने वाले को 'चक्षुदर्शन' कहते हैं। और चक्षु के सिवाय दूसरी चार इन्द्रियों के अथवा मन के द्वारा जो अपने-अपने विषयभूत पदार्थ का सामान्य ग्रहण होता है असको 'अचक्षुदर्शन' कहते हैं।

अवधिदर्शन का स्वरूप

परमाणु आदियाइं अंतिमखंधं ति मुतितदव्वइं।

तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइं पचक्खं।। (485)

अवधिज्ञान होने के पूर्व समय में अवधि के विषय भूत परमाणु से लेकर महास्कन्धपर्यन्त मूर्तद्रव्य को जो सामान्य रूप से देखता है उसको 'अवधिदर्शन' कहते हैं। इस अवधि दर्शन के अनन्तर प्रत्यक्ष अवधि ज्ञान होता है।

केवल दर्शन का स्वरूप

बहुविहबहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि।

लोगालोगवितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ।। (485)

तीव्र-मंद-मध्यम आदि अनेक अवस्थाओं की अपेक्षा तथा चन्द्र, सूर्य आदि पदार्थों की अपेक्षा अनेक प्रकार के प्रकाश जगत् में परिमित क्षेत्र में रहते है; किन्तु जो लोक और अलोक दोनों जगह प्रकाश करता है, ऐसे प्रकाश को 'केवल दर्शन' कहते हैं।

समस्त पदार्थों का जो सामान्य दर्शन होता है उसको 'केवलदर्शन' कहते हैं।

जीव के भेद

संसारिणो मुक्ताश्च। (10)

They are of 2 Kinds :

संसारि Mundane and मुक्त liberated souls.

जीव दो प्रकार के हैं - संसारी और मुक्त।

वस्तुतः जीव द्रव्य एक प्रकार के होते हुए भी कर्म सहित एवं कर्म रहित की अपेक्षा जीव 2 प्रकार के हो जाते हैं। कर्म सहित जीव संसारी है तथा कर्म रहित जीव मुक्त है। कहा भी है-

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा।। (109)

उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा। प.का.

जीव दो प्रकार के हैं - (1) संसारी अर्थात् अशुद्ध और (2) सिद्ध अर्थात् शुद्ध। वे दोनों वास्तव में चेतनास्वभाव वाले हैं और चेतना परिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने योग्य है। उसमें संसारी जीव देह में वर्तनवाले अर्थात् देह सहित है और सिद्ध जीव देह में न वर्तनेवाले अर्थात् देह रहित है।

.....मिच्छादंसणकसायजोगजुदा।

विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा।। (32)

मिथ्यादर्शन - कषाय योगसहित संसारी है और अनेक मिथ्यादर्शन - कषाय योग रहित सिद्ध है।

संसारी जीवों के भेद

समनस्कामनस्काः। (11)

The mudane souls are of 2 kinds :-

समनस्क Rational, thouse who have a mind; i,e. the faculty of distigushing right and wrong.

मनसहित तथा मनरहित ऐसे संसारी जीव हैं।

मनसहित जीव को समनस्क (सैनी) कहते हैं और मन रहित जीव अमनस्क (असैनी) कहते हैं। एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जीव असैनी होते हैं एवम् मन सहित पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी होते हैं। इन दोनों में से संज्ञी जीव श्रेष्ठ है क्योंकि संज्ञी जीव गुण और दोषों का विचारक होता है। अमनस्क जीव मन रहित होने के कारण गुण-दोषों की समीक्षा नहीं कर पाता है। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान होते हुए भी मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान, कुज्ञान के साथ-साथ बहुत ही अविकसित ज्ञान है, इतना ही नहीं असंज्ञी जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता भी नहीं रखता है। संज्ञी जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता रखता है। मन दो प्रकार का है (1) द्रव्य मन, (2) भाव मन।

उनमें से द्रव्य मन पुद्गलविपाकी आंगोपांग नाम कर्म के उदय से होता है तथा वीर्यान्तराय और नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने वाले आत्मा की विशुद्धि को भाव मन कहते हैं। यह मन जिन जीवों के पाया जाता है वे 'समनस्क' है और जिनके मन नहीं पाया जाता है वे 'अमनस्क' है। इस प्रकार मन के सद्भाव और असद्भाव की अपेक्षा संसारी जीव दो भागों में बँट जाता है।

द्रव्य मन का स्वरूप

हिदि होदि हु दव्वमणं वियसियअट्ठच्छदारविदं वा।
अङ्गोवंगुदयादो मणवग्गणखंधदो णियमा।। (443)

अङ्गोपाङ्गनाम कर्म के उदय से मनोवर्गणा के स्कन्धों के द्वारा हृदयस्थान में नियम से विकसित आठ पांखुड़ी के कमल के आकार में द्रव्यमन उत्पन्न होता है।

णोइंदियत्ति सण्णा तस्स हवे सेसइंदियाणं वा।
वत्तत्ताभावादो----------।। (444)

इस द्रव्यमन की नो इन्द्रिय संज्ञा भी है, क्योंकि दूसरी इन्द्रियों की तरह यह व्यक्त नहीं है। (गोम्मटसार, पृ. 163)

संसारी जीवों के अन्य प्रकार से भेद

संसारिणस्त्रसस्थावराः। (12)

The mundane souls fare of 2 kinds from another point of view

त्रस Mobile many sensed, i.e. having a body with more than one sense.

स्थावर Immobile, one sensed, i.e. having a only the sense of touch.

तथा संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं।

कर्म सहित जीवों को संसारी जीव कहते हैं। इस दृष्टि से समस्त संसारी जीव एक होते हुए भी विभिन्न कर्मों के कारण भेद-प्रभेद हो जाते हैं। इसके मुख्यतः दो भेद है - (1) त्रस जीव (2) स्थावर जीव।

त्रस नाम कर्म के उदय से दो इन्द्रिय से लेकर अयोग केवली तक के जीव को त्रस कहते हैं।

स्थावर नाम कर्म के उदय से पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पति कायिक तक जीव को स्थावर जीव कहते हैं। अग्निकायिक, जलकायिक और वायुकायिक जीव गमन करते हुए पाये जाते हैं तो भी वे त्रस नहीं है। परन्तु उपचार से उनको कुछ शास्त्र में त्रस कहा गया है।

मेरा शोध-बोध-प्रयत्न

स्वात्मा की शक्ति का प्रभाव-प्रयोग

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- तेरे प्यार का .....जय हनुमान.....)
स्वात्मा की शक्ति का (मैं) ज्ञान करना चाहता हूँ।

पूर्ण नहीं तो यथायोग्य बढाना/(पाना) चाहता हूँ।।
प्रयोग अनुभव भी मैं करना चाहता हूँ।
इससे मैं आगे-आगे बढ़ना चाहता हूँ।। (1)

आगम से जाना हूँ मैं आत्मिकशक्ति।
अलौकिक गणित से अनन्तानन्तशक्ति।।
राग-द्वेष-मोह-क्षय से बढ़ती विशुद्धि।
विशुद्धि से बढ़ती है आत्मिक शक्ति ।। (2)

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र द्वारा, ध्यान-अध्ययन व समता द्वारा।
सरल-सहज-क्षमा-शुचिता द्वारा, आत्मिकशक्ति बढाँऊ संयम द्वारा।।
निस्पृह-निराडम्बर-मौन के द्वारा, ख्याति-पूजा-लाभ रहित द्वारा।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे, अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा परे।। (3)

परनिन्दा अपमान दबाव परे, भय-प्रलोभन व याचना परे।
शोषण-ठगी दंभ-दीनता परे, आत्मिक शक्ति प्रयोग-प्रभाव मेरे।
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा से परे, वर्चस्व प्रतिस्पर्द्धा से परे।
धन-जन-भौतिक साधन परे, आत्मिकशक्ति प्रयोग-प्रभाव मेरे।। (4)

आगम ज्ञान को अनुभव में लाऊँ, प्रयोग व परीक्षण स्वयं में करूँ।
पुण्य-ऋद्धि व आत्मशक्ति परखूँ, प्रयोग-अनुभव से बढ़ता
श्रद्धा-प्रज्ञा इससे बढ़ रही है, समता-शान्ति-शुद्धि बढ़ रही है
आत्मानुभूति मेरी बढ रही है, 'कनक की साधना सरल हो रही है।।
शिष्य भक्त भक्ति से सेवा रत हैं, दान व व्यवस्था में स्वतः रत है।
स्व पर विश्व हित हेतु रत हूँ, 'कनक' शक्ति वृद्धि सदारत हूँ।।

सागवाडा दि. 27.03.2018 रात्रि 08.40

(स्व-अनुभव को उत्तरोत्तर बढाने हेतु आत्मसम्बोधनार्थे यह कविता बनी)

ध्यानी के प्रभामण्डल का प्रभाव

(हिंस्रपशु के भी ध्यान से प्रभावित होने के वैज्ञानिक कारण)

प्रायः प्रत्येक धर्म के महापुरुषों के चित्र के पीछे एक प्रभामण्डल का चित्रण किया हुआ पाया जाता है। जैन धर्म में वर्णन पाया जाता है कि तीर्थङ्कर के अष्ट प्रातिहार्य में से एक प्रातिहार्य भामण्डल प्रातिहार्य है। भामण्डल का वर्णन प्राचीन जैन शास्त्र में निम्न प्रकार किया गया है -

प्रभया परितो जिनदेहभुवा जगती सकला समवादिसृ तेः।
रुरुवेससुरासुरमर्त्यजनाःकिमिवाद्भुतमीदृशि धाग्रिविभोः।। 65।।

सुर, असुर और मनुष्यों से भरी हुई वह समवशरण की समस्त भूमि जिनेन्द्र भगवान के शरीर से उत्पन्न हुई तथा चारों ओर फैली हुई प्रभा अर्थात् भामण्डल से बहुत ही सुशोभित हो रही थी। सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् के ऐसे तेज में आश्चर्य ही क्या है।

तरुणार्करुचि नु तिरोदधती सुरकोटिमहांसि नु निर्धुनती।
जगदेकमहोदयमासृजति प्रथमे स्म तदा जिनदेहरुचिः।। 66।।

उस समय वह जिनेन्द्र भगवान के शरीर की प्रभा मध्याह्न के सूर्य की प्रभा को तिरोहित करती हुई-अपने प्रकाश में उसका प्रकाश छिपाती हुई, करोड़ों देवों के तेज को दूर हटाती हुई और लोक में भगवान का बड़ा भारी ऐश्वर्य प्रकट करती हुई चारों ओर फैल रही थी।

जिनदेहरुचावमृताब्धिशुचौ सुरदानवमर्त्यजना ददृशः।
स्वभवान्तरसप्तकमात्तमुदो जगतो बहु मंगलदर्पणके ।। 67।।

अमृत के समुद्र के समान निर्मल और जगत के अनेक मंगल करने वाले दर्पण के समान, भगवान के शरीर की उस प्रभा (प्रभामण्डल) में, सुर, असुर और मनुष्य लोग प्रसन्न होकर अपने सात-सात भव देखते थे। 'चन्द्रमा'' शीघ्र ही भगवान के छत्र-त्रय की अवस्था को प्राप्त हो गया है यह देखकर हो मानों अतिशय देदीप्यमान सूर्य भगवान के शरीर की प्रभा के छल्ले से पुराण कवि भगवान वृषभदेव की सेवा करने लगा था। भगवान का छत्र-त्रय चन्द्रमा के समान था और प्रभामण्डल सूर्य के समान था।

भव-सग-दंसण-हेदुं, दरिसण-मेत्तेण सयल-लोयस्स।

भामंडलं जिणाणं, रवि-कोडि-समुज्जले जयइ ।।935।। ती.प.

जो दर्शन मात्र से ही सब लोगों को अपने-अपने सात भव देखने में निमित्त है और करोड़ों सूर्यों के सदृश उज्जवल है, तीर्थंकरों का ऐसा वह प्रभामण्डल जयवन्त होता है।

ध्यान के माध्यम से शरीर, मन और आत्मा में विलक्षण क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है। पाप-कर्म शिथिल, क्षीण होते जाते हैं और पुण्य कर्म दृढ़ प्रभावशाली होते जाते हैं। इतना ही नहीं आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि ध्यान अवस्था में मस्तिष्क से कुछ विशेष तरंगे निकलती है जिससे आभामण्डल बनता है यह आभामण्डल इतना शक्तिशाली रहता है कि इस आभामण्डल के अन्दर बड़े-बड़े प्राण घातक अस्त्र-शस्त्र, हिंसक पशु, रोगाणु आदि प्रवेश नहीं करते हैं। इस प्रभामण्डल से प्रभावित होकर जन्मजात हिंसक पशु अपने हिंसा स्वभाव का त्याग कर नम्र, प्रेमभाव से उन मुनिराज के चरण सानिध्य में रहते हैं। इससे वनस्पति, प्रकृति आदि भी प्रभावित होती है जिसके कारण पेड़ पौधा में अधिक फल, पुष्प आना, एक ही ऋतु में सम्पूर्ण ऋतुओं के फल पुष्प आना, उस क्षेत्र के जीवों का निरोग होना आदि अलौकिक कार्य होते हैं। इसका वर्णन उदाहरण प्रायः जैन, बौद्ध, हिन्दू, सिक्ख, मुस्लिम आदि सभी धर्मों में पाया जाता है। वर्तमान वैज्ञानिक लोगों ने जो ध्यान के बारे में विशेष शोधपूरक तथ्य समाज के सामने रखे हैं। उसका कुछ प्रस्तुतिकरण नीचे कर रहा हूँ-

मस्तिष्क तरंगे - अभी तक चार तरह की मस्तिष्क तरंगे पाई गई हैं- अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा।

अल्फा तरंग - तब उठती है जब मस्तिष्क शान्त, निष्क्रिय तटस्थ और तनाव रहित होता है। यह प्रति सैकेण्ड 8 से 13 आवृत्ति करती है। ध्यानावस्थित योगियों पर परीक्षण करने पर पाया गया है कि उनके मस्तिष्क की यही अल्फा तरंग वाली स्थिति होती है। साधारण आदमी में भी जब यह तरंग उठती है तो एक तरह की शांति और आनन्द का अनुभव कराती है।

बीटा तरंग- प्रति सैकेण्ड 14 या उससे अधिक आवृत्ति का उदय तब होता है जब आदमी दत्त-चित्त होकर किसी कार्य में मशगूल होता है जैसे जोड़ना, हिसाब लगाना या कोई गुत्थी सुझाना। यह सक्रिय दिमाग की स्थिति है।

थीटा तरंग - प्रति सैकेण्ड 4 से 6 आवृत्ति करती है और नींद से पूर्व या अर्द्ध निद्रित अवस्था में उठती है।

डेल्टा तरंग - प्रति सेकेण्ड 1 से 6 आवृत्ति करती है और नींद की अवस्था में उठती है। जागृत अवस्था में यह शायद ही कभी उठती हो।

जागृत अवस्था में अक्सर अल्फा और बीटा तरंगे ही उठती हैं। यह बड़ी अनूठी बात है कि किसी एक क्षण में ही मस्तिष्क के एक हिस्से में अल्फा तरंग उठती रहती है और दूसरे हिस्से में बीटा तरंग। कुछ व्यक्तियों में खासकर अन्तर्मुखी व्यक्तियों में अल्फा तरंगे पैदा होती है। दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो कोशिश करने पर भी अल्फा तरंगे पैदा नहीं कर पाते। कुछ योगियों की मस्तिष्क तरंगे शुरु में अल्फा और बाद में बीटा में बदल गई। कुछ तनाव रहित व्यक्तियों में थीटा तरंगे अधिक पाई गई जो निद्रा से पूर्व अलसाई स्थिति है। कुछ औरों में पाया गया कि जब वे ध्यान की गहराई में उतरे तो अचेतन में दबी हुई यादें सजग हो गई।

ध्यानी का प्रभाव हिंस्रपशु आदि के ऊपर कैसे पड़ता है, उसका वर्णन ध्यानशास्त्र 'ज्ञानार्णव' में जैनाचार्य शुभचन्द्र ने निम्न प्रकार से किया है -

शाम्यन्ति जन्तवः क्रूरा बद्धवैराः परस्परम्।

अपि स्वार्थप्रवृत्तस्य मुनेः साम्यप्रभावतः।। 20

आगे इसी को स्पष्ट किया जाता है- अपने आत्मप्रयोजन की सिद्ध में प्रवृत्त हुए मुनि के साम्यभाव के प्रभाव से परस्पर में वैरभाव को रखने वाले दुष्ट जीव शांति को प्राप्त होते हैं। जातिगत दुष्ट स्वभाव को छोड़ देते हैं।

भजन्ति जन्तवो मैत्र्यमन्योन्यं त्यक्तमत्सराः।

समत्वालम्बिनां प्राप्य पादपद्मार्चितां क्षितिम्।। 403।।

साम्यभाव का आश्रय लेने वाले मुनियों के चरण कमलों से पूजित (अधिष्ठित) पृथ्वी को पाकर प्राणी परस्पर में मत्सरता (द्वेष व ईर्ष्या) छोड़कर मित्रता को प्राप्त होते हैं।

शाम्यन्ति योगिभिः क्रूरा जन्तवो नेति शङ् वयते।
दावदीप्तमिवारण्यं यथा वृष्टैर्बलाहकैः ।। 22।।

जिस प्रकार वर्षा को प्राप्त हुए मेघों के प्रभाव से दावानल से प्रज्वलित वन शान्त हो जाता है उसी प्रकार साम्यभाव को प्राप्त हुए योगियों के प्रभाव से दुष्ट जीव अपनी क्रूरता को छोड़कर शान्त हो जाते हैं इसमें शंका नहीं है।

भवन्त्यतिप्रसन्नानि कश्मलान्यपि देहिनाम्।
चेतांसि योगिसंसर्गे गस्त्ययोगे जलानि व ।। 23।।

जिस प्रकार अगस्त्य तारा के संयोग से बरसात का मलिन जल निर्मल हो जाता है उसी प्रकार योगियों के संसर्ग से प्राणियों के मलिन मन भी अतिशय निर्मल हो जाते हैं।

क्षुभ्यन्ति ग्रहयक्षाकिंनर नरास्तुष्यन्ति नाकेश्वरा।
मुञ्वन्ति द्विपदैत्यसिंहसरभव्यालादयः क्रूरताम्।
रुग्वैरप्रतिबन्धविभ्रमभरय भ्रष्टं जगज्जायते।
स्याद्योगीन्द्रसमत्वसाध्यमथवा किंकिं न सद्यो भुवि।। 21।।

साम्यभाव के धारक योगियों के प्रभाव से शनि आदि दुष्ट ग्रह, यक्ष, किन्नर और मनुष्य क्षोभ को प्राप्त होते हैं। वे तनिक इन्द्र सन्तुष्ट होते हैं, हाथी, दैत्य, सिंह, अष्टपद और सर्प आदि दुष्टता को छोड़ देते है, तथा लोक रोग, विध्नबाधा, विभ्रम(भ्रान्ति) और भय से रहित हो जाता है। अथवा ठीक ही है लोक में योगीन्द्रों के समताभाव से शीघ्र ही क्या क्या नहीं सिद्ध किया जाता है ? उस प्रभाव से सब प्रकार का अभीष्ट सिद्ध होता है।

चन्द्रः सान्द्रैर्विकिरति सुधामंशुभिर्जीवलोके
भास्वानुग्रैः किरणपटलैरुच्छिनत्यन्धकारम्।
धात्री धत्ते भुवनमखिलं विश्वमेतच्च वायु
र्यद्धत्साम्याच्छमयति तथा जन्तुजातं यतीन्द्रः।। 25।।

जिस प्रकार चन्द्रमा स्वभाव से अपनी सघन किरणों के द्वारा जीव लोक में अमृत की वर्षा करता है जिस प्रकार सूर्य स्वभाव के अपने तीक्ष्ण किरण समूहों के द्वारा अन्धकार को नष्ट करता है, जिस प्रकार पृथिवी स्वभाव से समस्त लोक को

धारण करती है तथा जिस प्रकार वायु (वातवलय) स्वभाव से इस विश्व को धारण करती है, उसी प्रकार मुनीन्द्र स्वभाव से प्राणी समूह को शान्त किया करते हैं।

सारङ्गी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नंदिनी व्याघ्रपोतं
मार्जारी हंसवालं प्रणयपरवशा केकिकान्ता भुजङ्गम्।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोन्ये त्यजन्ति
श्रित्वा साम्यैकरुढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहं।। 26।।

जिस प्रकार ने मोह से रहित पाप को शान्त कर दिया है और असधारण साम्य भाव को प्राप्त कर लिया है उसका आश्रय पाकर मृगी सिंह के बच्चे को पुत्र के समान स्नेह से स्पर्श करती है, गाय व्याघ्र के बच्चे से बछड़े के समान प्रेम करती है, बिल्ली हंस के बच्चे से स्नेह करती है, तथा मयूरी स्नेह के वशीभूत होकर सर्प का स्पर्श करती है। इसी प्रकार अन्य प्राणी भी अभिमान से रहित होकर उक्त योगी के प्रभाव से जन्म से उत्पन्न हुए भी वैरभाव को छोड़ देते हैं।

अब वैज्ञानिक तेजोवलय के स्पेक्ट्रस दिखाई देने वाले रंगों के आधार पर यह जान सकते है कि अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व स्तर क्या है? उसके गुण व स्वभाव में किस प्रकार की कमी-बेशी है ? इतना ही नहीं, उसकी प्रकृति और शारीरिक, मानसिक स्थिति का भी बहुत हद तक पता लगया जा सकता है। निदान होने पर तदनुरूप औषधि चिकित्सा या आध्यात्मिक उपचार भी बन पड़ता है। इस निदान पद्धति में चिकित्सक अपने रोगी की स्थिति का विश्लेषण अपनी सूक्ष्म इन्द्रियों के सहारे ही कर लेता है, जबकि सामान्य तथा पेथोलॉजी के विभिन्न परीक्षणों एवं इलेक्ट्रोफिजीयोलाजी की जाँच के आधार पर अनेक प्रकार के जटिल यन्त्रों की सहायता से वस्तुस्थिति का पता लगाया जाता है।

स्थूल रूप से वाष्प ऊर्जा को मापे जाने के प्रयास थर्मोग्राफी से हुए हैं। वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि अन्दर की सक्रिय ऊर्जा त्वचा में रक्त प्रवाह के माध्यम से बाहर अभिसरित होती है, व इस प्रकार पूरे शरीर का मैपिंग(मापन) किया जा सकना सम्भव है। एक विचित्र बात इस अनुसन्धान से सामने आई है कि जो अंग व्याधि ग्रस्त रहता हैं या आगे चलकर जिनके प्रभावित होने की सम्भावना रहती है, काफी पहले से उष्मा परिवर्तन बताने लगते हैं। इन्हें ''कोल्ड'' एवं ''हॉट'' क्षेत्र कहते हैं।

जहाँ कैंसर होता या होने की सम्भावना रहती है, वे स्थान आसपास के हल्के आसमानी या ग्रे रंग की तुलना में लाल या काले रंग की उष्मा फेंकते हैं। एक औसत वजन व क्षेत्रफल(175 वर्ग मीटर) वाले शरीर से 875 वॉट शक्ति की ऊर्जा उत्सर्जित होती है। इस प्रकार मापा जाता है। जो कि आँखों से न देखी जा सकने वाली इन्फ्रारेड से भी परे की तरंगों के स्तर का होता है।

थर्मोग्राफी से आगे चलें तो किलियर्यन फोटोग्राफी एवं आर्गोन एनर्जी मापे जाने वाले यन्त्र की बारी आती है जो तथा कथित वाष्प प्रकाश का मापन करते हैं। किलियेंन फोटोग्राफी बहुत दिनों तक विवाद का विषय बनी रही, पर डयूक विश्व विद्यालय के इलेक्ट्रीकल इन्जीनियरिंग विभाग के लेरी बर्टन, विलियम जॉइन्स एवं ब्रेड स्टीवेन्स ने 19वीं शताब्दी में पैरासाइकोलॉजीकल एसोसिएशन कन्वेशन, न्यूयार्क में यह प्रमाणित किया है कि जो स्पेक्ट्रम ओरा के रूप में रिकॉर्ड होता है, उसे विशेष फोटोमल्टीप्लायर ट्यूब्स एवं ऑप्टीकल फिल्टर्स द्वारा देखा जा सकता है। एवं वह लाल वर्ण क्रम के 770 नैनोमीटर रैंज में अंकित होता है। इसी तथ्य का डॉ.थेलमा मास (यू.सी.एल.ए. न्यूरोसाइकिएट्री संस्थान) ने भी अपने प्रयोगों से सत्यापन किया है कि शरीर से नीले आयन् डॉट्स निकलते है, जो उत्सर्जित किरणों के माध्यम से शरीर के आसपास एक ऊर्जा मण्डल बनाते हैं। जनरल ऑफ ऑर्गोनामी में विल्हेम राइरव के द्वारा नवम्बर 1971 में प्रकाशित हो चुका है। किलियर्यन संयन्त्र की अपेक्षा डॉ. राइवर के आर्गोन एक्यूमुलेटर्स को निदान व चिकित्सा दोनों ही क्षेत्रों में काफी मान्यता मिली है।

'योगी के तेज से भयभीत शेर भागा'

एक बार महाप्रभु के आश्रम पर एक बब्बर शेर आया। तब महाप्रभु ने योगेश्वर रामलाल को चिमटा देकर उसे बाहर निकाल देने का आदेश दिया। गुरु आज्ञा पाकर योगेश्वर शेर की ओर बढ़े। अब महाप्रभु ने अपने भ्रूपटल उठाकर शेर की ओर देखा। महाप्रभु के देखते ही, तेज न सह सकने के कारण शेर निस्तेज हो पीठ फेरकर खड़ा हो गया। उस समय महाप्रभु की आँखों के तेज के समान शेर की आँखों का तेज कुछ भी नहीं था।

मेरे हेतु ग्राह्य-अग्राह्य-माध्यस्थ

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः- तेरे प्यार का आसरा.....तुम दिल की.....)

स्व-पर-विश्वहित चिन्तन करूँ, स्व-पर-विश्व अहित चिन्ता न करूँ।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागूँ, इस हेतु मैं पावन संकल्प करूँ।।
मैत्री-प्रमोद-कारूण्य-माध्यस्थ धरूँ, ईर्ष्या-घृणा-वैर विरोध त्यागूँ।
स्व-पर गुण-दोषों से शिक्षा मैं लहूँ, स्व-गुण बढाऊँ परदोष न स्वीकारूँ (1)

ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व त्यागूँ, निस्पृह-निराडम्बर-वैरागी बनूँ।
आकर्षण-विकर्षण-द्वन्द मैं त्यागूँ, समता-शान्ति-सन्तुष्टी धरूँ।।
शोध-बोध से हित सत्य ग्रहण करूँ, प्रतिस्पर्द्धा व नकल नहीं मैं करूं।
दबाव-प्रलोभन-ठगी न करूँ, सहज-सरल-निर्भय भाव मैं धरूँ ।। (2)

आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र धरूँ, दीन-हीन-विकार भाव न धरूँ।
'स्वाभिमान' 'सोऽहं' 'अहं' भाव मैं धरूँ, 'अहंकार' 'ममकार' भाव में
ज्ञान-ज्ञेय-हेय-उपादेय मैं जानूँ, निर्विकल्प-वीतरागज्ञान मैं चाहूँ।
अशुभ-शुभ व शुद्ध मैं जानूँ, शुभ से भी परे शुद्ध ही चाहूँ।। (3)

स्वधर्मी-विधर्मी व अधर्मी जानूँ, स्वधर्मी वात्सल्य अन्यसे मैत्र्यादि करूँ,
पापात्मा-पुण्यात्मा व शुद्धात्मा जानूँ, शुद्धनय से सभी को शुद्ध मैं मानूँ
स्व-पर-विश्व हित हेतु चाहूँ, स्वहित सह परहित मैं करूँ।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागूँ, स्व-शुद्धात्मा का ध्यान-अध्ययन मैं करूँ।। (4)

मैं ही मेरे द्वारा मुझे मैं पाऊं, निर्विकार-निर्विकल्प-निस्कम्प बनूँ।
रागी-द्वेषी-अज्ञानी मोही न बनूँ, रागी-द्वेषी-अज्ञानी से माध्यस्थ रहूँ।
आत्मानुभव-आत्मविशुद्धि बढाता जाऊं पर निन्दा-पर अहित त्यागता जाऊँ
एकत्व-विभक्त से स्व-शुद्धात्मा बनूँ, 'कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बनूँ (5)

सागवाडा दि. 28.03.2018 मध्याह्न 02:51

संदर्भ :- हेय का आलम्बन त्यागकर स्वावलम्बी बनो

हेयोपादेयतत्त्वस्य स्थिति विज्ञाय हेयतः।
निरालम्बोऽन्यतःस्वस्मिन्नुपेये सावलम्बनः।।

पद्य भावानुवाद- (चाल आत्मशक्ती.....)

हेय उपादेय तत्त्व को जानकर हेय त्यागकर स्व को वरो।
हेय का आलम्बन त्याग करके स्व उपादेय का आलम्बन करो।।

ज्यादा देर बैठे रहने से स्मरण शक्ति में कमी

दैनिक कामकाज में लंबी अवधि तक गतिहीनता जैसे कि पूरा दिन कुर्सी पर बैठे रहने का सीधा संबंध वयस्क मानव के मस्तिष्क के मीडियल टेम्पोरल लोब क्षेत्र से होता है। इसकी नई स्मृतियों के निर्माण में अहम भूमिका होती है। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, लॉस एंजेलिस के शोधकर्त्ताओं ने 45 से 75 वर्ष की आयु के 35 लोगों पर अध्ययन किया शारीरिक गतिविधियों के स्तर और प्रतिदिन बैठे रहने के औसत घंटों की जानकारी के साथ उनके मस्तिष्क को स्कैन किया गया। पाया गया कि ज्यादा देर बैठने से मीडियल टेम्पोरल लोब क्षेत्र संकुचित होता है।

सम्पूर्ण तृष्णा त्याग से सम्पूर्ण मोक्ष

तदाप्यति तृष्णावान् हन्त। मा भूस्त्वात्मनि।
यावत्तृष्णा प्रभूतिस्ते, तावन्मोक्ष न यास्यसि।।(20)
यस्य मोक्षेऽपि नाकांक्षा, स मोक्षमधिगच्छति।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी, काङ्क्षान क्वापि योजयेत्।। (21)

पद्य भावानुवाद - (चाल :- आत्मशक्ति.....)
स्वहित हेतु भी अति तृष्णावान् नहीं बनो है! तुम आत्मन।
जब तक तृष्णा विद्यमान होगी, तब तक मोक्ष भी असंभव।।

मोक्ष की भी आकांक्षा जिसकी नहीं है उसे ही मिलता है मोक्ष।
ऐसा जानकर मुमुक्षजनों को, किसी में भी कांक्षा अकरणीय।।

शिवत्व प्राप्ति के परम उपाय

स्वं परं चेति वस्तु त्वं, वस्तुरूपेण भावय।
उपेक्षा भावनोत्कर्ष, पर्यन्ते शिवमाप्नुहि।। (22)
पद्यभावानुवाद - (चाल :- आत्मशक्ति.....)
स्व पर तत्त्व के परिज्ञान से, वस्तु स्वरूप की भावना करो।
उपेक्षा भावना उत्कर्ष पर्यन्त करने से, शिवपद स्वयं प्राप्त करो।

आत्मनिष्ठता से स्वाधीनता

सापि च स्वात्मनिष्ठत्वात्, सुलभा यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने फले तात, यत्नं किं न करिष्यसि।।(23)

पद्यभावानुवाद :- (चाल :- आत्मशक्ति.....)
आकांक्षा भी आत्मनिष्ठ है ऐसा यदि तुम सुलभ से चिन्तन करो।
सुख पाना भी है आत्माधीन, अतएव इस हेतु यत्न करो।।

भावार्थ :- कर्मों का नाश, दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति आत्मस्वरूप में परिणति, लवलीन, तल्लीन होने से प्राप्ति होती है। जब तक आत्मा का श्रद्धान, स्वानुभव नहीं है तब तक कुछ भी नहीं है। आत्मश्रद्धान के अलावा जिनलिंग का धारण करने पर भी कुछ लाभ नहीं है।

आत्मा की भावना बिन दुःख ही है

जाव ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो तावं।
तेण अणंत सुहाणं अप्पाणं भावए जोई ।।81।।

अर्थ :- जब तक अपनी आत्म का सत्यस्वरूप नहीं जाना जाता, तब तक आत्मा को कर्मजन्य दुःख का भार है। जब आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव आत्मा को जान लेता है, शुद्ध भावों को प्राप्त होता है, उसी समय अनंत सुख की प्राप्ति स्वयंमेव होती जाती है। इसलिए मुनिगण शुद्धस्वरूप अपने आत्मस्वभाव का ही ध्यान करते हैं। अपने शुद्ध आत्म स्वरूप में तन्मय रहते हैं। और मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ :- अपनी शुद्धस्वरूप आत्मा की भावना करनी चाहिए। स्वस्वरूप का ध्यान करना चाहिए। स्व आत्मा में दृढ़ता रखनी चाहिए। और जिनलिंग धारण करना चाहिए। तब आत्मा में स्थिरता आती है। तब कठिन तप चरण उपवास आदि उत्तम सुख का कारण बनता है। इसलिए आत्म स्वरूप को जानकर अथवा जानने के लिए तपश्चरण करना स्वेष्ट सिद्धि के लिए लाभदायक है।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अपने आत्म स्वरूप को जाने बिना जिनलिंग को धारण करना व्यर्थ है, वास्तव में जिनलिंग धारण के तपश्चरण करने से उपरांती होती, सच्चा ज्ञान, सख्त श्रद्धान भी भव्य किसी किसी जीव को होती है।

जिनलिंग को धारण करने वाले अभव्य जीव भी बाह्य व्रताचरण से नवम ग्रैवेयिक पर्यंत उत्तम अहमिन्द्र पद को पाते हैं। जिनलिंग धारण करने का महत्व ही महा अद्भुत है और लोकोत्तर है।

सम्यक्त्व से निर्वाण प्राप्ति

णियतच्चुबलद्धि विणा सम्मत्तु बलद्धि णत्थि णियमेण।
सम्मत्तुबलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि जिणुदिट्ठं।। 90 रयण.।।

अर्थ :- अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति के बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं है और सम्यक्त्व के बिना मोक्ष की प्राप्ति सर्वथा नहीं है। यह श्री जिनेन्द्र भगवान का सुदृढ़ निश्चित सिद्धान्त है।

प्रार्थना व प्रार्थना का फल

(पवित्र भावना है प्रार्थना व फल है व स्व-पर-विश्व कलयाण (मंगल कामना)

आचार्य कनकनन्दी

(चालः- आत्मशक्ति)

प्रार्थना होती है पावन गुण स्मरण तथाहि कीर्तन व अनुकरण।
स्व-पर-विश्वहित हेतु चिन्तन व नव कोटि से प्रयोग करण।।
परम पावन गुण होते है परमात्मा के अनन्त ज्ञानदर्शन सुख वीर्य।
परम अहिंसा व समता-शान्ति क्षमा-शुचिता आदि अनन्त गुण।।

वे सभी गुण भी हर जीव में विद्यमान शक्ति व सुप्त रूप में।

उन पावन गुणों के स्मरण आदि से प्रगट करना है स्व-पर के गुण।।
स्व-पर परमात्मा के गुण प्रगट से, अवगुण आदि होंगे नाश।
पाप नशेंगे पुण्य बढेंगे जिससे संकट रोग होंगे नाश।

पाप-पुण्य दोनों भी लय होंगे परम विशुद्धि के भाव/(भक्ति) से।
तब तो आत्मा ही परमात्मा बनेंगे परिपूर्ण होंगे उक्त गुणों से।।
परमात्मा बनने से पूर्ण प्रार्थना से मिलते अनेक सुफल।
प्रार्थना जब होती (है) पावन मैत्री-करूणा परोपकार से।।

रूठि-परम्परा व संकीर्णता परे, उदार-निस्वार्थ भाव सहित।
दिखावा-आडम्बर भेद-भाव परे, प्रार्थना होती आस्था सहित।।
इससे होते प्रार्थना कर्त्ता स्वयं ही, पावन व आध्यात्मिक गुणयुक्त।
जिससे वे स्व-पर उपकारी होते, यथा दीपक स्व-पर प्रकाश युक्त।।

यथा चुम्बक स्व चुम्बकीय क्षेत्र में डालता है चुम्बकीय प्रभाव।
तथाहि प्रार्थना कर्त्ता का प्रभाव पडता स्व-शक्ति के अनुपात।।
अन्तयोदय से सर्वोदय तक होती है शुभ-मंगल भावना।
निगोदिया (सुलभ जीव) से ले चारोंगति के जीवों की सुख कामना।।

प्रार्थना से जब परम्परा से मोक्ष मिलता अन्य कार्य क्या असंभव।
मानतुंग आचार्य की बेडी टूट गई, श्रीपाल आदि के कुष्ट रोग हुए दूर।।
मीराबाई व मदर-टरेसा नाइटेंगेल आदि भी लोक प्रसिद्ध।
कर्म सिद्धान्त व मनोविज्ञान आयुर्वेद से ले आधुनिक विज्ञान सिद्ध।।

भाव पावन से तन-मन-आत्मा भी होते स्वस्थ्य-सबल।
विवेक शक्ति जाग्रत होती जिससे कार्य क्षमता भी होती प्रबल।।
दिखावा-आडम्बर व वर्चस्व हेतु जो करते प्रार्थना शोर मचाकर।
लाउड स्पीकर से करने अन्य को परेशान उनकी प्रार्थना तो अहितकर।।

शुभभाव की शुभतरंग से होते हैं मंगलमय भाव व काम।

अशुभभाव की अशुभतरंग से होते अमंगलमय भाव व काम।।
नट-नटी ठग व्यापारी-आतंकवादी सम जो करते हैं पाखण्डमय प्रार्थना।
उससे अशुभ ही होते भाव व काम, पावन प्रार्थना से शुभ भाव व काम।।

प्रार्थना-पूजा-आरती-वन्दना-मंगलाचार से ले यज्ञविधान।
स्व-पर-विश्व की मंगलकामना सेवा दान सहयोगादि सभी प्रार्थना।।
याचना-प्रलोभन-भय-आंशकादि त्याग से होती सही प्रार्थना।
प्रार्थना से प्रार्थीत फल मिलता, याचनादि से होता भीखारी सम।।

दुःखक्षय हो कर्मक्षय हो, बोधिलाभ व सुगति परमात्मगुण लाभ।
ऐसी मंगल कामनामय प्रार्थना विधेय, 'कनक सुरी' चाहे मंगल लाभ।।

सागवाड़ा 26.3.2018 रात्रि 11.15 गी. 85 भी I कविता

संदर्भ -

सव्वे तसन्ति दण्डस्य, सव्वेसिं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेरूय न घातये।। (धम्मपद)

सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। दूसरों को अपनी तरह जानकर न तो किसी को मारे और न ही किसी को मारने की प्रेरणा करे।

यो न हन्ति न घातेति, न जिनाति न जापते।
मित्तं सो सव्वभूतेसु वेरं तस्स न केनचीति।।

जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, न दूसरों को जितवाता है, वह सर्व प्राणियों का मित्र होता है, इसका किसी के साथ वैर नहीं होत।

आत्मनःप्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। (मनुस्मृति)

जो कार्य तुम्हें पसंद नहीं है, उसे दूसरों के लिए कभी मत करो।

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं। क्लिण्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ। सदा ममात्मा विदधातु देव(1)
(भावना द्वात्रिंशतिका)

हे भगवान! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे, गुणिजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करूणाभाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्यभाव) रहे। आत्मवत्परत्र कुशल वृत्ति चिन्तन शक्तिसत्याग तपसी च धर्माधिगमोषा याः। (नीतिवाक्यमृत)

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण) चिंतवन, करना शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तपश्चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय है।

''सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्।। ''

सम्पूर्ण जीव जगत सुखी, निरोगी, भद्र, विनयी सदाचारी रहे। कोई भी कभी भी थोड़े भी दुःख को प्राप्त न करे।

शिवमस्तु सर्वजगत्: परहित निरता भवन्तु भूत गणाः।
दोषा प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः।।

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, जीव समूह परहित में निरत रहें, सम्पूर्ण दोष विनाश को प्राप्त हो जावे, लोक में सदा सर्वदा सम्पूर्ण प्रकार से सुखी रहें!

मा काषीत्कोऽपि पापानि, माचभूत कोपिदुःखितः।
मुच्यता जगदव्येषां, मति मैत्री निगद्यते।।

कोई भी पाप कार्य को न करें, कोई भी दुःखी न रहे, जगत् दुःख, कष्ट वैरत्व से रहित हो जावें इसी प्रकार की भावना को मैत्री भावना कहते हैं।

कायेन, मनसा वाचा सर्वेएवपि च देहिषु
अदुःख जननी वृत्ति मैत्री, मैत्रीविदां मता।।

काय, मन, वचन से सम्पूर्ण जीवों के प्रति ऐसा व्यवहार करना जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे इसी प्रकार के व्यवहार को मैत्री व्यवहार कहते हैं।

पूज्यपाद स्वामी ने भी विश्व कल्याण के लिए जो भावना के सूत्र दिए हैं वे निम्न प्रकार है-

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभुवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले-काले च सम्यक् वर्षतु मधवा व्याध्यो यान्तु नाशम्।।

दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके।
जैनन्दं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वखोख्यं प्रदायि (15)

सम्पूर्ण प्रजा क्षेम, कुशल होवै, धार्मिक राजा (नेता) शक्ति सम्पन्न होवै, समय-समय पर इन्द्रदेव(बादल) सुवृष्टि के, रोग नाश के प्राप्त होवे, दुर्भिक्ष, चोरी,डकैती आतंकवाद, दुःख कलह, अशान्ति एक क्षण के लिए भी इस जीव जगत् में न रहें। सब जीवों को सुख प्रदान करने वाले जिनेन्द्र भगवान का धर्मचक्र (क्षमा, अहिंसा, दया,सत्य, मैत्री संगठन आदि) सतत् पवर्तमान् रहे।

उपनिषद् में भी किसी जीव के प्रति घृणा न करके प्रेम करने के लिए कह गया है-

यस्तु सर्वाणि भूतानि, आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

जो अर्न्तनिरीक्षण के द्वारा सब भूतो (प्राणियों) को अपनी आत्मा में ही देखता है, और अपनी आत्मा को सब भूतों में वह फिर किसी से घृणा नहीं करता है।

पूजा प्रार्थना फल-

अरंहतादि पंचपरमेष्ठी या नव देवता यथायोग्य राग-द्वेष से रहित होने के कारण वे पूजा आदि से प्रसन्न होकर वर प्रदान नहीं करते हैं तथा निंदा अवमानना आदि से अभिशाप नहीं देते हैं। तब स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यदि वे प्रसन्न होकर या रूष्ट होकर हमारा कुछ लाभ-हानि नहीं करते हैं तो उनकी अर्चना से क्या लाभ है? इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर समन्तभद्र स्वामी के वचन में निम्न प्रकार है :-

न पूजयार्थस्तवयि वीतराग न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्य गुण स्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः ।157।
(स्वयंभूस्तोत्र)

है जिनेन्द्र भगवान्। आप वीतराग होने के कारण आपकी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है तथा निंदा करने वालों से आपका किसी प्रकार का वैरत्व नहीं है तथापि आपके पुण्य श्लोक, गुणों के स्मरण मात्र से चित्त पवित्र हो जाता है एवं पाप रूपी कलंक दूर हो जाते हैं।

परिणत दशा में बाह्य शुभाशुभ द्रव्यों का परिणाम जीवों पर भी शुभाशुभ रूप से

पड़ता है जैसे स्वच्छ स्फटिक मणि विभिन्न रंग की शुभाशुभ रूप से पड़ता है जैसे स्वच्छ स्फटिक मणि विभिन्न रंग की संगति से विभिन्न रूप से परिणत करता है, जैसे लोह खण्ड चुम्बक के घर्षण से चुम्बक रूप परिणमन कर लेता है, बुझा हुआ दीप प्रज्वलित दीपक की संगति से प्रजवलित हो जाता है, वीर पुरुषों के फोटों देखने से उनकी जीवनगाथा सुनने से, स्मरण करने से अंतरंग में वीरत्व भाव जागृत होता है कामी पुरुष द्वारा अश्लिल चित्र, संगीत, सिनेमा, नाटक देखने से तथा तदविषयक पुस्तक पढ़ने से, स्मरण करने से उसके मन में काम चेतना जागृत होती है। महापुरुष, धर्मात्मा पुरुष, वीतराग पुरुष की मूर्ति देखने से, उनके गुणगान करने से, उनकी स्तुति करने से, मन में भी उनके आदर्श गुण जागृत हो जाते हैं। यह ही मनोवैज्ञानिक अनुभवगम्य सिद्धान्त पूजा-अर्चना-स्तुति में निहित है। पूज्य पुरुष पूजक के लिए आदर्श (दर्पण) के समान होते हैं- स्वमुख को देखने की इच्छा रखने वाला स्वच्छ दर्पण को देखता है उसी प्रकार स्वात्मा गुणों को देखने के इच्छुक आदर्श पुरुष का दर्शन करता है।

आचार्य-कुंदकुद स्वामी ने प्रवचन सार में स्वआत्माद्रव्य परिज्ञान का उपाय बताते हुए वर्णन किया है :-

जो जाणदि अरहतं दव्वत्तगुणत्त पजयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।। 80।।
(प्रवचनसार)

जो अरहंत भगवान् को द्रव्य-दृष्टि, गुण-दृष्टि, पर्यायदृष्टि से जानता है वह स्वआत्मद्रव्य को जानता है और उसका मोह क्लिय हो जाता है। भक्त जब भगवान के पास जाता है तब वह भगवान् का स्वरूप रूपी दर्पण से अपने स्वरूप का दर्शन करता है जब वह द्रव्य दृष्टि से स्वयं को एवं भगवान् को देखता है तब दोनों में कोई अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है क्योंकि पूज्य भी जीव द्रव्य है तथा पूजक भी जीव द्रव्य है। गुण दृष्टि से भी कोई विशेष अंतर परिलक्षित नहीं होता है किन्तु जब पर्याय दृष्टि से अवलोकन करता है तब दोनों में महान् अन्तर परिलक्षित होता है क्योंकि भगवान् पर्याय दृष्टि से अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य के अक्षय भण्डार है एवं पूजक स्वयं अनन्त अज्ञान, दुःखादि को भोगने वाला है।

इंग्लिश में एक नीति वाक्य हैं-

There is no difference between God and us.

But there is so difference between God and us.

अर्थात् दृव्यदृष्टि से भगवान् और हमारे में कोई अन्तर नहीं है किन्तु अवस्था दृष्टि (पयार्य दृष्टि) से भगवान् और हमारे में महान् अंतर है। भक्त भगवान के पास एक अलौकिक उपादेय प्रशस्त स्वार्थ को लेकर जाता है। उसका स्वार्थ यह है कि मेरा स्वरूप भगवत् स्वरूप होते हुए भी मैं अभी दीन-हीन भिखारी के समान हूँ। मैं भगवान के पास जाकर उनसे वही शिक्षा प्राप्त करूँगा जिस मार्ग पर चलते हुए भगवान् ने इस परमोत्कृष्ट नित्यानंद अवस्था को प्राप्त किया है। इसलिए भक्त की आद्यन्त भावना एवं परिणति निम्न प्रकार की होती है-

दासोऽहं रटता प्रभो आया जब तुम पास।

''द'' दर्शत हट गया, ''सोऽहं रहो प्रकाश''।।

सोऽ हं सोऽहं ध्यावतो रह न सको सकार।

दीप ''अहं'' मय हो गया अविनाशी आविकार।।

जब भक्त भगवान् के पास आता है तब वह स्वयं का दास (पूजक) एवं भगवान को प्रभू(पूज्य) मानता है। जब भगवान् का दर्शन करके भगवान् का स्वरूप एवं स्व स्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण करता है, जब वह पूज्य के गुणों को अनुकरण करके आध्यात्मिक साधना करता है तो उस साधना के फलस्वरूप निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है तब सो अहं रूप विकल्प भी विलय हो जाता है, तब अंह रूप अविनाशी, अविकार स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह ही पूजा का परमत्कृष्ट फल है। आचार्य प्रवर उमास्वामी ने कहा है ''वन्दे तद्गुणलब्धये'' अर्थात् मैं वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेश, भगवान को उनके गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना करता हूँ।

पूजा, वंदना, अर्चना, विनय, समर्पित भाव में ऐसी एक शक्ति है जिससे पूजक के मन में पूज्य के गुण संचार करते जाते हैं तथा धीरे-धीरे पूजक भी पूज्य बन जाता है। विद्वद्वर श्री आशाधर जी ने अध्यात्म रहस्य के मंगलाचरण में कहा है :-

भव्येभ्यो भाजमानेभ्यो यो ददाति निजपदम्।

तस्मै श्री वीरनाथाय नमः श्री गौतमाय च।।

जो भजमान भव्यों को भक्ति में अनुरक्त सुपात्र भव्य जीवों को अपना पद प्रदान करते हैं-जिनके भजन आराधन से भय प्राणियों को उनके जैसे पद की प्राप्ति होती है-उन श्री वीर स्वामी को अक्षय ज्ञान लक्ष्मी एवं भारती विभूतिरूप ''श्री'' से सम्पन्न भगवान् महावीर को तथा श्री गौतम स्वामी को नमस्कार हो।

वीतराग सर्वज्ञ भगवान् के पास जो गुण होते हैं वे ही गुण पूजक को देते हैं। भगवान् के पास स्वरूप को छोड़कर और कुछ उनके पास है ही नहीं। इसलिये वे भक्त को स्व स्वरूप ही दे देते हैं। पूज्यवाद स्वामी ने कहा भी है-

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।

ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्ध मिदं वचः।। इष्टोपदेश।। 23।।

आत्म ज्ञान से शून्य अज्ञानियों की सेवा उपासना अज्ञान को देती है और ज्ञानियों की सेवा उपासना ज्ञान उत्पन्न करती है क्योंकि यह बात अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्य के पास जो कुछ होता है उसी को वह देता है।

भिन्नात्मानेमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।

वत्तिदीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी।। 97।। समाधितन्त्र।।

अपने आत्मा से भिन्न अर्हन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाती है। जैसे -दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी-साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन यद्रुपं ध्यायेतमात्मानमात्मवित्।

तेन तन्मयता याति सोपधिः स्फटिको यथा।।

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है वह उस स्वरूप हो जाता है जैसे-स्फटिक मणि विभिन्न रंगों के सम्पर्क से उस वर्ण रूप यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।

अर्हत्ध्यानाविष्टो भवार्हन् स्थात् स्वयं तस्मात्।।

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूप हो जाता है।

अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है। जिनार्चना से

बहुआयामी लाभ होता है। इससे महान् आत्मा के प्रति विनय भाव प्रकट होता है। मानसिक शान्ति मिलती है जिससे मानसिक तनाव दूर होने के कारण शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य प्राप्त होता है। पूज्य पुरूषप्रति प्रशस्त राग होने के कारण पाप कर्म के संवर के साथ-साथ असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा एवं सातिशय पुण्य बन्ध होता है। जिससे अभ्युदय के साथ-साथ अन्त में मोक्ष सुख की उपलब्धि होती है है पूज्य पुरुष का नामोच्चरण, गुणगान, नामस्मरण स्वयं मंगल स्वरूप है। वीरसेन स्वामी ने धवला में तथा यति वृषभाचार्य ने तिलोयपण्णत्ति में मंगल का विस्तृत वर्णन करते हुए निम्न प्रकार कहा है :-

पुण्ण पूदपवित्ता पसत्थ सिवभद्धसेग कल्लाणा।
सुहसोक्खादी सव्वेणिद्दिट्ठा मंगलस्स पज्जाया।। 8।।

पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ और सौख्य इत्यादि सब मंगल के ही पर्याय अर्थात् समानार्थक शब्द कहे गये हैं।

गालयदि विणासयदेघादेदि देहदि हंति सोधयदो।
विध्दंसेदि मलाई जम्हा तम्हा य मंगलं भणिदं।। 9।।

क्योंकि यह पाप-या मलों को गलाता है, विनष्ट करता है, घातता है, दहन करता है, हनता है, शुद्ध करता है और विध्वंस करता है इसीलिए इसे मंगल कहा गया है।

अहवा बहुभेयगयं णाणावरणादिदव्वभावमलभेदा।
ताईं गालेइ पुढ़ं जदो तदो मंगलं भणिदं।। 4।।

अथवा ज्ञानावरणादिक द्रव्यमल के और ज्ञानावरणादिक भावमल के भेद से मल के अनेक भेद है, उन्हें चूँकि यह पृथक करता है, गलाता है अर्थात् नष्ट करता है इसीलिए यह ''मंगल'' कहा गया है।

अहवा मंग सोक्खं लानादि हु गण्हेदि मंगलं तम्हा।
एदेण कज्जसिद्धि मंगई गच्छदि गंथकत्तारो।।5।।

अथवा, चूँकि यह ''मंग'' को अर्थात् सुख को लाता है, इसलिए भी इसे ''मंगल'' समझना चाहिए। इसी के द्वारा ग्रंथकर्त्ता अपने कार्य की सिद्धि पर पहुँच जाता है।

पावं मलं ति भण्णइ उपयार सरूवरएण जीवाणां।
तं गालेदि विणासं णेदि ति भणंति मंगलं केई।।7।।

जीवों के पाप को उपचार से मूल कहा जाता है। उसे मंगल गलाता है, विनाश को प्राप्त करता है, इस कारण भी कोई आचार्य इसे मंगल कहते हैं।

अरहंताणं सिद्धाणं आइरिय उवज्झयाइं साहूणं।
णामाई णाममंगल मुदिद्ठं वीयरागएहिं।9।

वीतराग भगवान् ने अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इनके नामों को नाममंगल कहा है।

ठावणमंगलमेदं अकट्टिमाकिट्टिमाणि जिणबिंबा।
सूरि उवज्झसाहूदेहाणि हु दव्वमंगलयं।।20।।

जिन भगवान के जो अकृत्रिम और कृत्रिम प्रतिबिम्ब है, वे सब स्थापना मंगल हैं। तथा आचार्य, उपाध्याय और साधु के शरीर द्रव्य मंगल है।

णासदि विग्घं भेददि अग्घं दुट्ठा सुरा ण लंघंति।
इट्ठो अत्थो लब्भई जिणणामगहणमेत्तेण।। 30।

जिन भगवान् के नाम के ग्रहण करने मात्र से विध्न नष्ट हो जाते हैं, पाप खण्डित होता है, दुष्ट देव लांघते नहीं अर्थात् किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करते और इष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है।

सत्थादि मज्झअवसाणएसु जिणतोत्तमंगलुच्चारो।
णासइ णिस्सेसाइं विग्घाईं रविव्व तिमिराई।।3।।

शास्त्र के आदि, मध्य और अन्त में किया गया जिनस्तोत्ररूप मंगल का उच्चारण सम्पूर्ण विध्नों को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार सूर्य अंधकार को।

पूज्यपाद स्वामी, जिन भक्ति का महत्व प्रतिपादन करते हुए समाधि भक्ति में निम्न प्रकार कहते है :-

एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कुतिनः।।8।।

एक ही जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति समस्त दुर्गतियों का निवारण करने के लिये, सातिशय पुण्य को सम्पादन करने के लिए मुक्ति श्री को प्रदान करने के लिए समर्थ है।

जन्म-जन्म कृतं पापं जन्मकोटि समार्जितम्।

जन्ममृत्युजरामूलं हन्यत जिनवंदनात्।। 5।।

जन्म-जन्म में किया हुआ पाप, कोटि जन्मों में उपार्जित पाप तथा जन्म-जरा-मृत्यु, जिनेन्द्र भगवान की वन्दना से नष्ट हो जाते हैं।

विध्ना प्रणश्यन्ति भयं न जातु न दुष्टदेवाः परिलङ घयन्ति।

अर्थान्यथेष्टाश्चे सदा जिनोत्तमानां परिकीर्तनेना।। 2।। धवला

जिनेन्द्र देव के गुणों का कीर्तन करने से विध्न नाश को प्राप्त होते हैं, कभी भी भय नहीं होता है, दुष्ट देवता आक्रमण नहीं कर सकते हैं और निरंतर यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

आदौ मध्येऽवसाने च मंगल भाषितं बुधेः।

तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं तद्विध्नप्रसिद्धयो।22।

विद्वान् पुरुषों ने, प्रारम्भ किये गये किसी भी कार्य के आदि, मध्य और अंत में मंगल करने का विधान किया है। वह मंगल निर्विंध्न कार्य सिद्धि के लिये जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन करना ही है।

इसी धवला में वीरसेन स्वामी मंगल, भक्ति, पूजा, स्वाध्यायादि शुभोपयोग से जो सर्वांगीण लाभ होता है, उसका वर्णन करते हुए कहते है-

तत्र हेतुर्द्धिविधः प्रत्यक्ष हेतुःपरोक्ष हेतुरिति कस्य हेतुः? सिद्धान्ताध्ययनस्य तत्र प्रत्यक्ष हेतु र्द्विविध साक्षात्परम्परा प्रत्यक्ष भेदाता

तत्र साक्षात्प्रत्यक्षमज्ञानविनाशः सज्ज्ञानोत्पत्तिनिर्देवमनुष्यादिभिःसततमभ्रूर्चन प्रति समयमसंख्यात गुणश्रेण्या कर्म निर्जरा चा कर्म णामसंख्यात गुण- श्रेणिनिर्जरा केषा प्रत्यक्षेति चेत्र, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानिनासूत्रमधीयानानां तत्प्रत्यक्षतायाः समुपलम्भात् तत्र परम्पराप्रत्यक्षं शिष्यप्रशिष्यादिभिःसततमभ्यर्चनम्। परोक्षंद्विविध, अभ्युदय ने श्रेयस मिति तत्राभ्युदयसुखं नामा सातादि प्रशस्त कर्म तीव्रानुभागोदय जिनेन्द्र प्रतीन्द्र सामानिक त्रायस्त्रिशदादि-देव-चक्रवर्ति-बलदेव नारायणार्धमण्डलीक-मण्डलीक-महामण्डलीक-राजधिराज महारा जाधिराज परमेश्वरादि दिव्य मानुष्य सुखम् (धवला पु.)

हेतु दो प्रकार का होता है। एक प्रत्यक्ष हेतु और दूसरा परोक्ष हेतु।

शंका : यहाँ पर किसके हेतु का कथन किया जाता है ?

समाधानः यहाँ पर सिद्धान्त के अध्ययन के हेतु का कथन किया जाता है।

उन दोनों प्रकार के हेतुओं में से प्रत्यक्ष हेतु दो प्रकार का है, साक्षात्प्रत्यक्ष हेतु और परंपरा-प्रत्यक्ष हेतु। उनमें से अज्ञान का विनाश, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, देव, मनुष्यादि के द्वारा निरंतर पूजा का होना और प्रत्येक समय में असंख्यात-गुणित-श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा का होना साक्षात्प्रत्यक्ष हेतु फल समझना चाहिए।

शंका : कर्मों की असख्यात-गुणित-श्रेणी रूप से निर्जरा होती है, यह किनके प्रत्यक्ष है ?

समाधान : ऐसी शंका ठीक नहीं है ? क्योंकि, सूत्र का अध्ययन करने वालों की असंख्यात-गुणित-श्रेणी रूप से प्रति समय कर्म निर्जरा होती है, यह विषय अवधिज्ञानी और मनःपर्यय ज्ञानियों को प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध होती है।

शिष्य, प्रतिशिष्यादिक के द्वारा निरंतर पूजा जाना परंपरा, प्रत्यक्ष हेतु है। परोक्ष हेतु भी दो प्रकार का है, एक अभ्युदय सुख और दूसरा नेश्रेय ससुखा इनमें से साता-वेदनीय आदि प्रशस्त-कर्म-प्रकृतियों के तीव्र अनुभाग के उदय से उत्पन्न हुआ इन्द्र, प्रतीन्द्र,सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि देव संबंधी दिव्य-सुख और चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, अर्धमण्डलीक, मण्डलीक महामण्डलीक, राजाधिराज, महाराजाधिराज,परमेश्वर आदि मनुष्य सुख को अभ्युदय सुख कहते हैं।

जिनदर्शनःनिजदर्शन

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनम्।

दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम्।।1।।

देवादिदेव अरहन्त भगवान् का दर्शन पापों का नाशक है, स्वर्ग की सीढ़ी है और अधिक क्या दर्शन मोक्ष का भी साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।

न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्र हस्ते यथोदकम्।। 2।।

जिस प्रकार छिद्र सहित हाथों में जल बहुत समय नहीं टिकता है, उसी प्रकार जिनेन्द्र देव के दर्शन और साधुओं की वेदना करने से पाप लम्बे समय तक नहीं ठहरते हैं।

प्रार्थना सृजनात्मक ढाँचा तैयार करती है

प्रार्थना में कुछ भी मुश्किल नहीं है। जो भी इस पुस्तक में बताए हुए सिद्धांतों पर अमल करता है, वह खुद के लिए और दूसरों के लिए सफल प्रार्थना करने में सक्षम होगा।सच्ची प्रार्थना क्रिया और प्रतिक्रिया के सर्वव्यापी नियम पर आधारित है। विचार प्रारम्भिक क्रिया है; प्रतिक्रिया गहरे मन का दिया फल या परिणाम है, जो विचार की प्रकृति के अनुरूप होता है। अच्छा सोचते हैं, तो अच्छा परिणाम मिलता है; बुरा सोचते हैं, तो बुरा परिणाम मिलता है।

जब आप प्रार्थना करते हैं, तो आप सर्वव्यापी सृजनात्मक मन में एक निश्चित विचार, आदत या मानसिक चित्र बो रहे हैं। आपका यह मन उसे स्वीकार कर लेता है, जिसे चेतन मन सच मानकर विश्वास करता है। सृजनात्मक नियम सटीकता से जानता है कि विचारों को वस्तुओं में साकार कैसे करना है। यह इसे दिए गए वैचारिक ढाँचे पर काम शुरू कर देगा; फल या परिणाम आपको आकार, काम, अनुभव या घटना के रूप में दिखाई देंगे।

यहाँ प्रभावी प्रार्थना के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

उसने ईश्वर पर विश्वास किया

हमारे स्थानीय समाचारपत्र में एक ख़बर छपी थी। एक युवक कोरियाई युद्ध में लड़ने गया था। जब उसने 23वें भजन का पंक्तियों को दोहराया, तो इसकी बदौलत वह निश्चत लगने वाली मृत्यु से चमत्कारिक रूप से बच गया। गोलियाँ उसके पास से उड़ती हुई जा रही थी, उसके साथी मरते जा रहे थे और उसके घुटने काँप रहे थे। ऐसे भीषण हालात में जब उसने जोर से प्रार्थना की, ''ईश्वर मेरा चरवाहा है, मुझे कमी नहीं होगी, वह मुझे स्थिर पानी के पास ले जाता है, वह मेरी आत्मा को नया करता है...'' तो उसके भीतर एक आंतरिक शांति और विश्वास उमड़ने लगा। जब उसने सुरक्षा और स्वतंत्रता का मार्ग खोज लिया, तो कोई भी गोली या दुश्मन उसे छू भी नहीं पाया। उसके भीतर की असीम प्रज्ञा ने विश्वास और आस्था की उसकी प्रार्थना पर प्रतिक्रिया की थी।

ईश्वर के बारे में सोचना

एक बुजुर्ग महिला दक्षिण कैलिफोर्निया में मेरे द्वारा संचालित एक रेडियो कार्यक्रम कई सालों से नियमित रूप से सुनती थी। उसने मुझे पत्र लिखकर बताया कि उसने रविवार सुबह हमारे प्रार्थना-चिकित्सा निर्देशों के ज़रिये प्रार्थना करना सीखा था। उसने कहा कि उसने एक कागज पर वह सब उतार लिया था, जो उसे ईश्वर के बारे में सिखाया गया थाः ईश्वर असीम बुद्धिमत्ता है, असीम प्रेम, सर्वशक्तिमान, असीम प्रज्ञा, अनिवर्चनीय सौंदर्य, पूर्ण सौहार्द, सृजनात्मक प्रज्ञा हैं, जिसने उसके शरीर और सभी अंगों को आकार व प्राण दिया है। हर सुबह और शाम पाँच-दस मिनट तक वह शांति और तन्मय रुचि के साथ ईश्वर के इन गुणों व विशेषताओं के बारे में सोचती थी और मन ही मन दावा करती थी कि ये सत्य उसकी मानसिकता में सोखे जा रहे हैं। एक महीने में ही उसका ट्यूमर पूरी तरह ग़ायब हो गया, जो एक्सरे और उसके चिकित्सक दोनों की जाँचों में साबित हुआ।

उस महिला ने सीधे अपने ट्यूमर का इलाज नहीं किया; उसका ट्यूमर तो उसके पुराने वैचारिक ढाँचे का ठोस परिणाम था। जब उसने अपने मन को सत्य के कथनों से भर लिया, तो उसका शरीर भी इसी अनुरूप बदल गया। वह ईश्वर और उसके प्रेम के बारे में सोच-सोचकर नकारात्मक विचारों को ''मन से हटाती'' रही, जिससे आख़िरकार उसकी बीमारी ठीक हो गई।

प्रार्थना की कला

यदि आप प्रार्थना की कला में माहिर बनना चाहते हैं, तो खुद को मानसिक और भावनात्मक रूप से किसी विचार, योजना या उद्देश्य से तुरंत जोड़ना शुरू करें; कुछ ही समय में आपको अपने विचारों पर भौतिक प्रतिक्रिया के भौतिक प्रमाण दिखाई देने लगेंगे। लेकिन परिणामों के पहले प्रमाण दिखते ही अपनी प्रार्थनाएँ न छोड़ दें। आपको इस विश्वास के साथ प्रार्थना करते रहना चाहिए कि आप एक मानसिक और आध्यात्मिक नियम पर चल रहे हैं, जो आपकी मानसिक गतिविधि पर प्रतिक्रिया करता है और आपको शांति की अवस्था में रखता है। याद रखें, जिस भी विचार पर आप मनन करते हैं और जिसे आप सच मानते हैं, वह आपके अवचेतन मन में पोषित होता है और आपके जीवन में प्रकट होता है। आप क्या कर रहे हैं और आप

इसे क्यों कर रहे हैं, यह जानने से आपको अपने प्रार्थना जीवन में आस्था और विश्वास मिलेगा।

प्रार्थना-मन का परिवर्तन

जब आप यह पता लगाते हैं कि सत्य क्या है और आपका मन उस सत्य का मानने लगता है, तो प्रार्थना में आप मन का परिवर्तन अनुभव करते हैं। प्रार्थना इस सत्य को उजागर करती है कि ईश्वर सारी इंसानी समस्याओं को सुलझाने में सर्वोच्च और सर्वशक्तिमान है। चाहे आप किसी भी तरह की मुश्किल का सामना कर रहे हों और चाहे स्थिति कितनी भी जटिल क्यों न दिखती हो, प्रार्थना से एक सौहार्दपूर्ण समाधान निकल सकता है और दैवी व्यवस्था के तहत आपका जीवन दोबारा व्यवस्थित हो सकता है।

प्रार्थना का मतलब ईश्वर से कोई चीज़ माँगना नहीं है। न ही प्रार्थना ईश्वर की इच्छा को बदलने की कोशिश है। प्रार्थना तो बस आपके मन की परिस्थितियों को बदल देती है। प्रार्थना आसमान में बैठे ईश्वर से किसी अहसान के बदले में कातर याचना, गिड़गिड़ाना या अनुनय-विनय करना नहीं है। इसके बजाय, प्रार्थना तो उस मनुष्य की सकारात्मक कोशिश है, जो इस जोशीली आस्था और विश्वास से काम कर रहा है कि ईश्वर, जो असीम प्रज्ञा है, मन में निहित विचारों की प्रकृति के अनुरूप प्रतिक्रिया करेगा। प्रार्थना का फल सत्य पर आधारित खुद के मन में होता हैः तुम्हारी आस्था के अनुरूप ही तुम्हे फल मिलता है। प्रार्थना आपके जीवन और आपके सभी मामलों में ईश्वर की उपस्थिति का अभ्यास है। यह एक विश्वास है कि जहाँ आप है, ईश्वर वही है और वह हमेशा आपके जरिये बोल रहा है।

जब भी आप ईश्वर और उसके प्रेम और बुद्धिमता के बारे में सोच रहे हैं, तो आप प्रार्थना कर रहे हैं। जब भी आप ईश्वर के साथ अपने एकत्व को महसूस करते हैं, तो आप प्रार्थना कर रहे हैं। इसी तरह, तब भी आप बाइबल या किसी अन्य आध्यात्मिक ग्रंथ के आध्यात्मिक सत्य को पढ़ते हैं या उस पर मनन करते हैं, तब भी आप प्रार्थना कर रहे हैं।

कई लोग दिन में सैकड़ों बार प्रार्थना करते हैं। काम करते वक्त वे मन ही मन

दावा करते हैं कि ईश्वर पूरे समय उनके ही ज़रिये उनका मार्गदर्शन कर रहा है, उन्हें निर्देश दे रहा है, निर्देश दे रहा है, काम कर रहा है और वह सर्वशक्तिमान हमें हमारे कर्म करते देख रहा है। प्रार्थना प्रायः ईश्वर की उपस्थिति का अभ्यास कहलाती है, यानी आपको यह अहसास होता है कि ईश्वर की प्रज्ञा और बुद्धिमत्ता आपके माध्यम से काम कर रही है और जहाँ पहले मुश्किल नज़र आती थी, वहाँ एक सौहार्दपूर्ण समाधान ला रही है। मन का यह नज़रिया मुश्किल को मधुरता में बदल देता है। स्वर्णिम नियम और प्रेम के नियम के दृष्टिकोण से अपने हर काम को करके आप ईश्वर की उपस्थिति का अभ्यास कर सकते हैं।

ईश्वर जवाब देता है

बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य से पहले बुद्धिमतापूर्ण विचार आएँगे। बुद्धिमत्तापूर्ण विचार का अर्थ यह जानना है कि ईश्वर या असीम प्रज्ञा इस वक्त आपका मार्गदर्शन कर रही है और उसे जवाब मालूम है; इसलिए आप साहस के साथ दावा करते हैं कि आपको जवाब मालूम है। इससे पहले कि वे बोलें, मैं जवाब दे दुँगा! अपनी समस्या के जवाब के लिए प्रार्थना करते समय यह ध्यान रखें कि उस परिस्थिति में स्पष्ट और सामान्य बोध से प्रेरित काम की उपेक्षा करना या उसे नज़रअंदाज करना मूर्खतापूर्ण है; जो भी व्यवहारिक क़दम आवश्यक लगें, उन्हें उठाएँ। दैवी मार्गदर्शन का दावा करें। फिर आप जो क़दम उठाते हैं, उनमें दैवी प्रज्ञा आपको मार्गदर्शन और दिशा देगी, जो आपके मन का सबसे प्रबल विश्वास है।

प्रार्थना में आप अपने विचार के ज़रिये अपने भीतर वास करने वाली दैवी उपस्थिति से संपर्क जोड़ते हैं। चेतन रूप से ऐसा करने से आप ईश्वर की बुद्धिमता, शक्ति और असीम प्रज्ञा का आह्वान कर रहे होते हैं कि यह आपके जीवन की विभिन्न मुश्किलों या समस्याओं को सुलझा दे और सबसे पहले सबसे मुश्किल समस्याओं को सुलझाने के क्रम पर चले। आपकी सभी समस्याओं के जवाब या हल माँगने की ख़ातिर प्रार्थना का सही तरीक़ा यह महसूस करना और जानना है कि सिर्फ़ आपके भीतर का ईश्वर ही जवाब जानता है। चूँकि यह सच है, इसलिए आप जवाब जान जाएँगे और आपकी यह सत्य याद आएगाः ईश्वर कभी असफल नहीं होता।

ईश्वर की प्रार्थना करना और इसका अर्थ समझना

बाइबल कहती हैः ईश्वर परमात्मा हैः और जो लोग उसकी आराधना करते हैं, उन्हें आत्मा और सत्य में उसकी आराधना करनी चाहिए(जॉन 2:24)। आराधना करने का मतलब है किसी चीज़ पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करना, जिसके लाभप्रद होने का अपको भरोसा है। इसका मतलब है कि आपको अपने भीतर की आत्मा को चरम निष्ठा, वफादारी और आस्था देनी है, इसे सर्वोच्च शक्ति और समस्त वस्तुओं के कारण व वास्तविकता के रूप में पहचानना है। आत्मा का कोई चेहरा, रूप या आकार नहीं है यह अजर, निराकार और अमर है। ईश्वर के बारे में यह अवधारणा बचकानी है कि कोई परदादा जैसा बुजुर्ग आसमान में किसी सिंहासन पर बैठा होगा। इस अवधारणा की जगह हमें यह अहसास होना चाहिए कि ईश्वर आपके भीतर का असीम मस्तिष्क और आत्मा है, जो आपमें जान डालती है व जीवित रखती है। ईश्वर जीवन है। हम जीवन को देख नहीं पाते हैं, लेकिन हम महसूस करते हैं कि हम जीवित हैं।

हम जो अच्छाई और बुराई अनुभव करते हैं, वह जीवन सिद्धांत के प्रति हमारी सोच तथा संबंध का नतीजा है, जो अपने आप में हमेशा पूर्ण, पवित्र और आदर्श है। यह सुनिश्चित करें कि आप निर्मित वस्तुओं या परिणामों को शक्ति न दें ; सबके मूल कारण की ओर जाएँ जो आपके भीतर की आत्मा ही है। यह आत्मा या ईश्वर आपके जीवन में आपके विचार-जीवन की प्रकृति के अनुसार ढलता है। केवल एक ही सृजनात्मक सिद्धांत है और यह हमेशा आपके स्वभाविक विचारों के ज़रिये प्रवाहित हो रहा है। इसीलिए आपके जीवन के सारे अनुभव, घटनाएँ और परिस्थितियाँ आपकी कल्पनाओं के समान और अनुरूप बनती है। यही सारी प्रार्थना का आधार है, चाहे हम इस नियम का इस्तेमाल चेतन रूप से करें या अचेतन रूप से।

बाइबल में ईश्वर के पुरुष-संबोधन ''वह'' से दुविधा में न पड़े। प्राचीन काल में हिब्रू रहस्यावादी ईश्वर का जिक्र करते वक्त ''यह'' शब्द का इस्तेमाल करते थे, लेकिन अब ऐसा नहीं होता है, क्योंकि इसमें सबके पिता यानी परम पिता को मिलने वाले सम्मान और आदर भाव में कमी झलकती है। बाइबल में ईश्वर के 76 या इससे

ज़्यादा नाम दिए गए हैं, लेकिन ये सभी नाम ईश्वर के गुणों, लक्षणों, विशेषताओं और शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कुछ अवस्थाओं का दावा करना आदि

जीवन का सिद्धांत किसी खास व्यक्ति के साथ सकारात्मक भेदभाव नहीं करता; हम इसे फुसला नहीं सकते, रिश्वत नहीं दे सकते या चापलूसी नहीं कर सकते। यह अव्यक्तिगत नियम है। ईश्वर की राह कभी शरीर के ज़रिये नहीं होती; यह हमेशा और केवल दिमाग़ और दिल के ज़रिये होती है। प्रार्थना इसलिए प्रभावी या असरदार होती है, क्योंकि इसके पीछे ईश्वर के साथ एकाकार होने की आत्मा की सच्ची इच्छा होती है, क्योंकि इसमें उसके गुणों और विशेषताओं को यहीं पर उत्पन्न करने की सच्ची इच्छा होती है। इसीलिए जॉब की तरह हम भी कह सकते हैं : फिर भी अपने जिस्म में मैं ईश्वर को देखता हूँ।

इस तरह, सृष्टि की बुद्धिमता में, लोग अपने खुद के जीवन में ईश्वर की पूर्णता से साक्षात्कार करने की इच्छा और प्रार्थना करके अपनी परिस्थितियों व शरीर में सृजनात्मक ढाँचे डाल लेते हैं। यह प्रक्रिया प्रार्थना का सहज बोध या स्वाभाविक तरीक़ा है। श्रद्धालु व्यक्ति सही सोचता है और उत्पन्न होने वाले अच्छे आवेगों के अनुरूप काम करता है। (डॉ. जोसेफ मर्फी)

जेएनयू में शोध-दवा से नहीं, भजन-कीर्तन से भागेगा तनाव

अब तक आपने अवसाद या तनाव के मरीजों को दवाइयां लेते या अच्छे मनोचिकित्सकों को दिखाते देखा होगा। हालांकि कई लोग काफी लंबे उपचार के बाद तनाव से निकलने में कामयाब हो जाते हैं, लेकिन कई लोगों को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जेएनयू के एक शोध में दावा किया गया है कि ऐसे मरीजों का इलाज दवाइयों में नहीं, बल्कि भजन-कीर्तन में छिपा है। शोध में कहा गया है कि मरीज को नियमित रूप से धार्मिक कार्यक्रमों में भाग लेने से फायदा मिलता है।

दवाएं बिगाड़ रही है हालात

दरअसल जेएनयू के सेंटर फॉर संस्कृत के शोध में दावा किया गया है कि

बच्चों को दिए गए संस्कार और भजन-कीर्तन डिप्रेशन सहित दिमागी विकारों को दूर करने में मददगार साबित हो सकते हैं। रिपोर्ट में कहा गया कि है कि ये विकल्प दवाइयों से बेहतर है, क्योंकि मनोचिकित्सा और दवाएं मरीजों को हालत में बजाए सुधार की खराबी ला रही है। रिपोर्ट में दावा किया गया है कि छोटी उम्र से ही भजन-कीर्तन सुनना स्ट्रेस बस्टर के रूप में काम करेगा।

यह अपनी तरह का किया गया पहला शोध है। भागवत पुराण और अग्नि पुराण पर आधारित इस शोध में सामने आया कि शुरुआती अवस्था में सिखाए गए नैतिक मूल्यों से चिंता, तनाव, अवसाद या अन्य मानसिक समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ेगा। **सुधीर कुमार आर्य,** प्राफेसर वैदिक शास्त्र, जेएनयू

योग से भी बड़ा लाभ

शोध के मुताबिक योग भी इस समस्या से जूझने में काफी मददगार साबित होता है। वहीं तनाव का दूसरा एक कारण यह है कि न्यूक्लियर फैमिली और फैमिली में एक ही बच्चा होने जैसी अवधारणाएं भी युवाओं में ऐसे मनोरोग की ओर धकेल रही है। ऐसे बीमारियों में इस्तेमाल की जाने वाली दवाई केवल शारीरिक समस्याओं का इलाज कर सकते हैं लेकिन मानसिक समस्याओं का नहीं। शोध करने वाली छात्रा नंदिनी दास का कहना है कि हाईपरटेंशन, टेंशन व डिप्रेशन जैसे बीमारियां हमें आधुनिक तौर पर जरूर देखने को मिलती है, लेकिन इन बीमारियों का जिक्र हमारे पुराणों और वेदों तक में मिलता है।

इंसान का दिमाग
ताकत और जटिलता का रहस्यलोक

ब्रह्माड में एक से बढ़कर एक जटिल मशीनरियां हैं, एक से एक सिद्धांत है, लेकिन इंसान के दिमाग के सामने ये सब कुछ भी नहीं है। इसांन का दिमाग धरती गृह पर न सिर्फ सबसे जटिल चीज है बल्कि यह सबसे शक्तिशाली भी है। इंसान की दिमाग की ताकत का अंदाज इसे बात से लगा सकते हैं कि इसमें हर रोज 70,000 से ज्यादा नये विचार आते है, ये अलग बात है कि बड़ा से बड़ा जीनियस भी अपने दिमाग का 10 फीसदी ही इस्तेमाल कर पाता है। 90 फीसदी दिमाग तो बड़े-बड़े

जीनियसों का भी बिना इस्तेमाल किये जा रह जाता है तो सोचिए आम लोगों का क्या होता होगा।

वैज्ञानिकों का मानना है : आम लोग आमतौर पर पूरी जिंदगी में अपने दिमाग का दो से ढाई फीसदी ही इस्तेमाल करते हैं। हमारा मस्तिष्क शरीर के कुल ऑक्सीजन और खून का 20 फीसदी अकेले इस्तेमाल करता है। इंसान की दिमागी क्षमता का इस बात से भी अंदाजा लगता है कि हमारा मस्तिष्क 30 लाख घंटे की किसी वीडियो को भी न सिर्फ याद रख सकता है बल्कि डेढ़ से पांच सेकेंड के भीतर उसका एक रिव्यू इमेज भी बना लेता है। इंसान अपने शुरूआती जीवन के तीन साल की घटनाओं को याद नहीं रख पाता है, क्योंकि उस समय तक इंसानी दिमाग का अग्र भाग यानी हिप्पोकैंपस भाग पूरी तरह से विकसित नहीं होता हैं।

तीन साल के बाद इंसान अगर चाहे जो जिंदगी की हर एक बात को याद रखा सकता है। हां, उसे अपनी क्षमता का व्यवस्थित इस्तेमाल करना सीखना पड़ेगा।

दिमाग की जटिलता और विशिष्टता : इस बात से भी जानी जा सकती है कि हमारे मस्तिष्क में 100 अरब न्यूरान होते हैं। इंसानी दिमाग की एक खासियत यह भी है कि अगर सर्जरी के द्वारा हमारे दिमाग का आधा हिस्सा भी निकाल दिया जावे तो भी हमारी स्मरण शक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। हमारे मस्तिष्क में तकरीबन 25 लाख गीगाबाइट डाटा स्टोर करने की क्षमता होती है। इतना डाटा होने के बावजूद हमारा दिमाग इस पूरे डाटा को एक सेकेंड से भी कम समय में प्रोसेस कर सकते है, जबकि इतने कम समय में इतने डाटा को प्रोसेस करने की दुनिया की सबसे ताकतवर कंप्युटर से भी कल्पना नहीं की जा सकती।

तकनीक की यात्रा : मानव मस्तिष्क एक सेकेंड में जितना डाटा प्रोसेस करता है, उतने डाटा को प्रोसेस करने के लिए दुनिया के सबसे ताकतवर सुपर कंम्प्यूटर को 40 मिनट का समय लगता है। इसीलिए तकनीक की यात्रा आज भी दिमाग के मुकाबले शुरुआती स्तर की ही है। एक इंसान को अपने मस्तिष्क में किसी इमेज को प्रोसेस करने में महज 13 मिली सेकेंड का समय लगता है। हमारा दिमाग सूचनाओं का आदान प्रदान इतनी तेजी से करता है कि तेज से तेज फार्मूला रेसिंग कार उसका मुकाबला नहीं कर सकती। हालांकि इतना ताकतवर होने के बावजूद

अगर 5 से 6 मिनट तक इंसान के दिमाग को ऑक्सीजन नहीं मिलती तो वह मर जाता है।

सच्चाई जान लेनी चाहिए : हमें लगता है कि हम दिनभर जितने फैसले लेते हैं उन सबका निर्णय हमारा दिमाग लेता है, जबकि ऐसा नहीं है। हमारे 24 घंटे के 95 फीसदी से ज्यादा फैसले हमारा दिमाग नहीं बल्कि हमारा अवचेतन मन करता है। इंसान ही पूरी जिंदगी में एक डेढ़ फीसदी फैसले ही दिमाग से किये होते हैं। एक खाते पीते स्वस्थ आदमी के दिमाग का वजन लगभग 14 किलोग्राम होता है। हालांकि अगर दिमाग के वजन के हिसाब से देखें तो दुनिया में सबसे बड़ा दिमाग स्पर्म व्हेल का होता है, जो करीब 9 किलोग्राम का होता है।

परमात्मा से की जाने वाली निष्कलुष वार्ता है प्रार्थना

ईश्वर प्रार्थना से विरत कोई भी धर्म और देश नहीं है। सभी देशों और धर्मों में प्रार्थना व्यक्तिगत और सामूहिक, दोनों रूपों में की जाती रही है। प्रार्थना का महत्त्व क्या है और इससे लाभ क्या है? उत्तर है यह अभ्यतरिक समृद्धि, शक्ति और शांति का परम उपाय है। प्रार्थना की अपरिमित शक्ति को कोई इसे करके ही जान सकता है। प्रार्थना स्वयं सुख स्वरूप है और सुख प्रदत्त करती है।

मिलती है मन को शांति और धैय को मजबूती

प्रार्थना में एकाग्रता, विनम्रता और आत्यंतिक निष्ठा आवश्यक है। यह व्यक्ति के जीवन में चमत्कारिक परिवर्तन उपस्थित कर देती है। सौभ्यता और सौजन्यशीलता तो प्रार्थना का ही फल है। जिसके जीवन में प्रार्थना है, समझो-वह सभी चिन्ताओं से मुक्त है। प्रार्थना से व्यक्ति के भीतर एक चमत्कारिक ज्योति का आविर्भाव होता है, वह ज्योति हमारे भीतर के कषायों को बहुत आहिस्ता से जला डालती है। प्रार्थना से जुड़ने के उपरांत व्यक्ति स्वार्थवृत्ति और तुच्छ वासनाओं से ऊपर उठने लगता है। देहिक, दैविक और भौतिक पीड़ाओं में भी यह मन को प्रशान्त रखने और धैर्य को मजबूती प्रदान करती है। यदि सीधे शब्दों में पूछा जाएं कि प्रार्थना है क्या? तो सहज उत्तर होगा, 'सच्चे और शुद्ध हृदय की करुण पुकार।'यह सब अवरोधों को उलांघ कर परमात्मा तक पहुंचती है। इष्ट का स्वरूप कैसा ही हो, भले ही हम किसी भी

धर्म, सम्प्रदाय, पंथ से जुड़े हुए हैं, पर हमारी प्रार्थना स्वीकार उस अनन्त शक्ति, अनन्त रूपा उस विराट के पास ही होती है

अंतर्मन की पुकार

सकर्म विपाक, जिसे हम प्रारब्ध कहते हैं। प्रारब्ध रूप में जब कर्म फल भोगना ही भोगना है तो प्रार्थना का उसमें कैसा दखल? यहां समझना चाहिए, प्रार्थना से कर्म-फल की तीक्ष्णता मिटती है। जेलों में अपराधी के आचरण को देखकर, उसके सद्व्यवहार निर्मलता शुद्धता के कारण दंड अवधि कम हो सकती है। परम प्रभु तो वैसे भी बड़े दयालु हैं। उन्हें किसी के कष्टों को काटने में कैसा संकोच ? भगवद् प्रीति के बिना प्रार्थना जन्म नहीं लेती। प्रीति से भक्ति बढ़ती है और भक्त की अंतर्मन पुकार ही प्रार्थना है। प्रार्थना दो प्रकार के व्यक्ति करते हैं। एक मनमौजी, त्यागी,शरणागत भक्त और दूसरा कतिपय चाह रखने वाला। स्वीकार दोनों होती है, पर यह दूसरा प्रकार एकागी और तुच्छ है। प्रार्थना, प्रार्थी के भीतर अवस्थित सभी क्षुद्रताओं और निर्बलताओं को समाप्त कर उसे स्वच्छ बनाती है।

ईश्वर से सामीप्यता का मार्ग

वैदिक प्रार्थनाओं को 'हमारे वाङमय में बड़ा महत्त्व दिया गया है। किंतु ध्रुव, प्रहलाद, राजा शिवि, रन्तिदेव तथा वृत्रासुर की प्रार्थनाएं भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। बालक ध्रुव तो अपनी भक्ति का सूत्रपात ही प्रार्थना से करते हैं। वे भगवान से विनय करते हैं, 'हे अनंत परमात्मन, मुझे आप उन निर्मल-हृदय महात्मा भक्तों का संग दीजिए जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्ति भाव है, उनके संग में मैं आपके गुणों तथा लीलाओं की कथा-सुधा का पान करके उन्मत हो जाऊंगा और सहज ही विविध भांति के दुखों से पूर्ण भयंकर संसार सागर के उस पार पहुंच जाऊंगा। यह जीव षोड़श कलाओं से आवृत है, इसलिए 'कलि संतरण उपनिषद्' की यह सोलह नाम वाली 'हरे राम, हरे राम, राम-राम, हरे-हरे, हरे कृष्ण-हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे' प्रार्थना के जैसी, श्रेष्ठ प्रार्थना तो कहीं है ही नहीं। परमात्मन स्वरूप में तदात्मय के लिए प्रार्थना को भगवद विनय, हाथ में आया दुर्लभ अवसर बताया है।

प्रार्थना, प्रार्थी के भीतर अवस्थित सभी क्षुद्रताओं और निर्बलताओं को समाप्त

कर उसे स्वच्छ, निर्दोष और निर्बल बनाती है। यह व्यक्ति की 'अहंता' को भी जड़-मूल से हटाती है।

प्रार्थना का उद्देश्य है-

'तस्मिन प्रीतिः।' यानी जिससे हम प्रीति रख रहे हैं, वह हमारे दोषों को नष्ट कर देते हैं। यह पाप दूर करने की महौषधि भी है। प्रार्थना कोई सुख-याचना नहीं है, इसका प्रतिफल सुख-आनन्द ही है।

धार्मिक ग्रंथों और पुराणों में कहा गया है कि प्रार्थना की नहीं जाती स्वतः होती है। यह परम कृपालु परमात्मा से की जाने वाली निष्कलुष वार्ता है।

क्या हो आदर्श रूप ?

हमें किसी ने सिखाया, प्रतिदिन प्रार्थना करें। हम रटे हुए मंत्र, स्तुति, स्तोत्र के द्वारा नैमितिक कर्म करने जैसे भाव से इसे एक निश्चित अवधि में सम्पन्न करते हैं। यंत्रवत् की जाने वाली प्रार्थना आदर्श प्रार्थना तो नहीं हो सकती। रोम-रोम में पुलक उत्पन्न करने वाली प्रार्थना निर्द्वन्द्व और अनेक प्रकार के विक्षेपों से परे होती है, उसमें शरीर, मन, वाणी तीनों का एक्य रहता है। प्रार्थना, परमात्मा से बहुत कुछ क्षमा करवा लेने का सुगम उपाय भी है। जो प्रभु-पत्र, पुष्प, फल से प्रसन्न हो जाते हैं, वे स्मरण, वंदन से क्यों न होंगे? कहा गया है भाव-कुभाव कैसा भी क्यों न हो। प्रभु की प्रार्थना करें। उनके कान तक वह भनक अवश्य पहुंचेगी। सारा संकल्पित कलत्र-वित्त, ऐश्वर्य शरीर के रहने तक ही है, फिर वस्तुएं कहां, आप कहां ? क्षणभंगुर शरीर का आत्मा से वास्तविक सम्बंध है ही नहीं। स्थिर सम्बंध तो एक परमात्मा से ही संभव है, प्रार्थना में रहें। इसे अपना सर्वोच्च भाव बनाएं।

जैन धर्म का परम अकर्त्तावाद

[I] भगवान् की पूजादि का फल भगवान् को नहीं पूजक को मिलता

[II] भगवान् की निन्दादि का फल भगवान् को नहीं निन्दक को मिलता

(चाल :- आत्मशक्ति.....)

भगवान् की पूजा-प्रार्थना-आरती-वन्दना या निन्दादि करना।
भगवान् को इससे न होता हानि-लाभ क्योंकि वे होते है शुद्ध-बुद्ध।।1।।

राग द्वेष मोह काम क्रोध मद भय व ईर्ष्या तृष्ण से शून्य भगवान्।
अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि अनन्त गुणों से पूर्ण भगवान्।2।

अनन्त समता-निस्पृहता-शान्ति-तृप्ति-निर्भयता से युक्त भगवान्।
जन्म-मरण व क्षुधातृषा-राग-वैर-विरोध से मुक्त भगवान्।3।

अतएव वे भक्त या निन्दक प्रति न करते हैं रागद्वेष मोह।
आकाश सम निष्कम्प व निर्मल रहते, क्योंकि भगवान हैं सच्चिदानन्द।4।

यथा आकाश अग्नि से भी नहीं जलता जल से भी न बनता शीतल
तथाहि भगवान् भक्त से न होते प्रसन्न, निन्दक से न होते क्रोधीत।5।

तथापि जो भगवान् की भक्ति से पूजादि करते उन्हें बन्धता पूण्य कर्म।
जिससे भक्त को लौकिक सूख से लेकर, मिलता है भगवत् स्वरूप।6।
इससे विपरीत निन्दक को, पापबन्धता जिससे मिले इहपरलोक दुःख।
''यथा बोओगे तथा पाओगे'' यह है कार्यकरण सिद्धान्त।।7।।

यथा दीपक से आरती करने से न होता सूर्य उससे प्रकाशित।
किन्तु, आरती करने वाला उस दीपक से होता है प्रकाशित।8।

तथाहि ज्ञानादि सूर्य समान भगवान् को, अन्य की न चाहिए सहायता।
किन्तु जो ज्ञानादि सूर्य की पूजादि करते, वे ही होते है लाभान्वित।9।

दीपक से यथा दीपक जले चुम्बक से लोहा बने यथा चुम्बक।
तथाहि पूजादि से भक्त बने भगवान् ''क्योंकि'' वन्दे तद्गुणलब्धये''।10।

भक्त से भगवान् बनने हेतु होती भक्ति न कि भक्ति से भीखारी
गुण स्मरण-गुण कीर्तन, गुणानुकरण ही यथार्थ से होती है भक्ति ।11।

यह है जैन धर्म का परम आध्यात्मिक सिद्धान्त व कर्म-सिद्धान्त।
परम-ईश्वर-अकर्त्तावाद व स्वकर्त्ता-भोक्ता स्वयं होते हैं हर जीव।12।

इससे जीव बनते है स्वतंत्र-स्वावलम्बी तथाहि स्व अनुशासीत।
ऐसे परम सिद्धान्त अनुकरण द्वारा 'सूरी कनक' का लक्ष्य बनना भगवन्त।13।

सागवाड़ा-31.3.2018 रात्रि 8.46

संदर्भ- उच्चै र्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्ते सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्ति स्तपोनिधिषु।(115)

तपस्वियों को प्रणाम करने से उच्चगोत्र, दानादिक देने से भोग, सेवा से पूजा-प्रभावना, भक्ति-अर्थात् गुणानुराग से उत्पन्न श्रद्धा विशेष से सुन्दर रूप, तथा आप ज्ञान के सागर है'' इत्यादि स्तुति करने से कीर्ति प्राप्त होती है।

यदि छठे-सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनियों का नमस्कार आदि करने से उपयुक्त फल प्राप्त होता है तब क्या तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहंत भगवान् तथा नव देवताओं की पूजा अर्चना, भक्ति, आदर, सत्कार, नमस्कार, आरती आदि करने से उभय लोक सुखदायक फल की प्राप्ति नहीं होगी ? निश्चय से होगी ही इसीलिये किंचित् प्रासंगिक सावद्य भय से उभय लोक सुखदायक दान-पूजादिक का त्याग नहीं करना चाहिये। यह मत केवल मेरा ही नहीं है यह अभिप्राय स्वामी समन्तभद्र, जयधवला, धवलाकार आचार्य वीरसेन से लेकर सभी पूर्वाचार्यों के है जिसका वर्णन इसी पुस्तक में यत्र तत्र सर्वत्र आपको देखने मिलेगा तो भी संक्षिप्तःसमन्तभद्र स्वामी की एक कारिका उद्धृत कर रहा हूँ यथा-

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीत शिवाम्बु राशो।।

हे जिनेन्द्र भगवान् ! आप ही निर्दोष होने के कारण पूज्य हैं। आपकी पूजा करने वाले को लेश मात्र पाप संचय होता है एवं विपुल मात्रा में पुण्य संचय होता है इसीलिए आपकी पूजा दोष कारक नहीं है। जैसे शीतल अगाध समुद्र की जल राशि में एक कण विष डालने से वह विष-कण विपुल जल राशि को दुषित नहीं बन सकता है उसी प्रकार इहलोक-परलोक, अभ्युदय एवं मोक्ष सुख को देने वाली पूजा से यत्किंचित् पाप होते हैं। किन्तु वह दोषकारक नहीं है।

परिणाममेव कारण माहुःखलु पुण्यपापयोःप्राज्ञाः।
तस्मात् पापापचयःपुण्योपचयश्च सुविधेयः।

पुण्य एवं पाप के लिए प्राज्ञ व्यक्तियों ने परिणाम (भाव) को ही कारण कहा है। इसीलिए पाप का अपचय (विनाश) करना एवं पुण्य का संचय करना सहज है।

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्कइ तं च सद्दहणं।
केवलि जिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मतं।। (22)
(दंसण पाहुड)

जितना करने की सामर्थ्य हो उतना करना चाहिए, जितना करने की सामर्थ्य नहीं है उसमें श्रद्धान करना चाहिए। केवली जिनेन्द्रों ने कहा हैं, श्रद्धान करने वालों को सम्यक्त्व होता है।

पूजा -फल-

अरहंतादि पंचपरमेष्ठी या नव-देवता यथायोग्य राग-द्वेष से रहित होने के कारण वे पूजा आदि से प्रसन्न होकर वर प्रदान नहीं करते हैं तथा निंदा अवमानना आदि से अभिशाप नहीं देते हैं। तब स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यदि वे प्रसन्न होकर या रूष्ट होकर हमारा कुछ लाभ-हानि नहीं करते हैं तो उनकी अर्चना से क्या लाभ है? इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर समन्तभद्र स्वामी के वचन में निम्न प्रकार है :-

न पूजयार्थस्त्वयि वीतराग न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्य गुण स्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः।57।

हे जिनेन्द्र भगवान! आप वीतरागी होने के कारण आपको पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है तथा निंदा करने वालों से आपका किसी प्रकार का वैरत्व नहीं हैं तथापि आपके पुण्य श्लोक, गुणों के स्मरण मात्र से चित्त पवित्र हो जाता है एवं पाप रूपी कलंक दूर हो जाते हैं।

परिणत दशा में बाह्य शुभाशुभ द्रव्यों का परिणाम जीवों पर भी शुभाशुभ रूप से पड़ता है जैसे स्वच्छ स्फटिक मणि विभिन्न रंग की संगति से विभिन्न रूप से परिणत करता है, जैसे लौह खण्ड चुम्बक के घर्षण से चुम्बक रूप परिणमन कर लेता है, बुझा हुआ दीप प्रज्वलित दीपक की संगति से प्रज्ज्वलित हो जाता है, वीर पुरुषों के

फोटों देखने से उनकी जीवनगाथा सुनने से, स्मरण करने से अंतरंग में वीरत्व भाव जागृत होता है, कामी पुरुष द्वारा अश्लिल चित्र, संगीत, सिनेमा, नाटक देखने से तथा तद्विषयक पुस्तक पढ़ने से, स्मरण करने से उसके मन में काम चेतना जागृत होती है। महापुरुष, धर्मात्मा पुरुष, वीतराग पुरूष की मूर्ति देखने से, उनके गुणगान करने से, उनकी स्तुति करने से, मन में भी उनके आदर्श गुण जागृत हो जाते हैं। यह ही मनोवैज्ञानिक अनुभवगम्य सिद्धान्त पूजा-अर्चना-स्तुति में निहित है। पूज्य पुरुष पूजक के लिए आदर्श(दर्पण) के समान होते हैं। जैसे-स्वमुख को देखने की इच्छा रखने वाला स्वच्छ दर्पण को देखता है उसी प्रकार स्वात्मा गुणों को देखने के इच्छुक आदर्श पुरुष का दर्शन करता है।

प्रार्थना चिकित्सा का अभ्यास

सच्चे आध्यात्मिक उपचार में गंभीर मनन और ध्यान की ज़रुरत होती है। आध्यात्मिक उपचार और आस्था उपचार में फ़र्क़ होता है। आस्था उपचारक वह होता है, जो संलग्न शक्तियों की वैज्ञानिक समझ के बिना इलाज करता है। वह दावा कर सकता है कि उसके पास उपचार की विशेष प्रतिभा है और उसमें या उसकी शक्तियों में अंधे विश्वास से रोगी को परिणाम मिल सकते हैं। आध्यात्मिक चिकित्सा मन के चेतन और अवचेतन स्तरों का समकालिक, सामंजस्यपूर्ण और बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य है, जिसे एक निश्चित उद्देश्य से किया जाता है। आध्यात्मिक चिकित्सक को यह पता होना चाहिए कि वह क्या कर रहा है और क्यों कर रहा है। वह उपचार के नियम पर विश्वास करता है। दक्षिण अफ्रीका में वूडू तांत्रिक मंत्रों से उपचार कर सकता है या संतों की तथाकथित अस्थियों को छूने से या किसी दूसरी चीज़ से किसी व्यक्ति का उपचार हो सकता है, शर्त सिर्फ़ यह है कि रोगी को विधि या प्रक्रिया में पक्का विश्वास हो।

एक उपचारक सिद्धांत

आजकल आध्यात्मिक उपचार के बारे में पूरे संसार में व्यापक रुचि उत्पन्न हो रही है। लोग धीरे-धीरे अवचेतन मन में वास करने वाली उपचारक शक्तियों के बारे में जागरूक हो रहे हैं। सच तो यह है कि उपचार की सभी विधियों से इलाज होता

है। कारण यह है कि एक ही सर्वव्यापी उपचारक सिद्धांत है, अवचेतन मन और उपचार की एक ही प्रक्रिया है जिसे आस्था कहा जाता है। इसीलिए पैरासेल्सस ने यह महान सत्य कहा थाः ''चाहे आपकी आस्था की वस्तु सच्ची हो या झूठी, आपको एक जैसे परिणाम मिलेंगे।''

यह एक स्थापित सत्य है कि जापान, भारत, यूरोप और अमेरिकी महाद्वीप सहित संसार के सभी धर्मस्थलों में इलाज हो चुके हैं। आपको कई अलग-अलग अवधारणाएँ मिलेगी, जिनमें से प्रत्येक इलाज के असंदिग्ध प्रमाण पेश करेगी। ज़ाहिर है, विचारक की दृष्टि से इन सभी में कोई निहित सिद्धांत साझा होना चाहिए। भौगोलिक स्थान कोई भी हो या किसी भी साधन का इस्तेमाल किया गया हो, केवल एक ही उपचारक सिद्धांत है और आस्था ही हर उपचार की प्रक्रिया है।

याद रखने वाली पहली चीज़ यह है कि आपके मन की प्रकृति द्वैत होती है। अवचेतन मन लगातार विचार की शक्ति से नियंत्रित होता है; यही नहीं, अवचेतन मन आपके शरीर को पूरी तरह नियंत्रित करता है। हम जानते हैं कि अस्थिचिकित्सा, काइरोप्रेक्टिक्स चिकित्सा और प्राकृतिक चिकित्सा के साथ-साथ कई चर्चों में भी उल्लेखनीय उपचार होते हैं लेकिन हमारा दावा है कि ये सभी उपचार अवचेतन मन के ज़रिये होते हैं और यही एक मात्र उपचारक शक्ति है।

अवचेतन मन और स्वास्थ्य

गौर करें कि अवचेतन मन दाढ़ी बनाने से आपके चेहरे पर हुए घाव को कैसे भरता है; यह सटीकता से जानता है कि यह काम कैसे करना है। डॉक्टर घाव पर पट्टी करता है और कहता है, ''प्रकृति इसे भरती है।'' प्रकृति का मतलब है नैसर्गिक नियम, अवचेतन मन का नियम। आत्म-बचाव का बोध प्रकृति का पहला नियम है; आपका सबसे प्रबल बोध सभी आत्म-सुझावों में सबसे ज़्यादा शक्तिशाली होता है।

शरीर उसी तरह काम करता है, जिस तरह इस पर काम किया जाता है

हम अच्छी तरह जानते हैं कि सम्मोहन के दौरान सुझाव देकर किसी भी

व्यक्ति में लगभग किसी भी बीमारी के लक्षण उत्पन्न किए जा सकते हैं। आपकी सहज प्रवृत्तियों की अवहेलना करने वाले सुझाव के ज़रिये रोग आपके या किसी दूसरे के शरीर में कृत्रिम रूप से प्रेरित किया जा सकता है। यह पूरी तरह स्वाभाविक और स्पष्ट है कि सहज बोध के आत्मसुझाव के सामंजस्य वाले सुझावों में ज्यादा शक्ति होगी।

शरीर में रोग लाने के बजाय स्वास्थ्य को दोबारा लौटाना और क़ायम रखना ज्यादा आसान है। जो आस्था उपचार करती है, वह एक निश्चित मानसिक नज़रिया, सोचने का तरीक़ा, आंतरिक निश्चितता, सर्वश्रेष्ठ की अपेक्षा है।

आप मन में परिवर्तन लाने या नए मानसिक माहौल को प्रेरित करने के लिए किसी भी विधि, तकनीक या प्रक्रिया का इस्तेमाल करें, यह वैध है; परिणाम मिलेंगे। उपचार परिवर्तित मानसिक नज़रिये या मन के कायाकल्प के कारण होता है।

अंधविश्वास

जो भी विधि आपको डर और चिंता से दूर ले जाती है और आस्था व अपेक्षा की ओर ले जाती है, उससे उपचार हो जाएगा। सच्चा वैज्ञानिक, मानसिक उपचार चेतन और अवचेतन मन के सम्मिलित कार्य से किया जाता है, जिसे वैज्ञानिक रूप से निर्देशित किया जाए। बहुत से लोग हैं, जो दावा करते हैं कि चूँकि उनका विचार परिणाम देता है, इसलिए यही सही विचार है। जैसा इस अध्याय में बताया गया है, यह सच नहीं हो सकता।

आप जानते हैं कि उपचार कई प्रकार से किया जाता है। मेस्मर और अन्य ने यह दावा करके उपचार किया कि वे शरीर में एक ख़ास चुंबकीय द्रव भेज रहे हैं। बाक़ी लोगों ने आकर कहा कि यह बकवास है और उपचार सुझाव की वजह से हुआ था। यदि आप विश्वास करते हैं कि संतों की अस्थियाँ इलाज कर देंगी, या अगर आप किसी ख़ास जगह के पानी की उपचारक शक्ति में विश्वास करते हैं, तो आपके अपने अवचेतन मन को दिए शक्तिशाली सुझाव की वजह से परिणाम मिलेंगे यही अवचेतन मन ही तो है, जो उपचार करता है। ओझा भी अपने मंत्रों में आस्था द्वारा ही इलाज करता है।

सभी समूह, मनोविश्लेषक, मनोवैज्ञानिक, अस्थि-चिकित्सक, चिकित्सक और चर्च एक ही सर्वव्यापी उपचारक शक्ति का इस्तेमाल करते हैं, जो अवचेतन मन में वास करती है। हर कोई दावा कर सकता है कि उपचार इसके सिद्धांत की वजह से हुए। हर उपचार की प्रक्रिया एक निश्चित, सकारात्मक, मानसिक नज़रिया है, एक आंतरिक निश्चितता या सोचने का तरीक़ा है, जिसे आस्था कहते हैं। उपचार विश्वास भरी आशा के कारण होता है, जो अवचेतन मन को शक्तिशाली सुझाव देती है और इसकी उपचारक शक्ति को मुक्त करती है।

एक व्यक्ति किसी दूसरे से अलग शक्ति से उपचार नहीं करता है। यह सच है कि संभवतः उसका सिद्धांत और विधि सबसे अलग या अनूठी हो। मगर यह जान लें कि केवल एक ही उपचारक शक्ति है, आपका अवचेतन मन। अपने पसंद के सिद्धांत और विधि को चुन लें। आप आश्वस्त रह सकते हैं कि अगर आपको विश्वास है, तो आपको परिणाम अवश्य मिलेंगे।

रेडलैंडस युनिवर्सिटी में प्रार्थना चिकित्सा

लॉस एंजेलिस एग्ज़ामिनर में जॉन मैकडॉवेल ने रेडलैंड्स युनिवर्सिटी में प्रार्थना चिकित्सा संबंधी परीक्षणों का वर्णन किया। लेख का शीर्षक था, ''मनोदैहिक परीक्षण प्रार्थना की शक्ति उजागर करते हैं।'' इसमें उन्होंने यह लिखाः

क्लीनिक के 37 वर्षीय निदेशक डॉ. विलियम आर.पार्कर ने आज पहली बार उजागर किया कि बीस रोगियों के समूह पर प्रार्थना चिकित्सा के शुरुआती परिणाम सकारात्मक रहे हैं। इनमें आर्थ्रइटिस, टी.बी. अल्सर और बोलने में परेशानी महसूस करने वाले रोगी शामिल हैं।

डॉ. पार्कर ने कहा, ''ये रोगी, जो युनिवर्सिटी क्लीनिक के नियमित समूह मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के अलावा प्रार्थना चिकित्सा का अभ्यास करने के लिए सहमत हुए, क्लीनिक के नियमित रोगियों के मुक़ाबले ज्यादा प्रगति कर रहे हैं।''

मिसाल के तौर पर : पेट में अल्सर वाले एक रोगी ने पूरी तरह से प्रार्थना व समूह चिकित्सा का सहारा लिया और उसने बताया कि पिछले तीन सप्ताह से उसकी बीमारी के सभी लक्षण ग़ायब हो गए हैं।

एक रेडलैंडस युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर काफ़ी लंबे समय से बुरी तहर हकलाते थे। बरसों तक कई तरह के इलाज कराने के बाद भी उनकी समस्या ठीक नहीं हुई थी। छह महीने की प्रार्थना चिकित्सा के बाद अब उनकी हकलाने की समस्या पूरी तरह ठीक हो चुकी है।

एक और शिक्षक को टी.बी. की वजह से एक साल पहले मजबूरन सेवानिवृत्ति लेनी पड़ी थी, लेकिन अब वे पूरी तरह ठीक हो चुके हैं और दोबारा पढ़ाने लगे हैं।

डॉ. पार्कर ने कहा, ''इस आदमी के डॉक्टर - टी.बी. विशेषज्ञ- ने हाल ही में उसके बलगम की जाँच कराई। जाँच में टी.बी. का कोई नामोनिशान नहीं निकला। डॉक्टर को लगा कि कहीं कोई ग़लती हुई है। उसने तुरंत एक और जाँच कराई, लेकिन उसमें भी बीमारी का कोई लक्षण नहीं था।''

डॉ. पार्कर - जो चिकित्सा के नहीं, मनोविज्ञान के डॉक्टर है- ज़ोर देते हैं कि प्रार्थना चिकित्सा कोई ''नीमहकीम'' चमत्कारिक रामबाण दावा नहीं है, बल्कि प्रार्थना और अवचेतन मन पर इसके प्रभाव की वैज्ञानिक नीति है।

अब भी विकसित हो रही मनोदैहिक चिकित्सा की दृष्टि में अवचेतन मन मानव जाति के कई रोगों का स्रोत है जिनमें आथ्राटिस, अस्थमा, हे फीवर, मल्टिपल स्केलेरोसिस, टी.बी., अल्सर और हाई ब्लड प्रेशर शामिल हैं।

जिस मनोदैहिक सिद्धांत पर चिकित्सक समुदाय में गरमागरम विवाद चल रहा है, वह यह है कि ऐसे रोग अवचेतन में कार्यकारी विकृतियों के रूप में शुरू होते हैं और किसी ख़ास अंग के रोग में विकसित होते हैं, जिसे डॉक्टर कारण के बजाय लक्षणों पर हमला करके ठीक करते हैं।

डॉ. पार्कर के अनुसार प्रार्थना चिकित्सा अवचेतन में इन विकृतियों के कारणों पर हमला करने का मनोदैहिक प्रयास है।

''व्यक्तित्व की चार बुनियादी समस्याएँ अवचेतन मन में ग़लत होने वाली हर चीज़ की जड़ में है, '' डॉ. पार्कर ने कहा।

''ये हैं डर, नफरत, अपराधबोध और हीन भावना।''

रेडलैंड्स प्रार्थना-चिकित्सा के प्रयोग में ये बुनियादी समस्याएँ मानक मनोवैज्ञानिक

परीक्षणों में सामने लाई जाती है। ध्यान रहे कि इस प्रोजेक्ट में हिस्सा लेने वाले सभी रोगियों को मनोवैज्ञानिक परीक्षण करना होता है।

बाद में, रोगी सप्ताह में एक बार अपनी समस्याओं पर बातचीत करने के लिए नब्बे मिनट के समूह सत्र में मिलते हैं। इन बैठकों में हर रोगी को एक सीलबंद लिफ़ाफ़ा दिया जाता है, जिसमें परीक्षण में मिले उसके व्यक्तित्व के एक हानिकारक पहलू की जानकारी होती है।

एक बार घर पहुँचने पर - रोगी लिफ़ाफ़े खोलते हैं, अपने व्यक्तित्व के एक नए, अवांछित पहलू की जानकारी हासिल करते हैं और अगली समूह बैठक तक हर दिन प्रार्थना करके उस ख़ास मुश्किल को सुलझा लेते हैं।

केवल एक ही ''अनिवार्यता'' है। हर रोगी को सोने से पहले हर रात नियम से प्रार्थना करना ज़रूरी है।

डॉ. पार्कर के अनुसार, ''हम उस समय प्रार्थना करने पर इसलिए ज़ोर देते हैं, क्योंकि सोने से पहले इंसान जो आख़िरी बात सोच रहा होता है, उसके अवचेतन तक पैठ करने की सबसे ज़्यादा संभावना होती है।''

डॉ. पार्कर, जिन्होंने सबसे पहले अपनी प्रार्थना अवधारणाओं को तीन साल पहले अल्सर की शरुआत में ख़ुद पर आज़माया था, कहते हैं कि ज़्यादातर रोगियों को यह सिखाना पड़ता है कि प्रार्थना कैसे करनी है।

क्लीनिक में प्रार्थना चिकित्सा के रोगियों को प्रार्थना करने, प्रेम पर ज़ोर देना, और ईश्वर व सृष्टि की ऊपर उठाने वाली अवधारणा के प्रति सकारात्मक नीति सिखाई जाती है।

''हमारी प्रार्थनाएँ स्वास्थ्य के लिए भीख माँगने के लिए नहीं हैं, बल्कि अस्वस्थ तत्त्व के उपचार के दृढ़ कथन हैं, जिन पर रोगी हमला करना चाहता है । ये कथन सकारात्मक, दोहराव वाले अंदाज़ में कहे जाते हैं, जो अंततः अवचेतन में घँस जाते हैं और उस व्यक्ति का हिस्सा बन जाते हैं।''

इस तरह से प्रार्थना के ज़रिये अवचेतन के भीतर के विनाशकारी पहलुओं पर हमला किया जा सकता है, अंततः उनसे उबरा जा सकता है, और इस तरह उनकी शारीरिक व्याधियों के बुनियादी कारणों को ख़त्म किया जा सकता है।

डॉ. पार्कर ने प्रेयर कैन युअर लाइफ नामक पुस्तक लिखी है, जो रेडलैंड्स युनिवर्सिटी में प्रार्थना चिकित्सा के उल्लेखनीय और अद्भुत परिणामों को बताती है। उन्होंने लॉस एंजेलिस के विलशायर एबेल थिएटर में मेरे साथ बेहद लोकप्रिय कथा व्याख्यान भी दिए हैं, जिनमें सभी धर्मों के विद्यार्थियों ने व्यापक रुचि ली। प्रार्थना चिकित्सा में हमारी एक विशेष कक्षा में तो 1,200 से ज़्यादा विद्यार्थी थे।

प्रार्थना चिकित्सा से उपचार कैसे करे

आम तरीक़ा यह है :

1. समस्या का अवलोकन करें।

2. फिर समाधान या उस तरीक़े की ओर मुड़ें, जिसे केवल अवचेतन मन जानता है।

3. गहरे विश्वास के अहसास में आराम से रहें कि उपचार हो चुका है।

अपने उपचार को यह कहकर कमज़ोर न करें, ''मुझे ऐसी आशा है!'' या ''यह बेहतर हो जाएगा।'' आपके शरीर की कोशिकीय संरचना विश्वास और ईमानदारी के साथ उस नक्शे का अनुसरण करेगी, जिसे आपका चेतन मन अवचेतन मन (जिसे कई बार व्यक्तिपरक या अनैच्छिक, मन भी कहा जाता है) के माध्यम से इस तक पहुँचाता है। जो काम होना है, उसके बारे में आपकी भावना ''बॉस'' है। जान लें कि स्वास्थ्य आपका है! सामंजस्य आपका है! अवचेतन मन की असीम उपचारक शक्ति के वाहन बनकर बुद्धिमान बनें। असफलता के कारण हैः विश्वास की कमी और बहुत ज़्यादा कोशिश। स्वास्थ्य का विचार अवचेतन मन की ओर विश्वास के बिंदु तक पहुँचाएँ, फिर तनावरहित हो जाएँ। मामले को अपने हाथों से छोड़ दें। स्थितियों और परिस्थितियों से कहें, ''यह भी गुज़र जाएगा।'' तनावरहित होकर आप अवचेतन मन पर छाप छोड़ते हैं और विचार के पीछे की गत्यात्मक ऊर्जा को सक्षम बनाते हैं कि यह कमान सँभाले और इसे साकार करे।

अवचेतन की प्रवृत्ति जीवन की ओर है

मनुष्य का शरीर उसके आंतरिक मन की क्रियाओं का चित्र होता है। हमारी सच्ची शक्तियाँ अवचेतन मन में वास करती हैं। कोई भी अवचेतन मन की सारी

क्रियाओं को नहीं जानता, क्योंकि इसका दायरा अनंत होता है। यह कैसे काम करता है, इस बारे में हम जितना सीख सकते हैं, उतना सीखते है, फिर हम इसका तदानुसार इस्तेमाल करते हैं। एक प्रज्ञा है, जो शरीर की परवाह कर लेगी, बशर्ते हम इसे अकेला छोड़ दें। चेतन मन हमेशा बाहरी दिखावों पर आधारित इसकी पाँच इंद्रियों के प्रमाणों के साथ हस्तक्षेप करता है, जो झूठे विश्वास, डर और राय के प्रभुत्व की ओर ले जाते हैं। जब डर, झूठे विश्वास और नकारात्मक ढाँचे मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक अनुकूलन के ज़रिये अवचेतन मन में दर्ज कर दिए जाते हैं, तो अवचेतन मन के पास कोई दूसरा रास्ता ही नहीं रह जाता; इसे तो दिए गए नक़्शे पर काम करना ही होता है।

आपके भीतर का व्यक्तिपरक स्वरूप लगातार सामान्य हित की ख़ातिर काम करता है और सभी चीज़ों के पीछे सामंजस्य के निहित सिद्धांत को दर्शाता है। एडिसन, कार्वर, आइंस्टाइन और ऐसे ही कई अन्य लोगों के कार्यों का अध्ययन करें, जिनके पास ज़्यादा शिक्षा तो नहीं थी, लेकिन जो यह ज़रूर जानते थे कि अवचेतन मन के अंतहीन ख़जाने का दोहन कैसे किया जाए। स्वयं में विश्वास रखें। अगर आप अनदेखी चीज़ों पर यक़ीन नहीं कर पाते हैं, तो आप बहुत दूर नहीं जा सकते। मैं प्रेम को नहीं देख पाता हूँ, लेकिन मैं इसे महसूस कर लेता हूँ। मैं सौंदर्य को नहीं देख पाता हूँ, लेकिन मैं इसकी अभिव्यक्तियों को देख लेता हूँ। हमारी सबसे बड़ी असफलता अवचेतन मन की शक्तियों में विश्वास की कमी है। अपनी आंतरिक शक्तियों को पहचान लें। सिद्धांततः यह जानने का क्या मतलब है कि आप आदर्श है, यदि आप इसे उजागर ही न कर पाएँ ? आत्म-साक्षात्कार तथा भावना ही उपचार की एकमात्र कुंजी है। अपने मन को जानें और यह भी जानें कि इसका कैसे इस्तेमाल करें।

आसानी से काम होता है!

एक मकान मालिक ने भट्टी की मरम्मत करने वाले मैकेनिक से इस बात पर बहस की कि वह बॉइलर ठीक करने के 200 डॉलर क्यों माँग रहा है। मैकेनिक ने कहा, ''गायब बोल्ट के तो मैंने सिर्फ़ पाँच ही सेंट लिए हैं, बाक़ी के 199.95 तो यह जानने के लिए हैं कि गड़बड़ क्या और कहाँ थी।''

इसी तरह, आपका अवचेतन मन निष्णात मैकेनिक है, जो सबसे समझदार है। यह आपके शरीर के किसी भी अंग के उपचार के तरीक़े और साधन जानता है। इसके अलावा, यह आपके हालात ठीक करने के तरीक़े व साधन भी जानता है। स्वास्थ्य का आदेश देंगे, तो अवचेतन मन आपको स्वस्थ कर देगा, लेकिन तनावरहित रहना ही असली कुंजी है। ''आसानी से काम होता है।'' विस्तृत विवरणों और साधनों की चिंता न करें, बस अंतिम परिणाम जान लें। अपनी समस्या के सुखद समाधान का अहसास करें, चाहे यह स्वास्थ्य हो या वित्त या रोजगार। याद करें कि गंभीर बीमारी से ठीक होने के बाद आपको कैसा महसूस हुआ था। यह ध्यान रखें कि भावना ही सारे अवचेतन प्रदर्शन की कसौटी है। आपके नए विचार को पूर्ण अवस्था में व्यक्तिपरक दृष्टि से महसूस होना चाहिए- भविष्य में नहीं - बल्कि अभी।

ईश्वर का साँचा अपनाना

नीचे आदर्श स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना दी गई है। मैं दक्षिण अफ्रीका के एक पादरी को जानता हूँ। जिसने इस प्रार्थना का इस्तेमाल करके खुद का इलाज कर लिया। दिन में कई बार वह धीरे-धीरे और शांति से दृढ़तापूर्वक कहता था, लेकिन इससे पहले वह यह सुनिश्चित कर लेता था कि वह मानसिक व शारीरिक दृष्टि से पूरी तरह तनावरहित है:

ईश्वर की पूर्णता अब मेरे ज़रिये व्यक्त हो रही है। स्वास्थ्य का विचार अब मेरे अवचेतन मन को भर रहा है। मेरे बारे में ईश्वर की जो छवि है, वह आदर्श छवि है और मेरा अवचेतन मन मेरे शरीर को ईश्वर के मन मे मौजूद आदर्श छवि की पूर्ण समानता में दोबारा बनाता है।

यह अपने अवचेतन मन तक आदर्श स्वास्थ्य का विचार पहुँचाने का एक सरल और आसान तरीक़ा है। आध्यात्मिक विचार ही प्रार्थना चिकित्सा या आध्यात्मिक उपचार में हमारा एकमात्र साधन है।

अवचेतन मन पर छाप छोड़ना

अवचेतन मन पर छाप छोड़ने का एक अद्भुत तरीका अनुशासित या वैज्ञानिक कल्पना का इस्तेमाल है। मन शरीर का निर्माता है और इसके सभी अत्यावश्यक

कार्यों को नियंत्रित करता है। मैंने कार्यकारी लक़वे के शिकार एक व्यक्ति को बताया कि वह इस बात की स्पष्ट तस्वीर देखे कि वह अपने ऑफ़िस में चल रहा है, डेस्क को छू रहा है, फ़ोन का जवाब दे रहा है और वे सारे काम कर रहा है, जो वह सामान्य तौर पर करता, यदि वह पूरी तरह ठीक होता। उसने उस भूमिका को निभाया और अपने आप को वह ऑफिस में दोबारा महसूस कर आया।

मैंने उसे बताया कि जब वह स्पष्टता से अपनी इच्छा पूरी होने की कल्पना करता है, तो वह अवचेतन मन को काम करने के लिए कोई निश्चित चीज़ दे रहा है। अवचेतन मन वह फ़िल्म है, जिस पर चित्र की छाप छोड़ी जाती है। अवचेतन मन चित्र को विकसित करता है और इसे अनुभव, परिस्थिति या घटना के रूप में वस्तु का रूप देता है। इस मानसिक चित्र के साथ मन के बहुधा अनुकूलन के कई सप्ताह बाद एक दिन पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार फ़ोन बजा और बजता रहा, जबकि उसकी पत्नी और नर्स बाहर गई थी। फ़ोन लगभग 12 फ़ुट दूर रखा था, लेकिन इसके बावजूद वह फ़ोन का जवाब देने में कामयाब हो गया। उसकी पत्नी उसी समय समझ गई कि वह ठीक हो गया है। उपचारक शक्ति उसके ध्यान के केंद्रबिंदु तक प्रवाहित हुई और इसके बाद उपचार हो गया।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें, तो मानसिक चित्र उसके मन के अंधकक्ष में विकसित हुआ और पूर्ण उपचार हो गया। इस आदमी को एक मानसिक अवरोध था, जो मस्तिष्क के आवेग पैरों तक पहुँचने से रोक रहा था, इसलिए उसके कहा कि वह चल नहीं सकता। जब उसने अपना ध्यान अपने भीतर की उपचारक शक्ति की ओर मोड़ा, तो शक्ति उसके केंद्रित ध्यान के ज़रिये प्रवाहित होने लगी, जिससे वह चलने में सक्षम हुआ। बाइबल कहती है : प्रार्थना में तुम विश्वासपूर्वक जो भी माँगोगे, वह तुम्हे मिल जाएगा। विश्वास करना किसी चीज़ को सच के रूप में स्वीकार करना या इसके होने की अवस्था में जीना है; जब आप इस मनोदशा को क़ायम रखते हैं, तो आप सफल प्रार्थना की ख़ुशी का अनुभव करेंगे!

पॉट्स डिसीज़ ठीक हो जाती है

मैंने नॉटिलस पत्रिका में एक लेख पढ़ा था। एक लड़के के पॉट्स डिसीज यानी रीढ़ की टी.बी. थी, लेकिन उसका उल्लेखनीय उपचार हो गया। फ्रेडरिक एलियास

एंड्रयूज नामक एक लड़का इंडियानापोलिस में रहता था, जो बाद में कंसास सिटी, मिसूरी में युनिटी स्कूल ऑफ़ क्रिश्चिएनिटी का पादरी भी बना। उसके डॉक्टर का कहना था कि यह लाइलाज बीमारी है, लेकिन फिर भी वह प्रार्थना करने लगा। पहले वह अपने हाथ और घुटनों के बल चलने वाला विकृत विकलांग था, लेकिन बाद में वह शक्तिशाली, सीधा और सुगठित व्यक्ति बन गया। उसने अपना खुद का दृढ़ कथन बनाया और उन गुणों पर मन ही मन विचार किया, जिनकी उसे आवश्यकता थी। उसने दिन में कई बार बारंबार यह दृढ़ कथन कहा : ''मैं पूर्ण, आदर्श, शक्तिशाली, सशक्त, प्रेमपूर्ण, सद्भावपूर्ण और खुश हूँ।

वह लगन से जुटा रहा और उसे कहा कि यह प्रार्थना रात को उसके होंठों पर आख़िर चीज़ रहती थी और सुबह पहली चीज़। उसने प्रेम और स्वास्थ्य के विचार बाहर भेजकर दूसरों के लिए भी प्रार्थना की। यह मानसिक नज़रिया और प्रार्थना का तरीक़ा कई गुना होकर उसकी ओर लौटा। आस्था और लगन से उसे बहुत लाभ हुआ। जब डर, क्रोध, ईर्ष्या या चिंता के विचार उसके मन में आते थे, तो वह अपने मन में अपना दृढ़ कथन चालू कर लेता था। उसके अवचेतन मन ने उसकी आदतन सोच की प्रकृति के अनुसार प्रतिक्रिया की। यही बाइबल में दिए कथन का अर्थ है : ''अपने रास्ते जाओ, तुम्हारी आस्था ने तुम्हें भला-चंगा कर दिया है।''

प्रार्थना कैसे काम करती है

आपमें से कई ने इस तरह की बातें अक्सर सुनी होंगी : मैं बहुत आहत हूँ, मैं किसी भी तरह इससे नहीं उबर सकता; मुझे तेज़ी से चोट पहुँचती है; यह आख़िर चारा है; मैं बाक़ी किसी भी चीज़ को माफ़ कर सकता हूँ,, लेकिन इसे नहीं।'' आपका खुद का विचार ही एकमात्र सृजनात्मक शक्ति है; इसलिए हम अपने खुद के विचारों यानी अपने ही मन की गतिविधि से आहत होते हैं। हर व्यक्ति के पास सकारात्मक या नकारात्मक तरीक़े से प्रतिक्रिया करने की शक्ति होती है। कोई दूसरा व्यक्ति जो कहता करता है, उससे आपको चोट नहीं पहुँचती है; चोट तो उस कही या की गई चीज़ पर आपकी प्रतिक्रिया से पहुँचती है। दूसरों के सुझाव और कथन हमारी परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं कर सकते, जब तक कि हम उन सुझावों को स्वीकार न कर लें और उन्हें मानसिक सहमति न दे दें; इस प्रतिक्रिया में आपके खुद के मन

की गतिविधि की ज़रुरत होती है, जो दरअसल एकमात्र सृजनात्मक साधन है। आप सृजनात्मक तरीक़े से सोच सकते हैं या आप नकारात्मक तरीके से सोच सकते हैं, जैसा भी आप चाहें। आप यह चुनने के लिए स्वतंत्र हैं कि आप कैसे सोचेंगे और प्रतिक्रिया करेंगे।

स्वयं को मनाऊँ बडे चाव से अन्य को न मनाऊँ क्लेश भाव से

- आचार्य कनकनन्दी

(चालः- छोटी छोटी गैया.....2 यमुना किनारे.....)

स्वयं को मनाऊँ मैं बडे चाव/(भाव) से,
अन्य को न मनाऊँ मैं क्लेश भाव से।
स्वयं को जानना-मानना व पाने से,
अनन्त सुखी बनूँगा न अन्य किसी से।। (1)

तीर्थंकर-केवली-गणधर-महात्मा,
स्वयं को मनाने बन गये परमात्मा।
अभव्य घोर मिथ्यात्वी को कोई न समझा पाते,
अनन्त बहुभाग ऐसे जीव ही होते।। (2)

आदिनाथ को भी मारिची न समझ पाया,
समवशरण से निकलकर मिथ्या मत चलाया
सुकरात से ले मीरा को विष पीलाया गया,
तीर्थंकर से बुद्ध तक का अपमान भी हुआ।। (3)

मैं भी स्वयं कों अनन्त काल से नहीं समझा,
अतएव अभी तक संसार में दुःखों को सहा,।
स्वयं को मैं अभी समझा रहा हूँ सतत,
अतएव अन्य को मनाने का नहीं है वक्त।। (4)

स्वप्रकाशी से अन्य भी होते स्वयं प्रकाशी,

तथाहि मैं बन रहा हुँ स्व-पर प्रकाशी।
अभी तक स्वयं पूर्ण प्रकाशी न बन पाया,
अतएव स्वप्रकाशी हेतु मैं सन्नद्ध हुआ।। (5)

स्वयं को समझाना यदि इतना कठिन,
अन्य को समझाना क्या होगा सरल,।
स्वयं को समझाना तो होता स्वावलम्बन,
अन्य को समझाना तो परावलम्बन ।। (6)

पवित्र भाव से पर हेतु बनूँ धर्म द्रव्य सम,
समझने वाले हेतु बनूँ निमित्त उदासीन।
अन्य का न कर्त्ता-धर्त्ता विधाता बनूँ
'कनक' स्व कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता बनूँ।। (7)

ऐसे दर्द का है आपके इंमोशन से गहरा नाता

जरूरी नहीं कि हमेशा लाइफ में सब आपके मन का हो। उतार-चढ़ाव जीवन का हिस्सा है। लेकिन कई बार आप सकारात्मक सोच से दूर नकारात्मक भावनाओं में हिचकोले खाने लगते हैं। सब कुछ अच्छा चल रहा हो और आप धीरे-धीरे किसी और दुनिया में पहुंच जाते हैं, जहां से निकलना आसान न हो। यही इमोशनल पेन कई दुख का कारण है। लेकिन यह इमोशनल पेन कई बार फिजिकल पेन का भी कारण बनता है।

सिर दर्द

सिर में बहुत तेज दर्द है तो यह आम संकेत है आपके बहुत ज्यादा तनाव में होने का। अच्छा होगा आप वो चीजें करना शुरू करें, तो आपको अच्छी लगती है। इससे बचने के लिए आप प्रकृति के बीच टहल सकते हैं, किताब पढ़ सकते हैं, पेटिंग, एक्सरसाइज जैसी एक्टिविटी तनाव दूर करने के लिए कर सकते हैं।

गर्दन दर्द

जब आप किन्हीं चीजों को छोड़ने या लोगों को माफ करने में परेशानी का

अनुभव कर रहे हों। यह अच्छा होगा कि आप समझें कि कोई भी परफेक्ट नहीं है और हर कोई ग़लती करता है। लोगों को प्यार की नजर से देखना शुरू करें।

कंधे का दर्द

कंधे का दर्द एक आम संकेत है कि आप किसी इमोशनल ब्लॉकेज से गुजर रहे हैं और अंदर से कुछ आपको परेशान कर रहा है और आप इसे नजरअंदाज कर रहे हों। आपको समस्या का असली कारण जानना चाहिए जो आपको परेशान कर रहा है।

पीठ हिस्से में दर्द

अगर आप पीठ के ऊपरी हिस्से में दर्द का अनुभव कर रहे हैं तो यह आमतौर पर इमोशनल सपोर्ट न मिल पाने के कारण है। इससे अकेलापन, खुद को अप्रिय या नाचीज महसूस कर रहे होंगे। ऐसे समय में आपको उन लोगों से जुड़ने की कोशिश करना चाहिए जो आपके करीबी हो।

पीठ के निचले हिस्से मे

अगर आपको अपनी आर्थिक स्थिति की चिंता है तो आप पीठ के निचले हिस्से में दर्द महसूस करेंगे। आर्थिक संकट या पैसों से जुड़ा मामला वास्तव में टची होता है, लेकिन आपको आपके फाइनेंस को कंट्रोल करना चाहिए।

कोहनी में दर्द

कोहनी का दर्द बताता है कि आपकी अपने जिंदगी के प्रति अधिक कठोर है और नियोजित तरीका अपनाते हैं। लेकिन इस तरह का दर्द संकेत है कि आप बदलाव के लिए तैयार नहीं है। अच्छा तो यह है कि आप जीवन में चीजों को बदलें।

हाथों में दर्द

हार्थ में दर्द संकेत हो सकता है कि आप जैसे लोगों से जुड़ना चाहते है वैसे जुड़ नहीं पा रहे हैं। बाहर जाना और नए लोगों से मिलना महत्वपूर्ण है। इसका मतलब नहीं कि पुराने दोस्तों को भूल, जाएं। वह जरूरी है कि पुराने रिश्तों को फिर से जिएं।

बाह्य विकल्प त्याग से अन्तरंग विकल्प त्याग

(निर्विकल्प)

यत्परै : प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ।। (19)

पद्यभावानुवाद :- (चाल :- आत्मशक्ति.....)

निर्विकल्प मेरा स्वरूप है, सुनना-सुनाना अतः दोनों से परे।
सुनना व सुनाना दोनों उन्मत्त चेष्टित है मैं तो इन दोनों से परे।

समीक्षा : अन्तरात्मा विचार करता है, मैं तो शुद्ध-बुद्ध-अमूर्तिक हूँ।
अतएव वार्तालाप मेरा नहीं है, स्वभाव क्योंकि मैं निर्विकल्प हूँ।। (2)

वार्तालाप में होता है विकल्प, विकल्प से होता है चित्त चंचल।
जिससे होता है कर्मबन्ध जिससे, मेरा स्वरूप न होता निर्मल (3)

शुद्ध रूप से मैं हूँ निर्विकल्प, राजा-प्रजा,छोटा-बड़ा से परे।
अपना-पराया गुरु-शिष्य परे, समस्त विभाव भाव-व्यवहार परे।। (4)

ऐसा लक्ष्यनिष्ठ होता अन्तरात्मा, जिससे उनमें आती समता।
जिससे वे ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि, परे बनना चाहते हैं परमात्मा ।। (5)

माईक-मंच व पाण्डाल होर्डिंग, विज्ञापने से ले T.V. प्रोग्राम ।
धन-जन-मान-भीड-प्रदर्शन, बोली आदि सभी का कैसे काम।। (6)

पास फटकने न दें उदासी को

लिखिए और स्वस्थ रहिए : लेखन ध्यान की तरह मस्तिष्क को स्थिरता प्रदान करता है। तनाव कम करता है। जिंदगी में मिठास कम, कड़वाहटें ज्यादा हैं मगर रिश्ते जिंदगी में अहम है। उनके बिना चल भी नहीं सकते। रिश्ते अक्सर तनाव का कारण बन जाते हैं। आप किसी से अच्छा व्यवहार करती है लेकिन फिर भी वो जाने किन कुंठाओं, गलतफहमियों या ईर्ष्या के कारण बेवजह आपको आहत करने पर तुला रहे तो आपकी नाराजगी जायज है लेकिन आप जानते हैं कि नाराजगी प्रकट

करने से बात और बिगड़ जाएगी।

ऐसे में आप क्या करें ? अपनी छटपटाहट, बैचेनी नफरत जैसी नकारात्मक फीलिंग्स से कैसे निजात पाएं ? सिंपल आप अपनी सारी कड़वाहट, शिकायतें, मलाल किसी कागज पर लिख डालें और पढ़कर तुरंत उसे नष्ट कर दें। यह फंडा आपको तुरंत राहत देगा। आप भार मुक्त महसूस करेंगे और कह उठेंगे व्हॉट ए ग्रेट रिलीफ।

अटैक द ऑफर : कई बार हम लोगों को शिकायत करते सुनते हैं कि लोग उनके सीधेपन का फायदा उठाते हैं। अक्सर होता यह है कि कई लोगों को दूसरों को नीचा दिखाने में बहुत आनंद आता है या बेवजह आलोचना करना भी कइयों का शगल होता है। अब ऐसे में कुछ निरीह प्राणी सफाई देते-देते थक जाते हैं। कंपलेन और एक्सप्लेन का यह गेम एक्सप्लेन करने वाले पर कुछ ज्यादा भारी पड़ने लग जाता है। एक उक्ति है आक्रमण सुरक्षा की सबसे बड़ी नीति है। आप इसे मॉडिफाइड वे में अपनाएं। आप आलोचना से त्रस्त होने, सफाई देने, डिफेंस मेकेनिज्म अपनाने के बजाय आलोचक से आलोचना की विवेचना करने को कहें। कारण बताओ नोटिस दें। निश्चय ही वह बगलें झांकने लगेगा। अब तक उसका हौसला इसलिए बुलंद था कि आप सुरक्षात्मक रवैय्या अपना रहे थे यानी कि वो आपके सीधेपन का फायदा उठा रहा था। आप भी जरा टेढ़े होकर देखें। सामने वाला लाइन पर आ जाएगा। अब आप के मन में भी न कोई दंश फलेगा, न कोई टीस आपको तकलीफ देगी।

आत्मा को जानने का संक्षिप्त उपाय

एवं व्यक्त्वा बहिर्वाचं त्येजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ।। (17)

पद्य भावानुवाद (चाल :- आत्मशक्ति)

बहिरंग-अन्तरंग जल्प क्षय से, स्वयं में ही होता जब चित्त लीन
स्वपरमात्मा का तब होता परिज्ञान, यह है संक्षेप उपाय आत्मज्ञान।।

समीक्षा -

अन्तरंग-बहिरंग जल्प से हो जाता है, चित्त रूपी जल चंचल।
जिससे आत्मज्ञान रूपी प्रतिबिम्ब, नहीं प्रगट होता है निश्चल/(निश्छल) ।। (1)

चित्त रूपी जल जब शान्त होता, अन्तरंग-बहिरंग जल्प क्षय से।
तब ही आत्मज्ञान रूपी प्रतिबिम्ब, स्पष्ट प्रगट होता है चित्त में ।। (2)।।

अस्थिर-मलीन-असमतल दर्पण में, न देखाई देता यथा सही प्रतिबिम्ब,
सुस्थिर-निर्मल-समतल दर्पण में, देखाई देता है यथा सही प्रतिबिम्ब ।। (3)

अस्थिर-मलीन-विषममय चित्त में, न देखाई देता तथा आत्मतत्त्व।
सुस्थिर-निर्मल-समतामय चित्त में, देखाई देता तथा आत्मतत्त्व ।। (4)

संदर्भ -

निश्चय से स्व-आत्मा ही स्व गुरु

नयव्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः।। (75)

पद्यभावानुवादः (चाल : आत्मशक्ति.....)

आत्मा ही स्वयं को ले जाता है, जन्म से लेकर निर्वाण तक।
अतएव आत्मा ही आत्मा का गुरु है, अन्य गुरु नहीं परमार्थतः।। (75)

समीक्षा :

व्यवहार से देवशास्त्र गुरु व, सु द्रव्यक्षेत्रकाल होते निमित्त।
किन्तु उपादान स्व आत्मा ही होता है, जन्म से पाता निर्वाण तक।।

दृढात्मबुद्धिर्देहादावत्पश्यन्नाशमात्मनः।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभे ति मरणाद्भृशम्।। (76)

पद्यभावानुवाद : (चालः आत्मशक्ति.....)

देहात्मबुद्धिवाला मरण समय में, होता है अतिभयभीत।
देहनाश से स्वनाश माने, मित्रादि वियोग से होता भयभीत।।

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रांतरग्रहम् ।। (77)

पद्यभावानुवाद : (चाल : आत्मशक्ति.....)

आत्मा को आत्मा मानने वाला, शरीर की नाना दशा से।
वस्त्र परिवर्तन समान मानकर, होता है निर्भय आत्म ज्ञान से।।

'सोहं' से 'अहं' बनने की साधना

(सोहं की दृढ भावना का फल आत्मा में स्थिरता व आत्मलाभ)

सोहमित्यात्त संस्कारस्तास्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढ़संस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम्।। 28

पद्य भावानुवाद -

जो परमात्मा वे ही 'मैं' हूँ, ऐसी दृढ, भावना करने से,।
आत्मा में स्थिरता आती है, दृढ संस्कार के वश से ।। (1)

समीक्षा

जो परमात्मा वे ही 'मै' हूँ, शुद्ध रूप मे 'मैं' परमात्मा।
ऐसे दृढ संस्कार के कारण, स्व-आत्मस्वरूप में आती स्थिरता।। (2)

श्रद्धा-प्रज्ञा से जब जानता अन्तरात्मा 'मैं' भी बनूगाँ परमात्मा।
पर्याय रूप में अभी ''मैं'' अन्तरात्मा साधना से बनूगाँ परमात्मा।। (3)

ऐसी भावना व साधना से जब अन्तरात्मा स्व में करता दृढ़ संस्कार
जिससे वह स्वयं में ही लीन(स्थिर) होकर, नाश करता है कर्म संस्कार

घाती कर्म के नाश से बनते अरिहंत अघाती नाश से बनते सिद्ध
'सोहं' के ध्यान से 'अहं' (मैं) बनते, ऐसा है 'सोहं' ध्यान का फल।। (5)

यथा जल ही शीतल होकर, बन जाता स्थिर-ठोस बर्फ।

यथा ईन्धन ही ताप व प्राणवायु, पाकर बन जाती स्वयं ही अनल(6)

भावना से भावी निर्माण होता, परमात्मा ध्यान से तथा परमात्मा।
साधना से सिद्धि की प्राप्ति होती, अन्तरात्मा ही बनते परमात्मा।।

संदर्भ - जैन धर्म में तो अरिहन्त भी गुरु है तो सिद्ध भी गुरु है आचार्य, उपाध्याय साधु भी गुरु है। उन्हें पंच गुरु या पंच परमेष्ठी कहते हैं। प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रान्ति हुई है हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरु ही है। गुरु एक क्रांतिकारी, सत्य-शोधक, नवीन-नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरुष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेक्झेंडर (सिकन्दर) महान बना गुरु अरस्तु के कारण। चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्विजयी बना गुरु कौटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी छत्रपति बना गुरु समर्थ रामदास के कारण। मोहनदास महात्मागाँधी बने रायचन्द्र जैन के कारण। इस प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले ही राजा, महाराजा, सम्राट भी गुरुओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान-विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्धविद्या, कलाकौशल गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

'गुरु बिना सर्वे भवन्ति पशुभिः सनिभ' गुरु के बिना मनुष्य पशु के सदृश है। पशुओं के कोई गुरु नहीं होते है इसलिए पशुओं की उन्नति नहीं होती है। इस ही प्रकार मनुष्य-समाज में गुरु नहीं होते तो मनुष्य समाज भी पशुवत हो जाता।

'गुरु बिना कौन दिखावे वाट, अवघड़ डोंगर घाट'

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा ? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुरूह, भयंकर जंगलघाटी के समान है। उसको पार करने के लिये गुरु रूपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।

आत्मा का गुरु आत्मा

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः। (34)

Because of its internal longing for the attainment of the highest ideal, because of its understanding of that ideal, and because of its eraging itself in the relisation of its ideal, because of these the soul is

its own preceptor!

पुनः शिष्य कहता है कि हे गुरुदेव! मोक्ष सुख अनुभव विषय में गुरु कौन है? गुरु कहते हैं जो शिष्य निश्चय से सतत् कल्याण चाहते और उसके जिज्ञासा के अनुसार उपाय बताते है तथा जो अपर्वतमान है उन्हे पर्वतन करते है उन्हें निश्चय से गुरु कहते हैं। इसी प्रकार होने पर आत्मा का गुरु आत्मा ही है क्योंकि स्वयं आत्मा स्व-मोक्षसुख की अभिलाष करता है अर्थात मोक्ष सुख मुझे मिले ऐसे सत् प्रशंसनीय आकांक्षा को करता है। स्व-आत्मा स्वयं के लिए मोक्ष सुख की जिज्ञासु करता है, जिज्ञासित मोक्ष सुख के उपाय को आत्मविषय में ज्ञापन देता है अर्थात् मोक्षसुख का उपाय सेवन करो! ऐसे बोध देता है। तथा मोक्ष सुखोपाय में स्वयं को नियुक्त करता है। इसी प्रकार सुदुर्लभ मोक्षसुख उपाय में यह दुरात्मा अभी तक प्रवृत्त नहीं हुआ है। ऐसे मोक्ष सुख में अपवर्त्तमान आत्मा को स्वयं आत्मा प्रवृत्तमान करता है इसलिए निश्चय से आत्मा का गुरु आत्मा ही है।

समीक्षा :- यहाँ पर आचार्य श्री ने निश्चयनय से गुरु-शिष्य के बारे में संक्षिप्त सारगर्भित प्रकाश डाला है। व्यवहारनय से आचार्य-उपाध्याय साधु गुरु होने पर भी निश्चय नय से आत्मकल्याण में प्रवर्तमान स्वयं ही स्वयं का गुरु है। क्योंकि भले गुरु हितमार्ग का उपदेश करता है परन्तु प्रवृत्त तो होता है स्वयं जीव। स्वयं आचार्य श्री आगे इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे इसलिए यहाँ विशेष वर्णन नहीं कर रहा हूँ तथापि आचार्य अकंलक देव कृत स्वरूप सम्बोधन, से कुछ विषय उद्धृत कर रहा हूँ। यथा :

''इत्याद्यनेक, धर्मत्वं, बन्धमौक्षौ तयोः फलम्।
आत्मा स्वीकुरूते तत्तत्कारणेःस्वयमेव तु'' ।। 9।।

कर्मबन्ध भवभ्रमण मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम से आस्रव बन्ध तत्त्व के रूप में होता है और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, द्वारा संवर निर्जरा की प्रक्रिया से मोक्ष होता है। आत्मा स्वयं विभिन्न कारणों से बन्ध या मोक्ष की प्रक्रिया किया करता है।

तथा चोक्तम्-
स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।

यह आत्मा स्वयं अपने रागद्वेष मोह आदि भावों के द्वारा ज्ञानावरण,दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र ओर अन्तराय कर्मों का बन्ध किया करता है और जब कर्म का उदय होता है तो आत्मा स्वयं अच्छे या बुरे फल को भोगा करता है, चारों गतियों में जन्म मरण भी यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार किया करता है। तथा निर्ग्रंध गुरु-द्वारा जिनवाणी सुनकर जब यह शरीर आत्मा के भेदभाव समझकर आत्मा का श्रद्धालु बनता है, संसार शरीर और विषय-भोगों से विरक्त होता है - यह सम्यग्दृष्टि बनकर स्वयं कर्मो से मुक्त होने के मार्ग पर चल पड़ता है। अपनी आत्मचर्या सम्यक्चारित्र को उन्नत करता हुआ संवर निर्जरा की पद्धति से शुक्लध्यान द्वारा समस्त कर्मों से छुटकर, जन्म मरण का सदा के लिये विनाश करके मुक्त भी अपने आप होता है। यानी यह आत्मा स्वयं कर्त्ता, भोक्ता, भ्रमणकर्त्ता और मुक्त होता है।

कर्त्ता य:कर्मणा भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि।। 20।।

जीव को संसार में घुमाने वाला, उसको सुख दुख देने वाला तथा संसार और कर्मो से जीव को मुक्त करने वाला कोई व्यक्ति नहीं है, यह समस्त कार्य आत्मा स्वयं करता है। यह आत्मा स्वयं अपने मिथ्यात्व, रागद्वेष,मोह,ममतादि भावों से शरीर, परिवार, धन मकान आदि को अपना करके कर्मबन्ध क्रिया करता हैं तथा कर्मों के उदय आने पर उन कर्मों का फल आत्मा को स्वयं भोगना पड़ता है। आत्मा तथा कर्म, नोकर्म(शरीर) का भेद-विज्ञान हो जाने पर सम्यक्त्व, सत्-ज्ञान स्वयं होता है तथा अन्तरंग बहिरंग तपश्चर्या द्वारा कर्मों से मुक्त भी आत्मा स्वयं होता है।

कार्य के लिए बाह्य कारण

नाज्ञो विज्ञत्व मायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत्।। (35)

Those not get qualified for the acqusition of truth cannot become the knowers of truth;the knower of truth cannot become devoid of it;external teacher are useful like eyther which is but helpful in the motion of moving things.

''स्वाभाविक हि निष्पतौ, क्रियागुणमपेक्ष्यते।
न व्यापारशतेनापि - शुक्रवत्पाटयते वकः''।।

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि यदि आत्मा का गुरु आत्मा ही है तब परम्परा गुरु से शिष्य कैसे शिक्षा प्राप्त करता है ? मुमुक्ष के द्वारा धर्माचार्य की सेवा आदि भी नहीं होगी। इसका समाधान आचार्य श्री निम्न प्रकार करते है-

हे भद्र! तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने में अयोग्य जो अभव्य हैं वह हजार धर्माचार्यों के उपदेश से भी प्राप्त नहीं कर पाते।

जिसमें जो स्वभाव है वह स्वभाव की ही अभिव्यक्ति बाह्य क्रिया-निमित्त से होती है परन्तु जिसमें जो स्वभाव नहीं है उसकी अभिव्यक्ति सैकड़ों क्रियाओं से भी नहीं हो सकती है। जैसे कि तोता को पढ़ाने से तोता पढ़ सकता है परन्तु बगुला नहीं पढ़ सकता है। उसी प्रकार जो अंतरंग में विज्ञप्ति की शक्ति रखता है वहीं अभिव्यक्ति रूप से ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। परन्तु जिसमें यह शक्ति नहीं है वह हजारों से भी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है।

प्रशमयोगी उस वज्रपात से भी चलायमान नहीं होते हैं जिसके भय से पथिक पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और विश्व-ध्वनित हो जाता है। क्योंकि वह योगी बोध रूपी प्रदीप से मोहरूपी घना अंधकार को नष्ट करके सम्यग्दृष्टि को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे भयंकर वज्रपात से भी जो चलायमान नहीं होते हैं वे अन्य छोटे-छोटे उपद्रवों से कैसे चलायमान होंगे ? कहने का तात्पर्य यह है कि वज्ररूपी बाह्य निमित्त से भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि महायोगी चलायमान नहीं होते हैं।

परन्तु बाह्य अपेक्षा की आवश्यकता होती है, ज्ञान-प्राप्ति के लिए गुरु आदि बाह्य निमित्त मात्र है और शिष्य की योग्यता अन्तरंग मुख्य कारण है क्योंकि वही साक्षात् साधक है। इसके लिए उदाहरण है गति परिणत जीव, पुद्गल के लिए जिस प्रकार धर्मास्तिकाय निमित्त होता है।

समीक्षा- यह वर्णन आध्यात्मिक दृष्टि से होने के कारण गुरु रूपी निमित्त को ज्ञान प्राप्ति में उदासीन कारण बताया गया है। परन्तु गति के लिए धर्मास्तिकाय जिस प्रकार केवल उदासीन कारण है उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति में गुरु उदासीन कारण नहीं है। यदि ऐसा होता तो तीर्थकर क्यों उपदेश करते। गणधर भी उपदेश क्यों सुनते ? आचार्य

भी ग्रन्थ क्यों लिखते ? बिना देशना-लब्धि सम्यक्दर्शन क्यों नहीं होता ? यह सब होते हुए भी अयोग्य शिष्य को अपनी कमी को बताने के लिए, गुरु के अकर्तापन को जताने के लिए यह सब कहा गया है। नहीं तो गुरु शिष्य, गुरुकुल, विद्यालय ग्रन्थ आदि की आवश्यकता क्यों होती।

सच्चे आध्यात्मिक गुरु व ढोंगी गुरु

(सच्चे गुरु दुःख-भय दूर करते, ढोंगी गुरु दुःख भय बताकर शोषण करते)
(चालः- आत्मशक्ति.....क्या मिलिए.....)

सुनो ! सुनो ! हे ! दुनियावलों आध्यात्मिक गुरुओं का सही स्वरूप।
जो दुःख व भय से निवृत हेतु जो होते यथार्थ से मार्गदर्शक।।
इससे विपरीत होते ढोंगी गुरु जो दुःख व भय दिखाकर/(बताकर) करते शोषण
ढोंग-पाखण्ड-मायाचार के द्वारा दुःख व भय का करते कृत्रिम वर्णन।।(1)

आध्यात्मिक गुरु आत्मविश्वास व ज्ञान चारित्र का करते सही वर्णन।
पावन भाव-व्यवहार के द्वारा पाप नाश से बताते दुःख-भय निवारण।।
इससे विपरीत पाखण्डी गुरु ख्याति-पूजा-लाभ व वर्चस्व हेतु।
अन्य के दुःख व भय दूर के बहाने भयभीत करते शोषण हेतु।।(2)

दुःख के लिए प्रमुख कारण है पूर्व व वर्तमान के पापात्मक कर्म।
मन-वचन-काय व कृत-कारित-अनुमोदना किये गये अशुभ कर्म।।
अतएव दुःख दूर करने हेतु पाप कर्म नाश करना विधेय।
इस हेतु ही नवकोटि से शुभकर्म करना ही प्रमुख रूप से विधेय।।(3)

इस हेतु त्याग करना अनिवार्य है ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-तृष्णा-मद व माया।
हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह व फैशन-व्यसन-प्रमाद-आलस्य।।
तथाहि करणीय दान-दया-सेवा-परोपकार से लेकर पूजा-प्रार्थना।
समता-शान्ति-सन्तोष-क्षमा-धैर्य से लेकर सम्यक् पुरुषार्थ ।। (4)

जो होते हैं आध्यात्मिक गुरु वे दुःख दूर हेतु बताते उक्त उपाय।

स्वयं भी होते उक्त महान् गुणों सहित, स्व-पर उपकार गुण युक्त।।
पाखण्डी गुरु जो होते वे स्वयं न होते उक्त महान् गुण युक्त।
वे क्या अन्य को मार्गदर्शन देंगे वे होते स्व-पर अपकार से युक्त।।

वे तो स्व-स्वार्थ सिद्ध करने हेतु टोना-टोटका से ले करते बलिदान।
उसके बदले में दान-दक्षिणा से ले करते धन से तन तक शोषण।।
ऐसे ढोंगी गुरु के भी होते हैं अनेक अज्ञानी मोही स्वार्थी भक्त।
वे सभी लोभी गुरु लालची चेला, नरक में होय ठेलम ठेला।। (6)

अतएव ही आध्यात्मिक होते हैं महान् से महान् उपकारी।
किंतु ढोंगी गुरु होते हैं इह-पर लोक हेतु महान् अपकारी।।
महान् पुण्यशाली होते सच्चे गुरु व अनेक अनुयायी शिष्य। (भक्त)।
महान् पापी होते हैं ढोंगी गुरु व अन्ध भक्त स्वार्थी शिष्य।(भक्त)।। (7)

सच्चे गुरु के उपलब्धि हेतु करणीय पुरुषार्थ व सेवा दान।
इह-पर लोक दुःख-भय निवारण हेतु 'सूरी कनक' करें प्रयत्न।। (8)

(यह कविता नरेन्द्र खोडनिया के कारण बनी।)
सागवाडा 05.04.2018 रात्रि 09:03

मुनिराज तत्त्वचिंतक होते हैं

तच्चवियारणसीलो मोक्ख महाराहणा सहावजुदो।
अणवरयं धम्मकहा पसंगओ होइ मुणिराओ।।99।।

अर्थ :- जिन मुनिराजों ने पूर्व में श्रुतज्ञान का अभ्यास किया है और वर्तमान में भी तत्त्वों का विचार करने में कुशल(चतुर) है, लीन है। मोक्षमार्ग की आराधना करने का जिन मुनिराज का स्वभाव हो जाता है और निरंतर अपना समय धर्म कथा में ही व्यतीत करते हैं। सदा धर्मरत रहते हैं वे ही यथार्थ मुनिराज कहलाते हैं। वास्तविक यही मुनिराजों का स्वरूप है।

मुनिराज की अनवरत चर्या

विकहाइ विप्पमुक्को आहाकम्माइ विरहिओ णाणी।
धम्मुदेसण कुसलो अणुपेहा भावणाजुदो जोई।। 100।।

अर्थ :- ज्ञानी योगीराज सतत धर्म ध्यान में और अध्ययन में लवलीन रहते हैं। स्त्री कथा, अर्थकथा, राजकथा, भोजन कथा, चोर कथा, वैर कथा,पाखण्डी कथा, देश कथा, स्वप्रशंसा संबंधी कथा, परनिन्दा प्रकट कथा, तथा आक्षेपिणी विपेक्षेणी कथा इन कुकथाओं से सर्वथा सर्वदा भिन्न रहते हैं।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भावनओं में कार्यकृति में लगे रहते हैं। तथा सतत् धर्म का उपदेश देने वाले होते हैं। तथा बारह भावनाओं के द्वारा तत्त्वस्वरूप का विचार करते रहते हैं। ऐसे ज्ञानी भव्य नरोत्तम पुरुष जिनलिंग-नग्नमुद्रा निर्गंथ दिगम्बर धारक मुमुक्षु मुनीश्वर यतीश्वर होते हैं।

विकल्प, द्वंद्व रहित मुनिराज

अवियप्पो णिद्दंदो णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो।
निम्मलसहाव जुत्तो जोइ सो होइ मुणिराओ।। 101।।

अर्थ :- परमोत्कृष्ट मुनीश्वर का स्वरूप यह है कि जो यतीश्वर शुभ अशुभ संकल्पों से विकल्पों से रहित हैं, कोई द्वंद्व नहीं है, निर्मोह हैं, कलंक रहित हैं, अपने स्वरूप में स्थिर हैं, निर्मल है, निर्भय है, स्वच्छ आत्म स्वभाव सहित है वे ही मुनिनाथ है। स्व पर के हितकारी है।

मुनिराज कैसे होते हैं ?

णिंदा वंचण दूरो परीसह उवसग्ग दुक्ख सहभावो।
सुहज्झाणज्झयण रदो गयसंगो होइ मुणिराओ।।102।।

अर्थ :- जो निंदादिक गर्हित वचनों से रहित हैं अर्थात् कभी किसी की भी किसी भी प्रकार की निंदा नहीं करते हैं। मायाचार कुटिलपना भावों को स्पर्श भी नहीं करते हैं। परिषहों और उपसर्ग के भयंकर दुःख को समभाव से सहते हैं। साम्यभाव के धारक हैं, शुभध्यान व अध्ययन में सदा तत्पर रहते हैं तथा चौबीस प्रकार के परिग्रह से सर्वथा रहित नग्न-दिगम्बर-निर्गंथ प्रत्यक्ष हैं वे ही यतीश्वर होते हैं।

मिथ्यात्व सहित मुक्ति नहीं

तिव्वं कायकिलेसं कुव्वंतो मिच्छ भावसंजुत्तो।।
सव्वण्णुवएसे सो णिव्वाणसुखं ण गच्छेई।। 103।।

अर्थ :- जो मिथ्यात्व कर्म के उदय से मिथ्या भावों को धारण करता है और मिथ्या भावों के उदय में अत्यंत तीव्र रूप से तपश्चरण भी करता है, इससे मात्र शरीर को ही कष्ट देता है परन्तु निर्वाण पद को नहीं पाता है-मोक्ष नहीं जा सकता है।

इस मिथ्या तपस्या का फल संसार के अल्प सुख के लिए प्राप्त होता है फिर भी इस मिथ्या फल के उदय से मिथ्या कार्य ही किया करता है।

क्योंकि निज आत्मा के सम्यग्दर्शन युक्त तपश्चरण नहीं है। मिथ्यात्व सहित तपश्चरण कर्म बंध से संसार भ्रमण के लिए कारण है और सम्यक्त्व सहित तपश्चरण कर्म निर्जरा का कारण होने से निर्वाण पद को प्राप्त होता है अर्थात् सिद्ध स्थान पर गमन करता है। यह समस्त उपदेश सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान् का है।

रागी को आत्मा का दर्शन नहीं

रायादिमलजुदाणं णियप्परूवं ण दिस्सए किं पि।
समला दरिसे रूवं ण दिस्सए जहा तहा णेयं।। 104।।

अर्थ :- जिस प्रकार मलिन दर्पण में अपना यथार्थ शरीर का रूप दिखाई नहीं देता है उसी प्रकार जिनका आत्मा मिथ्यारूप रागद्वेष आदि दोषों से मलिन है, उस मलिन आत्मा में आत्मा का यथार्थ स्व-रूप कुछ भी दिखाई नहीं देता है।

दीर्घ संसारी

दंडत्तय सल्लत्तय मंडियमाणो असूयगो साहू।
भंडण जायण सीलो हिंडइ सो दीह संसारे।। 105।।

अर्थ :- मनोदंड कायदंड अर्थात् मन वाचन काय की अशुभ प्रवृत्ति का होना। मिथ्याशल्य मायाशल्य निदान शल्यों सहित ईर्ष्यावान तथा परस्पर में बात-बात में झगड़ा करने वाला और किसी भी चीज की याचना करने में कुशल है ऐसा साधु दीर्घ संसार में जन्म मरण करते हुए भ्रमण करता है।

सम्यक्त्व-रहित साधु कौन

देहादिसुअणुरत्ता विसयासत्ता कसाय संजुत्ता।
अप्पसहावे सुत्ता ते साहू सम्मपरिचत्ता।। 106।।

अर्थ :- जो साधु आत्मस्वभाव के विषय में अनभिज्ञ हैं, अपने शरीर को सुंदर कांतिमान बलवान बनाने में आसक्त है, पांचों इन्द्रियों के भोगों में आसक्त रहते हैं,सदा क्रोधादि कषायों में रहते हैं, आत्म स्वभाव में जाग्रत नहीं है अर्थात् आत्मस्वरूप का विचार ही नहीं हैं, ऐसे मुनि सम्यक्त्व रहित होते हैं।

जैन धर्म के विराधक

संघविरोह कुसला सच्छंदा रहिय गुरुकुला मूढा।
रायाई सेवया ते जिणधम्म विराहिया साहू।।108।।

अर्थ :- जो साधु खेती करवाना, कुंआ खोदवाना, मकान मंदिर आदि बनवाना, अग्नि शिलगाना, जलादि सिंचन करना, व्यापार कार्यों में रूचि रखना, पेड़ पौधे लगवाना आदि अनेक प्रकार के आरंभादि कार्यों में रत रहने वाला, बैल,घोड़ा, हाथी आदि पालते और अनाज आदि संग्रह करते हैं। बड़े पंख से पीछी को मोटी सजावट से और सुंदर ढंग से बनवाते हैं, कमंडलु की सुंदरता के लिए रोगन रंग से सजाते हैं, पुस्तक शास्त्रों का संग्रह ठीक-ठाक दिखाई देने में लग रहते हैं और संघस्थ मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाओं के प्रति ईर्ष्याभाव रखते हैं, कलह करते हैं, झगड़ा करते हैं। पांच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति 25 मूल गुणों का पालन, विचार भी नहीं करते हैं और मैं व्रती त्यागी संयमी साधु हूं इसका भी विचार विस्मर नहीं रखते हैं।

ऐसे साधु न अपना, न धर्म का, ना मुक्तिमार्ग का हित करने वाला नहीं होता है।

सम्यक्त्व से रहित है, मिथ्यादृष्टि, उपरी भेष धारण करने वाला साधु है, इसका साधु मुनि स्वयं विचार कर मुक्ति पथ पर चले यही आचार्यों का कहना हैं, भगवान् का उपदेश है।

श्रमणों को दूषित करने योग्य कार्य

जोइसविज्जामंत्तोपजीवणं वायवस्स ववहारं।
धणधण्णं पडिग्गहणं समणाणं दूसणं होइ।।101।।

अर्थ :- श्रमण मुनि ज्योतिष बताकर, मंत्र तंत्र, विद्या आदि देकर या बताकर अपनी जीवन को चलाते हैं। धन धान्य आदि परिग्रह इकट्ठा करते हैं। भूत बाधा, प्रेत, मंत्रादि द्वारा व्यवहार करते हैं, यह मुनि जनों के लिए बाधाकारी है, दूषण है, यह मुनिधर्म-यतिमार्ग नहीं है।

सम्यक्त्वविहीन मुनि

जे पावारंभरया कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहार पउरा ते साहू सम्म उम्मुक्का।। 110।।

अर्थ :- जो साधु पापरूप कार्यों में, आरंभादि कार्यों में लीन रहते हैं। क्रोध, मान, माया,लोभ इन कषायों से सहित है। परिग्रह में सदा लगे रहते हैं। लोक व्यवहार में खूब प्रवीण हैं, ऐसे साधु सम्यक्त्व रहित होते हैं।

पापी जीव

चम्मट्ठि मंसलव लुद्धो सुणहो गज्जए मुणिं दिट्ठा।
जह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठो।। 111।।

अर्थ :- जिस प्रकार चर्म मांस हड्डी खाने वाला लोलोपी कुत्ता अन्य कुत्तों को देखकर भौंकता है और इतना ही नहीं बल्कि धर्मात्मा, पुरुष, मुनिजन इनको भी देखकर भौंकता है। इसी प्रकार दुर्जन अधर्मी पापी लोग भी धर्म भक्त, दानी, गुणी पुरुषों को देखकर तथा मुनि त्यागी जनों को देखकर उनका तिरस्कार करते हैं, कुछ का कुछ विरोध में बोलते हैं।

निगोदिया से मुझे शिक्षा मिले

(अति सूक्ष्म जीव होते हुए भी भावकलंक से निगोदिया जीव आठों कर्मों को बांधते)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- दुनिया में रहना है तो.....)
निगोदिया से शिक्षा मिले भावकलंक ना कर,

भावकलंक से ही बन्धते अष्टकर्म घनघोर,
शुद्धभाव हेतु ही सदा शुभ भाव ही कर,
इससे ही मिलेंगे स्वर्ग-मोक्ष सुख भर-पुर ।।(1)

निगोदिया जीव होते हैं सुक्ष्मतनधर,
एक ही बालग्र में समाते अनन्त शरीर,
केवल स्पर्शन इन्द्रिय सहित वे होते,
हाथ-पैर-मुख आदि से रहित वे होते।। (2)

असिमसि शिल्प वाणिज्य सेवादि न करते,
तथापि भावकलंक से अष्टकर्म बन्धते,
मद्य-मांस-शिकार-आदि व्यसन न सेवते,
तथापि भावकलंक से घाती अघाती बान्धते।। (3)

आक्रमण युद्ध हत्या विध्वंस न करते
तथापि भावकलंक से मिथ्यात्वी रहते,
अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चतुष्क सह होते,
अशुभ लेश्या सहित प्रचुर दुःख पाते।। (4)

माता पिता भाई बन्धु कुटुम्ब न होते,
पारिवारिक सम्बन्ध से सामाजिक न होते
एक निगोद शरीर में अनन्त निगोदिया होते,
तथापि भावकलंक से बहुसंक्लेशित होते।। (5)

भाषा-जाति-लिंगादि के भेदभाव न होते,
लेनादेनादि कोई काम वे न करते,
छोटा-बडा, मालिक-मजदूरादि भेद न होते,
तथापि अशुभतम भाव से दुःख सहते।।(6)

धर्मी-अधर्मी-कुधर्मी आदि भेदभाव न होते,

विवाह-तलाक आदि के विकल्प न होते,
एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करते,
भावकलंक के कारण द्वि इन्द्रिय आदि न बनते।। (7)

ऐसे जीवों को नित्य निगोदिया कहते,
त्रस से पुनः निगोदिया बने इतर निगोदिया होते,
ऐसे जीव द्विइन्द्रिय से भी अधिक पापी,
सप्तव्यसनी नारकी से भी अधिक पापी।।(8)

सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती भी भोगोपभोग करते,
युद्ध से लेकर राज्य शासनादि करते,
तथापि इनसे जो पापबन्ध नहीं होते
इनसे भी अधिक पापबन्ध निगोदिया करते।। (9)

ऐसे चक्री व सप्तव्यसनी से वे अधिक पापी
दीक्षा लेकर मोक्षतक जाते चक्री-व्यसनी,
सिंहादि हिंस पशु से वे अधिक पापी,
सिंहादि व्रती तक बनकर पाते स्वर्गादि।। (10)

इससे मुझे अशुभ-शुभ-शुद्ध का होता ज्ञान
शुभ से शुद्ध हेतु कर रहा हूँ ध्यान,
समता शान्ति-शुचिता हेतु करूँ प्रयत्न
'कनक' का लक्ष्य पाना स्वआत्म स्वभाव।। (11)
सागवाडा 11.4.2018 मध्याह्न - 3:08

जैन-जीव विज्ञानानुसार सूक्ष्म-जीव विज्ञान

सर्वज्ञ भगवान् अनन्तज्ञानी होने से वे बिना सूक्ष्म दर्शक-दूरदर्शक यंत्र चक्षु आदि इन्द्रियों एवं मन के बिना आत्यान्तिक सूक्ष्म परमाणु से लेकर अनन्त ब्रह्माण्ड, अमूर्तिक द्रव्य से मूर्तिक द्रव्य तक को जानकर दिव्य ध्वनि से उपदेश दिया और

गणधर से लेकर आचार्यों के उपदेश एवं साहित्यों के माध्यम से हजारों वर्षों से सुरक्षित रहकर हमारे पास तक पहुंचा है। यह जानकर आश्चर्य पूर्ण गौरव अनुभव होता है कि आधुनिक विज्ञान के उदय के हजारों वर्षों पहले से ही आधुनिक विज्ञान द्वारा ज्ञात विषयों से भी अधिक सूक्ष्म,व्यापक,सत्य-तथ्यों का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है। जैन धर्म की कुछ विशेषताएँ हैं- यथा कर्म-सिद्धान्त, 23 वर्गणायें, अलौकिक गणित, गुणस्थान, सूक्ष्मजीव विज्ञान (निगोदिया सूक्ष्म पंचस्थावर) आदि। सूक्ष्म नामकर्मोदय से जो एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं वे निर्विबाधरूप से ब्राह्मण्ड में सर्वत्र संचार करते हैं वे किसी को भी बाधा नहीं पहुँचाते हैं, और उन्हें भी पृथ्वी, अग्नि, सूर्य,वायु,अणुबम तक भी बाधा नहीं पहुँचा सकते हैं। त्रसजीव के शरीर से लेकर मनुष्यों के शरीर में भी उस-उस जीव जाति के सम्मूर्छन जीव होते हैं। यथा-

कर्मभूमिषु चक्रास्त्रहल भृद् भूरिभूभुजां।
स्कंधावार समूहेषु प्रस्त्रावोच्चार भूमिषु।।
शुक्रसिंधाण कश्लेष्मकर्ण दन्तमलेषुच।
अत्यन्ताशुचिदेशेषु सद्यः सम्मुर्च्छनेनय।। (भगवती आराधना)

कर्म भूमियों में चक्रवर्ती बलदेव, राजाओं की सेना के पड़ावों में मलमूत्र त्यागने के स्थानों में, वीर्य, नाक के मल, कफ, कान और दाँतों के मल में और अत्यन्त गन्दे प्रदेशों में शीघ्र ही सम्मूर्छन जन्म से उत्पन्न होकर तत्काल ही अपर्याप्त दशा में मरण को प्राप्त होने वाले सम्मूर्छन मनुष्य होते हैं। उनका शरीर अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र होता है। इसी प्रकार मांस, मछली, अण्डा, शराब, धर्म,चर्म, निर्मित वस्तु गन्दगी मर्यादा से रहित दूध, दही,पानी,रोटी भात, सब्जी, दाल मुरब्बा, पापड़, आचार, ब्रेड, बिस्कीट, आइस्क्रीम, कुल्फी, कोल्ड्रींक, दही वड़ा, पानी पूड़ी, भेलपूडी, गीली जमीन, कच्चा पानी से धोया हुआ बिना सूखा हुआ वस्त्र आदि में भी ऐसे जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

सूक्ष्म जीवों से पूर्ण ब्रह्माण्ड

पुण्णा वि अपुण्णा विय थूला जीवा हवंति साहारा।

छव्विह-सुहुमा जीवा लोयायासे वि सहत्थ।। (123)

(स्वा. का.अनु.)

अर्थ - पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों ही प्रकार के बादर जीव आधार के सहारे से रहते हैं और छह प्रकार के सूक्ष्मजीव समस्त लोकाकाश में रहते हैं।

भावार्थ- जीव दो प्रकार के होते हैं-बादर और सूक्ष्म। बादर नामकर्म के उदय से बादर पर्याय में उत्पन्न जीवों को बादर कहते हैं और सूक्ष्म नामकर्म के उदय से सूक्ष्म पर्याय में उत्पन्न जीवों को सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्मजीवों के भी छह भेद हैं- (1) पृथिवीकायिक (2) जलकायिक (3)तेजकायिक(4) वायुकायिक(5) नित्यनिगोद वनस्पतिकायिक और (6) इतरनिगोद वनस्पतिकायिक। ये सब जीव पर्याप्त कभी होते हैं और अपर्याप्तक कभी होते हैं। जो बादर होते हैं, वे किसी आधार से रहते हैं। किन्तु सूक्ष्मजीव बिना किसी आधार के समस्त लोक में रहते हैं।

पुढवी-जलग्गि-वाऊ चत्तारि वि होंति बायरा सुहुमा।
साहारण-पत्तेया वणप्फदी पंचमा दुविहा।। (124)
साहारण वि दुविहा अणाइ-काला य साइ-काला य।
ते वि य बादर-सुहुमा ऐसा पुण बायरा सव्वे।। (125)

अर्थ - पृथिवीकायिक, जलकायिक,अग्निकायिक और वायुकायिक जीव बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी होते हैं। पाँचवें वनस्पतिकायिक के दो भेद हैं- (1) साधारण और (2) प्रत्येक।

अर्थ- साधारण वनस्पति काय के दो भेद हैं-अनादि साधारण वनस्पति काय और सादि साधारण वनस्पति काय। ये दोनों प्रकार के जीव बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी होते हैं। बाकी के सब जीव बादर ही होते हैं।

भावार्थ - साधारण नामकर्म के उदय से साधारण वनस्पतिकायिक जीव होते हैं, जिन्हें निगोदिया जीव भी कहते हैं। उनके भी दो भेद हैं- अनादिकालीन और आदिकालीन। अनादिकालीन साधारण वनस्पति काय को नित्य निगोद कहते हैं और सादिकालीन वनस्पतिकाय को चतुर्गति निगोद कहते हैं। ये नित्य निगोदिया और चतुर्गति निगोदिया जीव भी बादर और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार के होते हैं। जिन

जीवों के बादर नामकर्म का उदय होता है वे बादर कहलाते हैं और जिन जीवों के सूक्ष्म नामकर्म का उदय होता है वे सूक्ष्म कहलाते हैं। दोनों ही प्रकार के निगोदिया जीव बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी होते हैं। किन्तु बाकी के सब प्रत्येक वनस्पति कायिक जीव और द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीव बादर ही होते हैं।

साधारण की परिभाषा

साहारणाणि जेसिं आहारूस्सास-काय-आऊणि।
ते साहारण-जीवा णंताणंत-प्पमाणाणं।। (126)

अर्थ - जिन अनन्तानन्त जीवों का आहार, श्वासोच्छवास, शरीर और आयु साधारण है उन जीवों को साधारणकायिक जीव कहते हैं।

भावार्थ - जिन अनन्तानन्त निगोदिया जीवों के साधारण नामकर्म का उदय होता है उनकी आहार, श्वासोच्छ्वास, शरीर और आयु साधारण यानी समान होती है। अर्थात् उन अनन्तानन्त जीवों का पिण्ड मिलकर एक जीव के जैसा हो जाता है अतः जब उनमें से एक जीव आहार ग्रहण करता है तो उसी समय उसी के साथ अनन्तानन्त जीव आहार ग्रहण करते हैं। जब एक जीव श्वास लेता है तो उसी समय उसके साथ अनन्तानन्त जीव श्वास लेते हैं। जब उनमें से एक जीव मरकर नया शरीर धारण करता है तो उसी समय उसी के साथ अनन्तानन्त जीव वर्तमान शरीर को छोड़कर उसी नये शरीर को अपना लेते हैं। सारांश यह है कि एक के जीवन के साथ उन सब का जीवन होता है और एकाकी मृत्यु के साथ उन सबकी मृत्यु हो जाती है इसी से उन जीवों को साधारण जीव कहते हैं। इसका और भी खुलासा इस प्रकार है-साधारण वनस्पति कायिक जीव एकेन्द्रिय होता हैं। और एकेन्द्रिय जीव के चार पर्याप्तियाँ होती हैं - (1) आहार पर्याप्ति, (2) शरीर पर्याप्ति, (3) इन्द्रिय पर्याप्ति, (4) श्वासोच्छवास पर्याप्ति। जब कोई जीव जन्म लेता है तो जन्म लेने के प्रथम समय में आहार पर्याप्ति होती है, उसके बाद उक्त तीनों पर्याप्तियाँ एक के बाद एक के क्रम से होती हैं। आहार वर्गणा के रूप में ग्रहण किये गये पुद्गल स्कन्धों का खल भाग और रस भाग रूप परिणमन होना आहार पर्याप्ति का कार्य है। खल भाग और रस भाग का शरीर रूप परिणमन होना शरीर पर्याप्ति का कार्य है। आहार वर्गणा के

परमाणुओं का इन्द्रिय के आकार रूप परिणमन होना इन्द्रिय पर्याप्ति का कार्य है। और आहार वर्गणा के परमाणुओं का श्वासोच्छवास रूप परिणमन होना श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति का कार्य है। एक शरीर में रहने वाले अनन्तानन्त साधारण कायिक जीवों में ये चारों पर्याप्तियाँ और इनका कार्य एक साथ एक समय में होता है। गोम्मटसार जीवकाण्ड में साधारण वनस्पति काय का लक्षण इस प्रकार कहा है- जहाँ एक जीव के मर जाने पर अनन्त जीवों का मरण हो जाता है और एक जीव के शरीर को छोड़कर चले जाने पर अनन्त जीव उस शरीर को छोड़कर चले जाते हैं वह साधारण काय है। वनस्पति कायिक जीव दो प्रकार के होते हैं- एक प्रत्येक शरीर और एक साधारण शरीर। जिस वनस्पति रूप शरीर का स्वामी एक ही जीव होता है उसे प्रत्येक शरीर कहते हैं। और जिस वनस्पति रूप शरीर का स्वामी एक ही जीव होता है उसे प्रत्येक शरीर कहते हैं। और जिस वनस्पति रूप शरीर के बहुत से जीव समान रूप से स्वामी होते हैं उसे साधारण शरीर कहते हैं। सारांश यह है कि प्रत्येक वनस्पति में तो एक जीव का एक शरीर होता है। और साधारण वनस्पति में बहुत से जीवों का एक ही शरीर होता है। ये बहुत से जीव एक साथ ही खाते हैं, एक साथ ही श्वास लेते हैं। एक साथ ही मरते हैं और एक साथ ही जीते हैं। इन्हें ही निगोदिया जीव कहते हैं। इन साधारण अथवा निगोदिया जीवों के भी दो भेद हैं- (1) नित्य निगोदिया ,(2) इतर निगोदिया अथवा चतुर्गति निगोदिया। जो जीव अनादिकाल से निगोद में ही पड़े हुए हैं और जिन्होंने कभी भी त्रस पर्याय नहीं पाई है उन्हें नित्य निगोदिया कहते हैं। और जो जीव त्रस पर्याय धारण करके निगोद पर्याय में चले जाते हैं उन्हें इतर निगोदिया कहते हैं। साधारण वनस्पति की तरह प्रत्येक वनस्पति के भी दो भेद हैं- (1) सप्रतिष्ठित प्रत्येक,(2) अप्रतिष्ठित प्रत्येक। जिस प्रत्येक वनस्पति के शरीर में बादर निगोदिया जीवों का आवास हो उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। जिस प्रत्येक वनस्पति के शरीर में बादर निगोदिया जीवों का वास न हो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

सूक्ष्म-बादर की पहचान

ण य जेसिं पडिखलणं पुढवी-तोएहिं अग्गि-वाएहिं।
ते जाण सुहुम-काया इयरा पुण थूल-काया य।। (127)

अर्थ- जिन जीवों का पृथ्वी से, जल से, आग से, और वायु से प्रतिघात

नहीं होता उन्हें सूक्ष्मकायिक जीव जानो और जिनका इनसे प्रतिघात होता है उन्हें स्थूलकायिक जीव जानो।

भावार्थ-पांच प्रकार के स्थावर कार्यों में ही बादर और सूक्ष्म भेद होता है। त्रसकायिक जीव तो बादर ही होते हैं। जो जीव न पृथ्वी से रुकते हैं, न जल से रुकते हैं, न आग से जलते हैं और न वायु से टकराते हैं, सारांश यह कि ब्रजपटल वगैरह से भी जिनका रुकना संभव नहीं है- उन जीवों को सूक्ष्मकायिक जीव कहते हैं। और जो दीवार वगेरह से रुक जाते हैं, पानी के बहाव के साथ बह जाते हैं अग्नि से जल जाते हैं और वायु से टकराते हैं वे जीव बादरकायिक कहे जाते हैं।

प्रत्येक वनस्पति

पत्तेया वि य दुविहा णिगोद-सहिदा तहेव राहिया य।
दुविहा, होंति तसा वि य वि-ति-चउरक्खा तहेव पंचरक्खा।।

(126) का.प्रे.

अर्थ- प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं- (1) निगोद सहित, (2) निगोद रहित। त्रस जीव भी दो प्रकार के होते हैं- (1) दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय (2) पंचेन्द्रिय।

भावार्थ-प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं। एक निगोद सहित अर्थात् जिसके आश्रय अनेक निगोदिया जीव रहते हैं। ऐसे प्रत्येक वनस्पति को सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। गोम्मटसार में कहा है-वनस्पतियाँ 7 प्रकार की होती है- मूल बीज, अग्रबीज, पर्वबीज, कंदबीज, स्कंधबीज, बीजरूह और सम्मूर्छन। जिन वनस्पतियों का बीज उनका मूल ही होता है उन्हें मूलबीज कहते हैं। जैसे अदरक, हल्दी वगैरह। जिन वनस्पतियों का बीज उनका उग्र भाग होता है उन्हें अग्रबीज कहते हैं। जैसे नेत्रबाला वगैरह। जिन वनस्पतियों का बीज उनका पर्व भाग होता है उन्हें पर्वबीज कहते हैं। जैसे ईख, बेंत वगैरह। जिन वनस्पतियों का बीज कंद होता है उन्हें कंदबीज कहते हैं। जैसे रतालु, सूरण वगैरह। जिन वनस्पतियों का बीज उनका स्कंध भाग होता है उन्हें स्कंधबीज कहते हैं। जैसे सलई, पलाश वगैरह। जो वनस्पतियाँ बीज से पैदा होती हैं उन्हें बीजरूह कहते हैं। जैसे धान, गेहूँ वगैरह।

और जो वनस्पति स्वयं ही उग आती है वह सम्मूर्छन कही जाती हैं। ये वनस्पतियाँ अनंतकाय अर्थात् सप्रतिष्ठित प्रत्येक भी होती है और अप्रतिष्ठित प्रत्येक भी होते हैं। जिस प्रत्येक वनस्पति की धारियाँ, फांके और गाँठे दिखाई न देती हों, जिसे तोड़ने पर खट से दो टुकड़े बराबर हो जाये और बीच में कोई तार वगैरह न लगा रहे तथा जो काट देने पर भी पुनः उग आये वह साधारण अर्थात् सप्रतिष्ठित प्रत्येक है। यहाँ सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति को साधारण जीवों का आश्रय होने से साधारण कहा है। तथा जिस वनस्पति में उक्त बातें न हो अर्थात् जिसमें धारियाँ वगैरह स्पष्ट दिखाई देती हों तोड़ने पर समान टुकड़े न हो, टूटने पर तार लगा रह जाये आदि, उस वनस्पति को अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर कहते हैं। जिस वनस्पति की जड़, कंद, छाल, कोंपल, टहनी, पत्ते,फूल, फल और बीज को तोड़ने पर खट से बराबर दो टुकड़े हो जाये उसे प्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। और जिसका सम भंग न हो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। तथा जिस वनस्पति के कंद की, जड की, टहनी की, अथवा तने की छाल मोटी हो वह अनंतकाय यानी सप्रतिष्ठित प्रत्येक है। और जिस वनस्पति के कंद वगैरह की छाल पतली हो वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक है। इस तरह श्री गोम्मटसार में सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित वनस्पति की पहचान बतलाई है। अस्तु, अब पुनः मूल गाथा का व्याख्यान करते है। प्रत्येक वनस्पति के दो भेद हैं(1) निगोद सहित, (2) निगोद रहित। अथवा एक सप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर, एक अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर। जिन प्रत्येक वनस्पति के शरीरों को निगोदिया जीवों ने अपना वासस्थान बनाया है उन्हें सप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर कहते हैं। और जिन प्रत्येक वनस्पति के शरीर में निगोदिया जीवों का अवास नहीं है उन्हें अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर कहते हैं। जैसे पके हुए तालफल, नारियल, इमली, आम वगैरह का शरीर। जिनके त्रस नामकर्म का उदय होता है उन्हें त्रस जीव कहते हैं। उनके भी दो भेद हैं- एक विकलेन्द्रिय, एक सकलेन्द्रिय। दोइन्दिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय जीवों को विकलेन्द्रिय कहते हैंः क्योंकि शंख आदि दोइन्द्रिय जीवों के स्पर्शन और रसना दो ही इन्द्रियाँ होती हैं, चिऊंटी, खटमल वगैरह तेइन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण, ये तीन ही इन्द्रियाँ होती हैं। और भौंरा, मक्खी, डांस, मच्छर वगैरह चौइन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार ही इन्द्रियाँ होती हैं। अतः ये जीव विकलेन्द्रिय कहे जाते हैं। मनुष्य,

देव, नारकी, पशु आदि पंचेन्द्रिय जीवों को सकलेन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि उनके स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु और श्रोत्र ये पाँचों इन्द्रियाँ पाई जाती है।

उदये दु वणप्फदिकम्मस्स य जीवा वणप्फदी होंति।
पत्तेयं सामण्णं पदिट्ठिदिदरंति पंत्तेय।।185।।

वनस्पति विशिष्ट स्थावर नामकर्म की उत्तरोत्तर प्रकृति का उदय होने पर जीव वनस्पति कायिक होते हैं। वे दो प्रकार के होते हैं- एक प्रत्येक शरीर और एक सामान्य शरीर।एक के प्रति नियत जो है, वह प्रत्येक हैं अर्थात् एक जीव का एक शरीर। जिनका शरीर प्रत्येक है, वे प्रत्येक शरीर हैं। समान ही हुआ सामान्य। जिनका सामान्य शरीर है, वे सामान्य शरीर अर्थात् साधारण शरीर हैं। उनमें से प्रत्येक शरीर प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित के भेद से दो प्रकार के हैं। यहाँ इति शब्द प्रकारवाची है। जो प्रत्येक शरीर वनस्पति बादर निगोद जीवों के द्वारा आश्रय रूप से स्वीकार किया गया है, वह प्रतिष्ठित है। और जो उनसे आश्रित नहीं है, वह अप्रतिष्ठित है। इस प्रकार उन दोनों में भेद जानना।। 185।।

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंधबीजबीजरुहा।
समुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य।।186।।

जिन वनस्पतियों का बीज उनका मूल होता है; जैसे अदरक, हल्दी वगैरह वे मूलबीज हैं। जिनका बीज उनका अग्रभाग होता है, जैसे आर्यक उदीचि (?) आदि, वे अग्रबीज हैं। जिनका बीज पर्व होता है; जैसे ईख, वेंत वगैरह वे पर्वबीज हैं। जिनका बीज कन्द होता है, जैसे सूरण वगैरह वे कन्दबीज हैं। जिनका बीज स्कन्ध होता है, जैसे पलास, सल्लकी वगैरह वे स्कन्धबीज हैं। जो बीज से पैदा होते हैं, जैसे धान, गेहूँ वगैरह, वे बीजरुह है। सम्मूर्च्छ अर्थात् चारों ओर से आये पुद्गलस्कन्धों से होने वाली वनस्पति सम्मूर्च्छिम है। उनके लिए मूल आदि नियत बीज की अपेक्षा नहीं होती। इस प्रकार परमागम में जो ये प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव कहे हैं, वे अनन्तकाय होते हैं। जिनमें अनन्तकाय अर्थात् अनन्तानन्त निगोद जीवों के शरीर रहते हैं, उन्हें अनन्तकाय अर्थात् प्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं तथा 'च' शब्द से अप्रतिष्ठित प्रत्येक भी होते हैं। जिनका प्रत्येक शरीर प्रतिष्ठित अर्थात् साधारण शरीर से आश्रित होता है, वे प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर हैं। और जिनका प्रत्येक शरीर साधारण

शरीरों से आश्रित नहीं होता, वे अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर होते हैं। वे मूल बीज से लेकर सम्मूर्छिम पर्यन्त जो प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर और अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर जीव कहे हैं, वे भी सम्मूर्छनजन्मवाले ही होते हैं। अर्थात् सम्मूछिंम वनस्पति से यह नहीं समझना चाहिए कि अकेले उन्हीं का सम्मूर्छन जन्म होता है। प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीव के पूर्वोक्त अदरक आदि स्कन्धों में एक-एक में असंख्यात-असंख्यात प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर होते हैं। घनांगुल को दो बार पल्य के असंख्यातवें भाग से 9 बार संख्यात से भाग देने पर जो प्रमाण आता है, उतने क्षेत्र में यदि एक प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर रहता है, तो संख्यात घनांगुल प्रमाण अदरक आदि में कितने रहेंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर लब्ध राशि दो बार पल्य का असंख्यातवाँ भाग और दस बार संख्यात को रखकर परस्पर गुणा करने से जितना प्रमाण होता है, उतने प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर एक अदरक आदि स्कन्ध में रहते हैं। तथा एक स्कन्ध में अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पति जीव यथासम्भव असंख्यात अथवा संख्यात होते हैं। जितने प्रत्येक शरीर होते हैं, उतने ही प्रत्येक वनस्पति जीव होते हैं; क्योंकि उनमें प्रत्येक शरीर में एक-एक जीव के होने का नियम है।। 186।।

गुढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरूहं च छिण्णरूहं।
साहारणं सरीरं तव्विवरीयं चपत्तेयं।। (187)

साधारण शरीर वनस्पति जीव का स्वरूप जिस प्रत्येक शरीर वनस्पति के ऊपर बाह्य स्नायु, भीतर में फाँकों की सन्धियां, पोरियाँ जैसे ईख में, अदृश्य हों, प्रकट नहीं हुई हों, तोड़ने पर बिल्कुल समान रूप से दो टुकड़ों टूट जाये, तोड़ने पर दोनों टुकड़ों के बीच में कोई तार-सा लगाव न हो, तथा काटने पर भी उग आवे तो वह साधारण है। साधारण जीवों के द्वारा आश्रित होने से प्रतिष्ठित प्रत्येक को उपचार से साधारण कहा है। यहाँ वैसे साधारण का अर्थ प्रतिष्ठित शरीर हैं। जो इससे विपरीत है अर्थात् जिसके सिर आदि प्रकट हैं, वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर है; जैसे तालफल, नारियल, इमली वगैरह। गाथा का 'च' शब्द इस भेद का सूचक है।। 187।।

मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबीजे।
समभंगे सदिणंता असमे सदि होंति पत्तेया। (188)

जिन प्रत्येक वनस्पतियों के मूल, कन्द,छाल,कोंपल, अंकुर, छोटी टहनी, बड़ी डाल,पत्ते,फूल,फल और बीज यदि तोड़ने पर इनका समभंग होता है, तो अनन्तकाय अर्थात् प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर हैं और यदि समभंग नहीं होता, अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर है।।188।।

कंदस्स व मुलस्स व सालाखंधस्स वावि बहुलतरो।
छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया दू तणुकदरी।। 189।।
बीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमदि सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमराए।। 190।।

जिस प्रत्येक वनस्पति के कन्द, मूल, क्षुद्र, शाखा या स्कन्ध की छाल मोटी हो तो वे वनस्पति अनन्तकाय होती है अर्थात् निगोद जीवों से सहित प्रतिष्ठित प्रत्येक होती है। किन्तु जिनकी छाल पतली होती है, वे वनस्पतियाँ अप्रतिष्ठित प्रत्येक होती है।। 189।।

बीज अर्थात् मल से लेकर बीज पर्यन्त, योनिभूत अर्थात् जीवों की उत्पत्ति के योग्य हो जाने पर वही जीव जो उसमें वर्तमान है, मरकर अर्थात् अपनी आयु के क्षय हो जाने से शरीर को छोड़कर पुनः उसी में उत्पन्न होता है। अथवा अन्य शरीर में रहने वाला जीव अपनी आयु के क्षय हो जाने से यह शरीर को छोड़कर अपने योग्य मूल आदि बीज पर्यन्त में उत्पन्न होता है । जो भी मूली आदि प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर रूप से प्रतिबद्ध हैं, वे भी अपनी उत्पत्ति के प्रथम समय में अन्तर्मुहूर्त काल तक साधारण जीवों से अप्रतिष्ठित ही होते हैं।।190।।

सहारणोदएण णिगोदसीरा हवंति सामण्ण।
ते पुण दुविहा जीवा बादरसुहुमत्ति विण्णेया।। 191।।

विशेषार्थ - मूल से लेकर बीज पर्यन्त वनस्पति में जो जीव पहले था, उसकी आयु पूरी होने से मर गया। किन्तु उस वनस्पति की उत्पादन शक्ति नष्ट नहीं हुई है, तो बाह्य कारण मिलने पर वही जीव जो पहले उसमें प्रत्येक शरीर रूप में जीकर मर गया था, पुनः उसी मूलादि बीज को शरीर बनाकर उत्पन्न होता है अथवा यदि वह पूर्व शरीर का स्वामी जीव अन्यत्र उत्पन्न हो जाता है, तो अन्य जीव आकर उसमें उत्पन्न होता है। तथा जो प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है, वह भी अपनी उत्पत्ति के

प्रथम समय में या अन्तर्मुहूर्त काल तक अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहती है। पीछे जब निगोद जीव उसके आश्रित हो जाते हैं, तब प्रतिष्ठित हो जाती है।

साधारण नाम कर्म के उदय से जीव निगोद शरीर वाले होते हैं। 'नि' अर्थात् नियत गां अर्थात् भूमि, क्षेत्र या निवास अनन्तानन्त जीवों को देता है, वह निगोद है। निगोद शरीर जिनका है, वे निगोद शरीर है, इस प्रकार लक्षण से सिद्ध है। वही सामान्य अर्थात् साधारण शरीर होते हैं। उनके दो भेद हैं- बादर और सूक्ष्म। इनका लक्षण पहले कहा है।।191।।

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं।। 192।।
जत्थेक्क मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं।
वक्कमइ जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थणंताणं।।193।।

साधारण नाम कर्म के उदय के वशीभूत अनन्त जीवों का उत्पन्न होने के प्रथम समय में आहारपर्याप्ति और इसका कार्य आहारवर्गणा के आये हुए पुद्गल स्कन्धों का खल और रसभागरूप में परिणमन साधारण अर्थात एक समान तथा एक ही काल में होता है। तथा शरीरपर्याप्ति और उसका कार्य आहारवर्गणा के आये पुद्गलस्कन्ध का शरीर के आकार रूप से परिणमन साधारण होता है। इन्द्रियपर्याप्ति और उसका कार्य स्पर्शन इन्द्रिय के आकार रूप से परिणमन तथा श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और उसका कार्य अच्छ्वास-निश्वास का ग्रहण समान और समान काल में होता है। तथा प्रथम समय में उत्पन्न होने वालों की तरह उसी शरीर में द्वितीय-तृतीय आदि समय में उत्पन्न अनन्तानन्त जीवों का पूर्व-पूर्व समय में उत्पन्न अनन्तानन्त जीवों के साथ आहारपर्याप्ति वगैरह सब समान और समान काल में होती है। यह साधारण जीवों का लक्षण पूर्वाचार्यों ने कहा है। यहाँ 'च' शब्द से शरीर पर्याप्ति और इन्द्रियपर्याप्तिका ग्रहण किया है।।

जिस निगोद शरीर में जब एक जीव अपनी आयु के क्षय होने से मरता है, तभी उस निगोद शरीर में समान आयु वाले अनन्तानन्त जीव एक साथ ही मरते हैं। जिस निगोद शरीर में जब एक जीव उत्पन्न होता है, तब उस निगोद शरीर में समान आयु वाले अनन्तानन्त जीव एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उत्पत्ति और मरण का समकाल में होना भी साधारण का लक्षण कहा है। द्वितीय आदि समय में

उत्पन्न अनन्तानन्त जीवों का भी अपनी आयु पुरी होने पर एक साथ ही मरण जानना। इस प्रकार एक निगोद शरीर में प्रतिसमय अनन्तानन्त जीव एक साथ ही मरते हैं और एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। ऐसा तब तक होता रहता है, जब तक निगोद को उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात सागरोपम कोटि-कोटि मात्र जो कि असंख्यात लोक मात्र समय प्रमाण है, समाप्त हो।

यहाँ कुछ विशेष कथन है- एक बादर निगोद शरीर में या सूक्ष्म निगोद शरीर में अनन्तानन्त साधारण जीव या तो केवल पर्याप्त ही उत्पन्न होते हैं या एक शरीर में केवल अपर्याप्त ही उत्पन्न होते हैं। दोनों एक ही शरीर में उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि उनके एक समान कर्म के उदय का नियम है। एक साधारण जीव के कर्मों को ग्रहण करने की शक्तिरूप योग के द्वारा गृहीत पुद्गलपिण्ड अनन्तानन्त साधारण जीवों का भी उपकारी होता है उस जीव का भी उपकारी होता है। इसी तरह अनन्तानन्त साधारण जीवों की योगशक्ति के द्वारा गृहीत पुद्गल पिण्ड एक साथ संयुक्त रूप से एक जीव का भी उपकारी है और अनन्तानन्त साधारण जीवों का भी उपकारी होता है। एक बादर निगोद शरीर में अथवा सूक्ष्म निगोद शरीर में यथाक्रम पर्याप्त बादर निगोद जीव और सूक्ष्म-निगोद जीव भव के प्रथम समय में अनन्तानन्त उत्पन्न होते हैं। दूसरे समय में उससे असंख्यात गुणा हीन उत्पन्न होते है। इस प्रकार निरन्तर आवली के असंख्यातवें भाग काल पर्यन्त प्रतिसमय असंख्यात गुण हीन क्रम से उत्पन्न होते हैं। उसके बाद जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातवें भाग मात्र काल का अन्तर देकर पुनः जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातवे भाग मात्र काल तक निरन्तर निगोद शरीर में असंख्यात गुण हीन क्रम से साधारण जीव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार निरन्तर या सान्तर के क्रम से निगोद शरीर में तब तक जीव उत्पन्न होते हैं जब तक प्रथम समय में उत्पन्न साधारण जीव का सबसे जघन्य निर्वृत्यापर्याप्तकाल शेष रहता है। तथा प्रथम समय आदि में उत्पन्न सर्वसाधारण जीवों की आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति की पूर्ति अपने-अपने योग्य काल में होती है।। 193।।

बादर निगोद शरीरों का आधार : बादर निगोद जीवों के शरीर की संख्या लाने के लिए, उदाहरणपूर्वक दो गाथाओं से यह कथन करते हैं। स्कन्ध अर्थात्

प्रतिष्ठित प्रत्येक जीव के शरीर असंख्यातलोक है अर्थात् अपने योग्य असंख्यात से लोक के प्रदेशों को गुणा करने पर परिमाण हो, उतने हैं। तथा जैसे जगत श्रेणी के घन प्रमाण लोकाकाश के प्रदेशों में अनन्तानन्त पुद्गलों का अवगाह होता है, या एक निगोद जीव के कार्मण शरीर में अनन्तानन्त निगोद जीवों के कार्मण शरीर का अवगाहन होता है, वैसे ही एक-एक स्कन्ध में असंख्यात लोक मात्र अण्डर रहते हैं। ये अण्डर प्रत्येक जीव शरीर के विशेष अवयवरूप होते हैं। उसी तरह एक-एक अण्डर में असंख्यात लोक मात्र आवास होते हैं। वे भी प्रत्येक जीव शरीर के भेद हैं। एक-एक आवास में असंख्यात लोक मात्र पुलवियाँ है। वे भी प्रत्येक जीव शरीर के विशेष भेद हैं। एक-एक पुलवि में असंख्यात लोक मात्र बादरनिगोद जीवों के शरीर होते हैं। इस प्रकार ये अण्डर आदि उत्तरोत्तर नीचे के स्कन्ध आदि की योनि हैं। अर्थात् नीचे कहे भेदों की संख्या की उत्पत्ति का कारण ऊपर के भेद हैं। यदि एक-एक स्कन्ध में असंख्यात लोक मात्र अण्डर हैं, तब असंख्यात लोक मात्र स्कन्ध में कितने अण्डर हुए; इस प्रकार त्रैराशिक करने पर असंख्यात लोक से गुणित असंख्यात लोक प्रमाण अण्डर होते हैं। इसी तरह आवास आदि के सम्बन्ध में भी त्रैराशिक करने पर अण्डर से असंख्यात लोक गुणे आवास होते हैं। आवास से असंख्यात लोक गुणे पुलवी होते हैं, उनसे असंख्यात लोक गुणे बादर निगोद होते हैं।। 194।।

स्कन्धों का दृष्टान्त जम्बूद्वीप हैं। अण्डरों का दृष्टान्त भरत आदि क्षेत्र हैं। आवासों का दृष्टान्त कोशल आदि देश हैं। पुलवीका दृष्टान्त साकेत आदि नगर हैं और बादर निगोद शरीरों का दृष्टान्त साकेत आदि नगरों के घर हैं। 'वा' शब्द दृष्टान्त के अर्थ में है। अर्थात् जैसे मध्य लोक में जन्बूद्वीप आदि द्वीप है, वैसे ही लोक में स्कन्ध है। जैसे एक जम्बूद्वीप में भरत आदि क्षेत्र हैं, वैसे ही स्कन्ध में अण्डर हैं। जैसे भरत क्षेत्रों में कोशल आदि देश है, वैसे ही अण्डर में आवास हैं। जैसे कोशल देश में अयोध्या आदि नगर हैं, वैसे ही आवास में पुलवियाँ हैं। तथा जैसे अयोध्या में अनेक घर हैं, वैसे ही पुलवी में बादर निगोद शरीर है। इसी तरह अन्य भी दृष्टान्त जानना।।

एक निगोद शरीर में वर्तमान जीव द्रव्यप्रमाण से अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा संख्या से अनन्तानन्त हैं। अर्थात् सर्वजीव राशि के अनन्त बहुभाग मात्र संसारी जीवों की राशि है। उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव एक निगोद शरीर में सदा विद्यमान रहते

हैं। वे अनन्तानन्त हैं, ऐसा परमागम में कहा है। तथा वे सर्व जीवराशि के अनन्तवें भाग मात्र जो अनादिकाल से हुए सिद्ध जीव हैं, उनसे अनन्तगुणे हैं। तथा समस्त अतीत काल के समयों से भी अनन्तगुणे हैं। इससे काल की अपेक्षा एक शरीर में निगोद जीवों की संख्या कही। क्षेत्र और भाव की अपेक्षा उनकी संख्या आगम के अनुसार कहते हैं। समस्त आकाश के प्रदेशों से और केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों से अनन्तगुणा हीन हैं। तथा लोककाश के प्रदेशों से और सर्वावधिज्ञान के विषयभूत भावों से अनन्त गुणित हैं। परमागम में उनकी संख्या को जिन भगवान् के द्वारा दृष्ट कहा है, इसलिए कोई विरोध नहीं हैं।

शंका-आठ समय और छह मास में छह सौ आठ जीवों के कर्मों का क्षय करके सिद्ध होने पर सिद्ध राशि की वृद्धि देखी जाती है और संसारी जीवराशि की हानि देखी जाती है। तब कैसे सर्वदा एक शरीर में रहने वाले निगोद जीव सिद्धों से अनन्तगुणे हो सकते हैं ? तथा काल के समयों का समूह सर्व जीव राशि से अनन्तगुणा है। अतः अपने योग्य अनन्त भाग काल बीतने पर संसारी जीव राशि का क्षय और सिद्ध राशि की वृद्धि सुघटित है।

समाधान-उक्त शंका ठीक नहीं है, क्योंकि केवलज्ञान रूप दृष्टि से केवलियों के द्वारा और श्रुतज्ञानरूप दृष्टि से श्रुतकेवलियों के द्वारा सदा देखा गया भव्य संसारी जीव राशि का अक्षयपना अति सूक्ष्म होने से तर्क का विषय नहीं है। तथा जो तर्क प्रत्यक्ष और आगम से बाधित है, वह प्रमाण नहीं है। जैसे अग्नि शीतल होती है, क्योंकि द्रव्य है। जो-जो द्रव्य होता है, वह शीतल होता है, जैसे जल। धर्म मरने पर दुःख देता है; पुरुष के आश्रित होने से जो-जो पुरुष के आश्रित होता है, वह-वह दुःखदायी होता है, जैसे अधर्म। ये तर्क प्रत्यक्ष और आगम से बाधित हैं।

शंका- तब तर्क से बाधित आगम को कैसे प्रमाण माना जा सकता है ?

समाधान- नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण और अन्य तर्कों से सम्भावित आगम के असंवादि होन से उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है। तथा आपका तर्क प्रत्यक्ष और आगम का विरोधी होने से अप्रमाण है।

शंका- तब वह तर्क कौन-सा है। जिससे आगम का प्रामाण्य निश्चित है ?

समाधान-समस्त भव्य संसारी जीव राशि अनन्तकाल बीतने पर क्षय को प्राप्त नहीं होती, क्योंकि वह अक्षय अनन्त प्रमाण हैं। जो-जो अक्षयानन्त होता है, वह-वह अनन्तकाल में भी क्षय को प्राप्त नहीं होता। जैसे इतने हैं, इस रूप से परिमित्त होने पर भी तीन काल के समय कभी समाप्त नहीं होते; या सब द्रव्यों की पर्याय अथवा अविभाग प्रतिच्छेदों का समूह कभी समाप्त नहीं होता। इस प्रकार अनुमान का अंग जो तर्क है, उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है।

शंका-तब आपको हेतु भी साध्य के समान हुआ, क्योंकि साध्य भी अक्षयानन्त है और हेतु भी वही है।

समाधान-नहीं, क्योंकि भव्यराशि का अक्षयानन्तपना आप्त प्रणीत आगम से सिद्ध है, अतः साध्यसम नहीं है। अधिक कहने से क्या, सब तत्त्वों के प्रवक्ता पुरुष के आप्त सिद्ध होने पर उसके वचनरूप आगम का प्रमाण सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थों में सुप्रसिद्ध है। इसलिए उनके द्वारा उपदिष्ट आगम में कहे हुए पदार्थों के सम्बन्ध में मेरा चित्त शंका रहित है। वृथा बकवास करने से क्या लाभ है? आप्त की सिद्धि तो 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः' इत्यादि वेदवाक्य से 'प्रणम्य शम्भुं' इत्यादि नैयायिकों के वाक्य से, 'बुद्धो भवेयम्', इत्यादि बौद्ध वाक्य से और 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' इत्यादि जैनवाक्य से तथा दूसरे वादियो के अपने-अपने मत के देवता के स्तवनरूप वाक्यों से सामान्य से स्वीकृत ही है। विशेष रूप से सर्वज्ञ वीतराग स्याद्वादी आप्तको ही युक्ति से भी सिद्ध किया है। विस्तार से उसकी सिद्धि स्याद्वाद के तर्कशास्त्रों से जाननी चाहिए। इस प्रकार बाधक प्रमाण के सुनिश्चित रूप से असम्भव होने से आप्त और उसके द्वारा उपदिष्ट आगम सिद्ध है। अतः उसमें कहे हुए मोक्ष तत्त्व और बन्ध तत्त्व को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार एक शरीर में निगोद जीव सिद्धों से अनन्तगुणे होते हैं, यह सिद्ध है।।

नित्यनिगोद का लक्षण जिन निगोद जीवों ने दोइन्द्रिय आदि त्रसों के परिणाम अर्थात् पर्याय को कभी भी प्रायः करके प्राप्त नहीं किया, वे अनन्तानन्त जीव अनादि काल से निगोद भव को ही भोगते हुए सर्वदा नित्यनिगोद होते हैं। वे भाव अर्थात् निगोद पर्याय के, कलंक अर्थात् उसके योग्य कषाय के उदय से प्रकट हुई अशुभ लेश्यारूप संक्लेशसे प्रचुर अर्थात् अत्यन्त सम्बद्ध होते हैं। इस प्रकार के नित्यनिगोद

जीव निगोदवास अर्थात् निगोद की अवस्थितियों को कभी भी नहीं छोड़ते। इस कारण से निगोद भव के आदि और अन्त से रहित होने से अनन्तानन्त जीवों के नित्यनिगोदपने का समर्थन होता है। नित्य विशेषण से यह सूचित होता है कि चतुर्गति निगोदरूप सादि सान्त निगोद भववाले कुछ जीव अनित्यनिगोद होते हैं। 'णिच्चचदुग्गतिणिगोद' इत्यादि परमागम में निगोद जीवों के दो प्रकार सुप्रसिद्ध हैं। एकदेश के अभाव से विशिष्ट सकल अर्थ के वाचक प्रचुर शब्द से यह अर्थ प्रतिपादित हुआ जानना कि कदाचित् छह महीना आठ समय के भीतर चतुर्गति राशि से निकलकर छह सौ आठ जीवों के मुक्ति जाने पर उतने ही जीव नित्यनिगोद भव को छोड़कर चतुर्गति भव में आते हैं।।

स्पर्शन और रसना त्रसकाय दो इन्द्रियों से, स्पर्शन, रसना, घ्राण तीन इन्द्रियों से, स्पर्शन,रसना,घ्राण,चक्षु चार इन्द्रियों से तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत इन पाँच इन्द्रियों से सहित जो जीव लोक में हैं, वे जीव त्रसकाय हैं। ऐसा वर्धमान तीर्थंकर परमदेव के उपदेश से अविच्छिन्न गुरु परम्परा से आगत सम्प्रदाय से हमने श्रुत के अर्थ का अवधारण करके कहा है सो जानना।।

मुझे अनुभव हो रहा है-आध्यात्मिक रहित प्राय: भारतीय

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल: छोटी छोटी गैया.....)

धीरे-धीरे मुझे हो रहा अनुभव,
आध्यात्मिक समझना नहीं सभी को सुलभ
रीति-रिवाज या रूढि-परम्पराओं को,
आध्यात्मिक मानते कट्टर-संकीर्णता को।। (1)

विदेशी कुछ लोग यथा जानते आध्यात्मिक,
उतना भी न जानते भारत के लोग
टेप रिकॉर्ड सम कुछ बोलते आध्यात्मिक
श्रद्धा-प्रज्ञा-आचरण से शून्य आध्यात्मिक।। (2)

ख्याति पूजा लाभ व वर्चस्व हेतु,
प्रदर्शन करते कुछ शोषण हेतु।

सांसारिक सुख हेतु करते बाह्य धर्म,
श्रद्धा-प्रज्ञा-अनुभव से आध्यात्मिक शून्य।।(3)।।

आध्यात्मिक आरंभ होता आत्मश्रद्धा से,
स्वशुद्ध आत्मा के विश्वास होने से,
इससे बढ़ते ज्ञान व वैराग्य,
उदार-पावन व समता भाव।। (4)

आत्मगौरव व सोऽहं 'अहं' भाव होते,
दीन-हीन-अहंकार-ममकार नशते।
रागद्वेष मोह ईर्ष्या तृष्णा नशते,
पर निन्दा-अपमान-वैरत्व नशते।। 5।।

सत्ता-सम्पत्ति-व-प्रसिद्धि-डिग्री में
तन-धन-जन व मान-नाम में।
क्षीण होती आसक्ति अनात्म होने से,
किन्तु उक्त गुण न पाता हूँ जनों में ।। (6)।।

आत्मगौरव रहित अहंकारी वे होते,
अनुभव रहित देखा देखी से चलते।
क्षुद्र-संकीर्ण व स्वार्थ पर भी होते,
पवित्र भाव न जानते-मानते-करते।। (7)

विनम्र सत्यग्राही गुणानुकरण न होते,
आध्यात्मिक गुण-गुणी को दोष/दोषी मानते।
शोध-बोध-अनुभव से रहित होते,
बगुला व तोता सम व्यवहार करते।। (8)।।

कुछ मिथ्यादृष्टि भोगभूमिज सम,
होते हैं भद्ररूपी सरल व विनम्र।

फैशन-व्यसनों से होते हैं वे दूर,
आत्मश्रद्धान बिन न होते धार्मिक।। 9।।

व्यापार सम धर्म का करते विनिमय,
धन नाम हेतु करते वे आयोजन(प्रयोजन)।
आत्मा की श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या-विहिन,
नेता-अभिनेता सम करते परिणाम (अभिनय)।। 10।।

सरल-सहजता व क्षमा-सहिष्णुता,
निस्पृह-निराडम्बर व वीतरागता।
आत्माविशुद्धि-आत्मानुभूति से रहते रिक्त
आत्मा को परमात्मा बनाने में न लगाते चित्त।। 11।।

आध्यात्मिक भाव-व्यवहार-कथन को,
विपरीत मानते व बोलते अन्य को।
इन सब कारणों से मुझे हो रहा अनुभव,
आध्यात्मिक से विपरीत प्रायः भारतीय।। (12)।।

भारत की दुर्दशा के ये प्रमुख कारण,
आध्यात्मिक जागृति से होगा निवारण।
हर क्षेत्र में आध्यात्मिक जागृति हेतु
'कनक' का काव्य स्व-परकल्याण हेतु।। (3)।।

सागवाड़ा 2.4.2018 रात्रि 1:32

महावीर जयन्ती उपलक्ष्य में स्व-सम्बोधनार्थ
जल से मुझे शिक्षा मिले

आचार्य कनकनन्दी

(चाल:- अच्छा सिला दिया.....)

जल से मुझे शिक्षा मिले बहुगुणी बन! द्रव्यक्षेत्रकाल भाव योग्य साधना कर!

सरल-तरल होकर भी गतिशील बन! नानाविध बाधाओं को पारकर चल।। (1)

यथा पात्र (आधार) तथा आकार बनता है जल, तरल गुण के कारण ऐसा बने जल।
तथाहि मैं बनूँ समायोजना गुणशील, समता-सहिष्णुता-संतोष गुणशील।। (2)

तापमान अनुसार बहुरूप जल, तरल-बर्फ, गैस रूप में जल।
अनेकान्तमय भाव स्याद्वाद वचन, अनेकता में एकतामय उदार।। (3)

गतिशील जल सम बनूँ प्रगतिशील, गतिशील जल रहता स्वच्छ व मधुर,
संकीर्ण-कटूरता व रुढिवाद छोड, उदारगुणग्राही व सहज-सरल।। (4)

स्वच्छ जल से साफ होते विविध मल, स्वयं स्वच्छ बनकर बनाऊँ निर्मल।
अस्वच्छ जल भी बाष्प बन बने निर्मल, साधना से दोष दूर से बनूँ मैं निर्मल।। (5)

विविध रंग से रंगीन बनता है जल, अनेक गुणगणों से बनूँ प्रखर।
जल यथा दशों दिशाओं में डालता बल, सर्वांगिण विकास हेतु बनूँ यत्नशील।। (6)

जल यथा स्वपथ का करता निर्माण, पर्वत-कानन को भी भेद कर करता प्रयाण।
तथाहि स्वावलम्बी व स्वतंत्र बनकर, आत्महित हेतु बनूँ मैं गतिशील।। (7)

सरल-तरल जल में यथा बहुगुण, सरल-सहज, निर्मल से पाऊँ बहुगुण।
सलिल-नीर-वारि, जीवन, तोय ववय, पानी,अम्बु, अंग, उदक भी आप।। (8)

तरल होकर भी कठोर अकाट्य जल, वाष्प बनकर भी शक्तिशाली है अपार।
जड-जल होकर भी जीवन प्राणी के, हजारों मिटर चढ जाता है वृक्ष में।। (9)

पानी सम मूल्यवान् नहीं सोना, हीरा, पानी रहित जीवन जीने वाला जाना।
भौतिकता से परे बनूँ मैं अमूल्य, आध्यात्मिक गुण पाना 'कनक' का लक्ष्य।। (10)

सागवाडा 29.3.2018 महावीर जयन्ती रात्रि 8:35

सबसे चमत्कारिक द्रव है पानी
विज्ञान के विपरीत है व्यवहार

एकमात्र पदार्थ जो सामान्य तापमान पर द्रव, ठोस और गैस में पाया जाता है।

पानी की आणविक रचना के हिसाब से इसे मायनस 80 डिग्री सेल्सियस पर उबलना चाहिए और बर्फ को मायनस 100 डिग्री पर पिघलना चाहिए पर ये शून्य डिग्री पर पिघलता और 100 डिग्री पर उबलता है। ऐसा नहीं होता तो पानी गैस होता और धरती पर जीवन संभव नहीं होता।

इसमें अन्य द्रवों से कहीं अधिक पदार्थ घुलते हैं। इसके कारण जलाशयों, पौधों और प्राणियों के शरीर में खनिज और फालतू पदार्थों को लाने ले जाने लायक बनता है।

पानी गरम होने के पहले बहुत गर्मी सोखता है। लेकिन, बर्फ में आधी ही उष्मा लगती है, इसलिए बर्फ जल्दी पिघल जाता है। इसके कारण यह धरती पर तापमान को स्थिर रखता है।

पानी के सतह पर बहुत तनाव होता है। इससे यह पतली परत में फैलने की बजाय बूंद में इकट्ठा होता है। इस गुण के कारण यह सेंकड़ों फीट ऊंचे वृक्षों की नलियों में भी चढ़ जाता है।

गर्मी पाकर पानी सिकुड़ता है। पानी चार डिग्री सेंटीग्रेड तापमान तक सिकुड़ता है यानी बर्फ की तुलना में इस तापमान पर पानी का घनत्व अधिक होता है। यह भारी पानी सतह की ऑक्सिजन लेकर जलाशयों के तल में जाता है और वहां से विषैली गैसों व पदार्थों को ऊपर धकेलता है। इससे जलाशय ऑक्सीजन और पोषक तत्त्वों से भरपूर बने रहते हैं वरना वहां जीवन संभव नहीं होता।

गरम पानी, ठंडे पानी से हल्का होता है। इसके कारण गरम पानी झीलों, नदियों, तालाबों और समुद्र की सतह पर बहता है, जबकि नीचे का हिस्सा गरम होने से बच जाता है, जिससे जीव गर्मी में मारे जाने से बच जाते हैं।

बढ़ते शहरों में बुनियादी सुविधाएं नहीं, जानते हैं शहरों में क्या कड़वा सच छिपा हुआ है...

देश में एक भी शहर ऐसा नहीं जहां हफ्तेभर 24 घंटे पानी आता हो और जो पानी मिल भी रहा है उसमें से 60% तक बर्बाद हो जाता है

शहर तेजी से बढ़ रहे हैं। देश में एक भी शहर ऐसा नहीं है, जहां पानी की सप्लाई 24 घंटे की हो। और तो 40 से 60 % पानी व्यर्थ बहा दिया जाता है। बिजली के मामले में भी यही स्थिति है। इलाज के मामले में देश में सिर्फ तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक के कुछ शहरों में ही स्थिति ठीक है। बिहार में तो बच्चों का आवश्यक टीकाकरण ही नहीं किया जाता है। बिना बुनियादी सुविधाओं और फाइनेंसिग के शहरीकरण एक बड़ी चुनौती है। अगले 15 साल में देश में शहरी क्षेत्र 35% से बढ़कर 40% तक हो जाएगा। योजना और नियमों में गलत अनुमानों के कारण ग्रोथ निष्क्रिय हो रही है। बुनियादी सुविधाओं को जुटाने में किया जा रहा सरकारी खर्च व्यर्थ गंवाया जा रहा है। जानते हैं शहरों में क्या कड़वा सच है-

पानी और बिजली : देश में किसी भी शहर में 24 घंटे पानी की उपलब्धता नहीं है। सिर्फ 50% से कम शहरी आबादी को पानी मिल पाता है। 40 से 60% पानी व्यर्थ में बह जाता है। किसी भी शहर में पानी की गुणवत्ता अच्छी नहीं कहीं जा सकती। बिजली की बात करें तो गुजरात में ही 24 घंटे बिजली मिलती है। अधिकांश राज्यों की राजधानी में हमेशा बिजली मिलती है, लेकिन अन्य शहरों में नहीं।

गंदगी से रोग प्राथमिक स्वास्थ्य : भारत में बीमारियों की बड़ी वजह गंदगी है। मुंबई जैसे शहर में 25% आबादी खुले में शौच करती है। बैक्टीरिया के कारण रोग बहुत बढ़ते हैं। पेयजल, सीवरेज जैसी बुरी स्थिति प्राथमिक स्वास्थ्य के मामले में नहीं है, फिर भी तमिलनाडु, केरल,कर्नाटक और महाराष्ट्र के कुछ शहरों में ही इस तरह की सुविधाएं पर्याप्त हैं। बड़ी संख्या में बच्चे उन बीमारियों से पीड़ित है, जिन्हें टीकाकरण करके रोका जाता है।

सबसे ज्यादा वाहनों वाला दिल्ली : शहरों में मध्यमवर्ग में जिनकी प्रति व्यक्ति आय मामूली ज्यादा है, वे कार रखते हैं। गांवों में बाइक पहली पसंद है। दुनिया में सबसे ज्यादा वाहनों वाले शहर के रूप में दिल्ली जाना जाता है। गंभीर ट्रैफिक जाम यहां आम है। रोड सिस्टम की खराब डिजाइन इसका प्रमुख कारण है।

दोषी मास्टर प्लान : शहरीकरण की विफलता में सबसे बड़ी भूमिका मास्टर प्लान की है। यह केवल शहरों में बनने वाले भवनों के स्थान का लेआऊअ बताता है। ये इस तरह का सिमुलेशन नहीं कर पाता है कि कितना ट्रैफिक किसी अमुक स्थान पर बढ़ेगा और इसका निराकरण क्या है?

चीन से हम काफी पीछे : आम बात ये है कि चीन के मुकाबले हमारी प्रति व्यक्ति आय की ग्रोध भी बहुत कम है। जब से देश में बदलाव आया है, शहरों की ओर लोग आकर्षित हो रहे हैं। बेंगलुर दिल्ली सूरत व अन्य शहारों में गांवों से लोग आते जा रहे हैं। लेकिन ये भी चीन के मुकाबले बहुत कम है। इसका कारण ये है कि गांवों में खेती 12% कम हो गई है।

नई बात ये आई सामने - देश के पूर्वी भाग में एक नई बात देखने को मिली कि कोलकात्ता के सबसे बड़े शहर होने के बाद भी मझले शहर जैसे लखनऊख इलाहबाद और भुवनेश्वर में कोलकात्ता की तुलना में तेजी से शहरीकरण हुआ। उत्तर पश्चिम में जयपुर, भोपाल,नासिक बड़े शहर में बदल गए।उत्तर पश्चिम व दक्षिण पश्चिम भाग पूर्व के मुकाबले 1992 के बाद तेजी से बढ़ा।

मेरी स्व-आध्यात्मिक शक्ति प्रगट हेतु

आचार्य कनकनन्दी

(चालः- भातुकली (मराठी)... 2 तुम दिल की ...)

आत्मा में तेरी है अनन्त शक्ति, प्रगट करो तू अपनी शक्ति।
राग द्वेष मोह क्षय करो तू, प्रगट होगी तेरी अनन्त शक्ति।। धृ.
इस हेतु करो ध्यान-अध्ययन, इस हेतु ही करो मनन-चिन्तन।
इस हेतु ही करो तपश्चरण इस हेतु ही करो एकान्त मौन।।

इस हेतु ही त्यागो आर्तध्यान ओ३३३[2] इस हेतु ही त्यागो रौद्रध्यान।
इस हेतु ही करो धर्मध्यान, इस हेतु करो / (चाहो) शक्लध्यान।।(1)

संकल्प - विकल्प-संक्लेश त्यागो, ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागो।
आकर्षण-विर्कषण-द्वन्द्व त्यागो, ईर्ष्या घृणा तृष्णा वैर त्यागो।।
आत्म स्वभाव को सदा ही ध्याओ ओ३३३[2] विभाव भावों को सदा ही त्यागो
कट्टर-संकीर्ण भावों को त्यागो, उदार-सहिष्णु भावों को पाओ (2)

ढोंग-पाखण्ड-दंभ त्यागो, सरल-सहज-पावन बनो।
निस्पृह-निराडम्बर-निर्मल बनो, कुटिल-धूर्तता विकार त्यागो।।
पर निन्दा-पर प्रपंच त्यागो ओ३३३[2] वर्चस्व-प्रतिस्पर्द्धा विभाव त्यागो।
स्वयं को निच्छल-निश्चल करो, आत्मनिर्भर शील अनुशासी बनो।। (3)

स्वयं के द्वारा ही स्वयं को वरो, स्वयं में ही स्वयं को लीन करो।
इससे तेरी शक्ति होगी प्रगट, समस्त बन्धन होंगे विनाश।।
तिल से तैल तथा होता प्रगट ओ३३३[2] दुग्ध से घृत यथा होता प्रगट।
काष्ट से यथा अग्नि होती प्रगट, तेरी शक्ति तुझसे होगी प्रगट।। (4)

ऐसे ही बनते अरिहंत-सिद्ध, अनन्त गुण गण होते प्रगट।
वे होते शुद्ध-बुद्ध आनन्द कन्द, अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य।।
ऐसी ही शक्ति तुझमें स्थित ओ३३३[2] प्रगट करो तेरे आत्मवीर्य।
यह ही तेरा है परमपुरुषार्थ, इससे बनोगे परमात्म स्वरुप।। (5)

इस हेतु ही आत्मन/(कनक) बना श्रमण, प्रभु-विभु बनना अन्तिम ध्येय।
सांसारिक वैभव न तेरा लक्ष्य, सांसारिक वैभव कर्मज-क्षणीक।।
ऐसा लक्ष्य बिन सभी धर्म व्यर्थ ओ३३३[2] आत्मा को परमात्मा बनना परमानन्द।
स्वचिन्तन-ध्यान से मिले आनन्द, ध्येय प्राप्ति से मिलेगा अक्षय आनन्द (6)

अन्यथा अन्य शक्ति से न मिले आनन्द, रावण-कंस समशक्ति से नहीं आनन्द।
यह है परम आध्यात्मिक रहस्य, 'कनक' का लक्ष्य आध्यात्मिक आनन्द।। (7)

स्व पुरुषार्थ से मिलती है शान्ति-मुक्ति

(प्रोग्राम के अनुसार मिलता परिणाम)

(चाल:- परदेशियों से न अँखिया ...)

आत्मन् !(कनक) यदि तुम्हें शान्ति जो पाना, भावना की सदा तू पावन ही रखना।
दृष्टि के अनुसार होती सृष्टि, जैसी होती मति वैसी होती गति।। (1)

कारण के अनुसार ही होता कार्य, भाव के अनुसार ही बन्धता कर्म।
लक्ष्यानुसार गति से मिलता लक्ष्य, सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्र से मिलता मोक्ष।। (2)

संकल्प अनुसार मिलती सफलता, प्रोग्राम अनुसार तथा कम्प्युटर कार्यक्षमता।
तथाहि जो तेरा प्रोग्राम शान्ति/(मोक्ष) के हेतु, नदी पार करने हेतु यथा सेतु है हेतु।। (3)

आत्मविश्वास करो तुम स्वयं दृढ़ता से, आत्माान भी करो हर दृष्टि से।
भावना-अनुप्रेक्षा व ध्यान-अध्ययन, मनन-चिन्तन करो तू लक्ष्य प्रमाण।। (4)

सतत ये करो आत्मानुभव से, विभाव-विघ्न दूर होंगे आत्म प्रयास से।
जिससे आत्म-विशुद्धि से आत्मशक्ति बढ़ेगी, जिससे शान्ति से ले मुक्ति मिलेगी।। (5)

शान्ति व मुक्तियदि इससे संभव, अन्य लौकिक-पारलौकिक कार्य कथा असंभव।
अतएम आत्म प्रोग्राम करो यथार्थ, संकल्प-विकल्प व संक्लेश रहिता।। (6)

ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व से भी रहित, वैर-विरोध व द्वन्द्व से भी रहित।
भीड़-प्रदर्शन भेड़-भेड़िया चाल रहित, निष्पृह-निराडम्बर-सत्य-समता सहित।। (7)

स्वयं में ही स्वयं द्वारा स्व को करो समर्थ, निच्छल-निश्चल-निर्मल-निर्भय चित्त।
आत्मानुशासन-धैर्य-दृढ़ता सहित, अवश्य सफलता मिलेगी 'कनक' हो निश्चित।। (8)